Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-20 अंक-09 ग्वालियर, दिसम्बर -2025 मूल्य 30 रुपए

मध्यप्रदेश के गुना का गुलाब पेरिस और लंदन में महकेगा

गुलाबों की नगरी के रूप में देश में नई पहचान बनाते जा रहे गुना के किसानों की मेहनत को मध्यप्रदेश सरकार के सहयोग से नई उड़ान मिलने जा रही है। अभी गुना के 20-25 किसान उद्यानिकी विभाग और एनबीसी के सहयोग से गुलाब की खेती कर, गुलाबी नगरी जयपुर और देश की राजधानी दिल्ली में अपनी पहचान बना रहे हैं। गुना के गुलाब को लंदन और पेरिस तक पहुंचाने के प्रयास प्रारंभ हो गए हैं। जल्दी ही इसकी महक लंदन और पेरिस के बाजार में बिखरेगी। राज्य शासन उद्यानिकी (फ्लोरी-कल्चर) के माध्यम से किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है।

श्री गणेशाय नमः

श्री साँवलिया सेठ

किसान कृषि सेवा केन्द्र

Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com
7692967419 9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौंप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।

उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company

कृषि दर्शन®

खेत-खलिहान का राजा

1988

सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

जहरीले कारोबार पर नकेल

आज सिर्फ पंजाब-हरियाणा ही नहीं, देश के अन्य राज्यों में भी नशीले पदार्थो का बढ़ता घातक कारोबार गंभीर संकट की आहट सुना रहा है। आये दिन विभिन्न राज्यों में नशीले पदार्थों की बड़ी-बड़ी खेप बरामद होना इस संकट की भयावह तस्वीर उकेरता है। अब वयस्क ही नहीं, किशोर भी नशे की चपेट में आ रहे हैं। फिर वे अपने नशे के लिए पैसा जुटाने को अपराध की गलियों से गुजरने में गुरेज नहीं करते। हाल ही के कुछ गंभीर अपराधों का खुलासा होने पर किशोरों ने स्वीकार किया कि वे नशे हेतु पैसा जुटाने के लिए अपराध करने निकले थे। कमोबेश, ऐसा ही संकट नकली दवाइयों की आपूर्ति का भी है। पिछले दिनों देश के कई राज्यों में घातक कफ सिरप पीने से कई बच्चे अपनी जान गंवा बैठे। इस आसन्न संकट को महसूस करते हुए नकली दवाइयों और मादक पदार्थों पर अंकुश लगाने के लिए सात राज्यों के ड्रग्स कंट्रोलरों, पुलिस और सीआईडी अधिकारियों का एक महत्वपूर्ण सम्मेलन चंडीगढ़ में आयोजित किया गया, जिसका मकसद इन अधिकारियों को एक मंच पर लाकर कार्रवाई को अधिक कारगर बनाना था। इस रणनीतिक महत्व के सेमिनार का आयोजन हरियाणा के खाद्य और औषधि प्रशासन ने किया था, जिसका मकसद सीमावर्ती राज्यों के बीच बेहतर समन्वय, सूचना साझेदारी और तेज प्रवर्तन तंत्र विकसित करना था। यह स्वागत योग्य है कि देश में पहली बार सात राज्यों ने इस संकट को महसूस करते हुए इस दिशा में साझी पहल की। उल्लेखनीय है कि इस पहल में सीमावर्ती राज्यों पंजाब, राजस्थान, हिमाचल, उत्तराखंड व दिल्ली, महाराष्ट्र तथा हरियाणा के औषधि नियंत्रकों व वरिष्ठ अधिकारियों समेत 70 अधिकारियों ने भाग लिया। इन अधिकारियों ने अनुभव साझा करके भविष्य के लिए कारगर रणनीति को अंजाम देने पर गंभीर मंथन किया। बैठक में स्वीकार किया गया कि नशीले पदार्थों व नकली दवाइयों का कारोबार मात्र एक राज्य की समस्या नहीं है, बल्कि इससे कई राष्ट्रीय मुद्दे भी जुड़े हैं।

इसमें दो राय नहीं कि देश के लिए घातक साबित हो रहे नशे के कारोबार पर अंकुश राज्यों के संयुक्त प्रयासों से ही संभव है। इसके लिए जरूरी है कि विभिन्न राज्यों के जिम्मेदार अधिकारी समय-समय पर इससे जुड़े डेटा साझा करने, पारदर्शी समन्वय और 'एक टीम, एक रणनीति' पर काम करें। साथ ही जरूरी है कि संबंधित अधिकारी जिम्मेदारी और संवेदनशीलता के साथ काम करें। इस दौरान सात राज्यों के अधिकारियों ने नशीली दवाओं के दुरुपयोग रोकने व नकली दवाइयों पर रोक लगाने के लिए सहयोग करने पर सहमति जतायी। इस नई चुनौती के मुकाबले के लिए विशेष प्रशिक्षण और सात राज्यों के ड्रग कंट्रोलरों और पुलिस अधिकारियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान पर सहमति बनी। इसमें दो राय नहीं कि यह जहरीला कारोबार सिर्फ स्थानीय मुद्दा नहीं है बल्कि विभिन्न राज्यों के बीच साझा चुनौती बना हुआ है, जिसका मुकाबल डेटा साझेदारी और पारदर्शी समन्वय से ही संभव है। खासकर सीमावर्ती राज्यों को तो अंतर्राष्ट्रीय व अंतरराज्यीय तस्करों से मुकाबले के लिए मिलकर काम करना बेहद जरूरी है। यही वजह है कि चंडीगढ़ में आयोजित सेमिनार के निष्कर्ष राज्य व केंद्र सरकार को भेजने का निर्णय लिया गया ताकि साझी रणनीति तय की जा सके।

मध्यप्रदेश फूलों के उत्पादन में देश में तीसरे स्थान पर

मध्यप्रदेश ने फूलों के उत्पादन में देश में अलग पहचान बनाई है। देश में मध्यप्रदेश पुष्प (फूल) उत्पादन में तीसरे स्थान पर है। प्रदेश में उद्यानिकी के कुल 27.71 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में फूल उत्पादन की भागीदारी 42 हजार 978 हैक्टेयर है। प्रदेश के किसानों द्वारा वर्ष 2024-25 में 5 लाख 12 हजार 914 टन

जल्दी ही बनेगा देश का सिरमौर

फूलों का उत्पादन किया गया है, जो रिकार्ड है। वह दिन दूर नहीं जब फूलों के उत्पादन में मध्यप्रदेश देश का सिरमौर बनेगा। प्रदेश में किसानों का फूलों के उत्पादन के प्रति बढ़ता रूझान ही है कि गत चार वर्षों में फूलों का उत्पादन रकबा जो वर्ष 2021-22 में 37 हजार 647 हैक्टेयर था वह वर्ष 2024-25 में बढ़कर 42 हजार 976 हैक्टेयर और उत्पादन में 86 हजार 294 टन की बढ़ोत्तरी हुई है। किसानों की आय को दोगुना करने और खेती को लाभ का धंधा बनाने में केन्द्र और राज्य सरकार किसान को कैश-क्रॉप की ओर प्रेरित कर रही है। छोटी कृषि जोत रखने वाले किसान, जिनके पास एक-दो एकड़ या तीन एकड़ की कृषि भूमि है, वे फूलों का उत्पादन कर अच्छा लाभ कमा सकते है। मध्यप्रदेश के उत्पादित फूलों की मांग देश के महानगरों के साथ विदेशों में भी बढ़ी है। गुना जिले के गुलाब की महक जयपुर, दिल्ली, मुम्बई के बाद अब पेरिस और लंदन में भी पहुँच रही है। शिक्षित युवाओं के साथ गांव में रहने वाले ग्रामीण किसान भी फूलों के उत्पादन की ओर आकर्षित हुए है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063
***
नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453
बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732
पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678
***
हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

-संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें 0751-4070802

▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750 ▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 20 ▪ अंक 09 ग्वालियर, दिसंबर 2025 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया
कृषि विश्वविद्यालय

***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

***

डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.
ग्वालियर (म.प्र.)

***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले
विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा
उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार
कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर

***

डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

***

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

***

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और
कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि
और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस
हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)

***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542

***

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- कृषि वानिकी में वर्मी कम्पोस्ट की भूमिका 07
- 'कृषि वानिकी में जैव उर्वरक और हरित खाद का एकीकृत प्रयोग' 08
- दूधारू पशुओं में ट्यूबरकुलोसिस के लक्षण, उपचार... 09
- पशुओं में रोगों से जुड़ा सर्वाधिक सामान्य जीवाणु: ... 10
- आलू की खेती: किसानों की आय में वृद्धि के स्रोत आधार 11
- वर्मीकंपोस्टिंग: फसल अवशेष को काले सोने में बदलना 12
- जैविक खेती: एक स्थायी कृषि पद्धति 13
- भारतीय कृषि में महिलाओं की अपरिहार्य भूमिका 14
- गेहूं उत्पादन की उन्नत तकनीक 15
- कृषक ही बने प्रजनक: किसानों की भागीदारी से बीज विकास 16
- मध्यप्रदेश में कृषि शैक्षणिक संस्थानों ... 17
- ग्लूटेन-मुक्त जीवन: स्वस्थ भारत की ओर एक क्रांतिकारी कदम 18
- पशु खरीदते समय अच्छे दुधारू पशुओं की नस्ल ... 19
- बकरी के बच्चों (मेमनों) में दस्त (सफेद दस्त)... 20
- मवेशियों का शीतकालीन प्रबंधन 22
- सर्दियों में दुधारू पशुओं का रख-रखाव 23
- स्वच्छ पर्यावरण के लिए बागवानी 24

उत्तर प्रदेश

- ब्लैक क्वार्टर कारण, लक्षण और बचाव के उपाय 25
- 'हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया (गलघोंटू): एक घातक... 26
- गेहूँ में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एवं लाभ 27
- रबी फसलों में पोषक तत्वों के कार्य एवं उनके कमी के लक्षण 28
- प्रकृति, संस्कृति और कृषि:... 29
- इन किस्म का चयन कर किसान गेहूँ ... 30
- इंटरनेट ऑफ थिंग्स द्वारा कृषि के क्षेत्र में बदलाव 31
- पोटाश का फसलोत्पादन में महत्व 32
- सर्दियों में उचित देखभाल से पाएँ अमरूद... 33
- बुंदेलखण्ड क्षेत्र में इमारती लकड़ी के पेड़... 34
- प्राकृतिक कृषि: टिकाऊ खेती की ओर एक कदम 35
- हरित क्रांति का पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभाव 36
- विकल्पों की उपलब्धता से घटेगी रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता 37
- टमाटर के कटाई के बाद उत्पाद 38
- बटन मशरूम कैसे उगाएं 39
- खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक धान की खेती:... 40
- आलू के रोग और उनके प्रबंधन 41
- 'भूख, कर्ज और बेगारी: ... 42
- प्याज की उन्नत खेती: उत्पादन वृद्धि ... 43
- गेहूँ की खेती में सफलता के सुनहरे सूत्र: ... 44
- मखाने की वैज्ञानिक खेती एवं इसका महत्व 45
- सिंघाड़े की व्यवसायिक खेती एवं उसका महत्व 46
- पशुपालन में जैव सुरक्षा के महत्व एवं प्रबंधन तकनीक 47
- टमाटर की फसल में रोग का प्रबन्धन 48
- पशुओं में टीकाकरण का महत्व 49
- सर्दियों में दुधारू पशुओं की उचित प्रबंधन तकनीकी 50

राजस्थान

- ग्रीष्मकालीन मूंग सवाई माधोपुर, राजस्थान में कृषि सतत... 51
- जलवायु परिवर्तन और राजस्थान के शुष्क ... 53
- उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 भारत में उर्वरकों ... 54
- समावेशी विकास हेतु कृषि एवं किसान कल्याण ... 55
- सरसों के प्रमुख कीट व रोग ... 56
- गेहूँ के प्रमुख नाशीकीट एवं उनका प्रबन्धन 57
- टमाटर की उन्नतशील किस्में 58

बिहार

- स्वस्थ्य मृदा एवं उन्नत खेती के लिए हरी खाद... 59
- दवा के खजाने सिलीमारिन:... 60

झारखण्ड

- मटर डीपॉडर मशीन: किसानों हेतु आय का एक अच्छा श्रोत 61

कृषि महाविद्यालय ग्वालियर की रावे छात्राओं का वेटेरिनरी पॉलीक्लीनिक दतिया पर भ्रमण

दतिया। कृषि महाविद्यालय ग्वालियर से कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया में ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव हेतु आये हुये 16 छात्राओं द्वारा वेटेरिनरी पॉलीक्लीनिक दतिया पर केन्द्र के वैज्ञानिक पशु चिकित्सा डॉ. रूपेश जैन के मार्गदर्शन में भ्रमण कराया गया। पॉलीक्लीनिक पर पदस्थ वरिष्ठ पशु चिकित्सक डॉ. व्ही.के. श्रीवास्तव एवं डॉ. गजेन्द्र धाकड़ द्वारा पॉलीक्लीनिक की प्रतिदिन की गतिविधियों से छात्राओं को अवगत कराया भ्रमण के दौरान डॉ. श्रीवास्तव द्वारा पशुओं का प्राथमिक उपचार पशुओं में टीकाकरण, डीवर्मिंग, कैस्ट्रेशन, डीहॉर्निंग के साथ-साथ पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक एवं सेक्ससॉर्टेड सीमेन की विस्तृत जानकारी छात्राओं को दी गई। छात्राओं द्वारा प्रायोगिक तौर पर पॉलीक्लीनिक में एक्सरे, एक्सरे मशीन, एक्सरे डेवलपिंग चैम्बर, अल्ट्रासाउण्ड आदि के बारे में तकनीकी रूप से समझाया गया। डॉ. श्रीवास्तव द्वारा पशुओं में संतुलित दाना प्रबंधन द्वारा दुधारू पशुओं से उनकी क्षमता के अनुसार दुग्ध उत्पादन पर भी जोर दिया गया। उन्होंने पॉलीक्लीनिक द्वारा पशुपालकों को दी जा रहे पूरक आहार के बारे में भी संपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई। भ्रमण के दौरान छात्राओं में अंजली शर्मा, निक्की शर्मा, शिवानी गुर्जर, नेहा शर्मा, भक्ति पाण्डेय, सारिका शर्मा, गरिमा शर्मा, मोनिका राजपूत, वंदना नरवरिया, वंदना धाकड़, शिवानी कुशवाहा, मुस्कार जाटव, श्रृष्टि शाक्य, महक नागौर, नंदनी जादौन शामिल रहीं। भ्रमण के दौरान रावे प्रभारी डॉ. व्ही.एस. कंसाना ने छात्राओं को तकनीकी ज्ञान प्रदान किया।

केवीके शहडोल में दक्षता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम

शहडोल। कृषि विज्ञान केंद्र शहडोल एवं किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग (आत्मा परियोजना) शहडोल के सन्युक्त तत्वाधान में ग्राम ओढकी एवं सगरा में दक्षता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमे केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक सह प्रमुख डा. मृगेंद्र सिंह ने बागवानी किसानों को कहा कि इस समय बेर के बाग में प्रबंधन करना जरूरी है। सफेद चूर्णी रोग यह बेर का फफूंद से होने वाला मुख्य एवं बहुत ही घातक रोग है। इस रोग का प्रकोप अक्टूबर-नवंबर में शुरू होता है। इस रोग से फसल को काफी हानि पहुंचती है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियों व फलों की सतह पर सफेद पाउडर की परत दिखाई देती है। मुख्यतः व्यतः ये चूर्णी फफूंद फलों की सतह पर ज्यादा आता है। जिससे फलों का विकास रुक जाता है। अगर किसानों ने समय रहते प्रबंधन नहीं किया तो 80ः तक फल को नुकसान हो सकता है। इस बीमारी के शुरुआत होते ही पौधों पर कवकनाशी केराथेन 1 एमएल प्रति लीटर या 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में सल्फेक्स के घोल का छिड़काव पौधों पर करें। 15 दिन के अंतर पर यही छिड़काव दोहराएं। केंद्र के वैज्ञानिक डॉ. ब्रजकिशोर प्रजापति ने बताया कि आज के दौर में प्रायः किसान फल एवं सब्जियों के उत्पादन में रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग काफी जोर शोर से कर रहे हैं। फल एवं सब्जियों पर छिड़के जाने वाले रासायनिक कीटनाशक से जहां फल व सब्जियां लगातार प्रदूषित हो रही है। वहीं इन सब्जियों का सेवन मानव शरीर को भी व्यापक स्तर पर नुकसान पहुंचा रहा है। देश के किसान फल एवं सब्जियों के फसल पर रासायनिक कीटनाशक की जगह नीम और तुलसी से बनाए गए जैव कीटनाशक का प्रयोग कर उच्च स्तरीय व गुणवत्तापूर्ण फल एवं सब्जियों का उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने बताया कि नीम के अर्क का उपयोग कृषि में कीटों और रोग के प्रबंधन के अलावा पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति करने में किया जाता है। नीम और तुलसी किसानों के लिए हर हाल में सुरक्षित है। किसान इससे बने कीटनाशकों का प्रयोग पूरे फसल चक्र के दौरान एवं आईपीएम की रणनीतियों के अनुकूल कर सकते हैं। जैव कीटनाशक पर्यावरण की दृष्टि से भी काफी सुरक्षित हैं। किसान सबसे पहले नीम के 1 किलो हरे पत्तियों को पीसकर एक बाल्टी में रखें गए 5 लीटर पानी में डालकर उसे 12 घंटे के लिए छोड़ दे। इसके बाद किसान पत्तियों को निचोड़े और तरल को एकत्र कर लें। पत्तियों के अति छोटे टुकड़े को तरल से हटाने के लिए किसान रसोई की छलनी या मलमल के कपड़े का उपयोग कर उसे छान लें। इस प्रक्रिया के बाद किसान लगभग 20 ग्राम साबुन या कोई भी स्टीकर यानी गोंद को पानी में घुलने तक मिलाएं।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)

01/205-26

मशरूम उत्पादन से रोजगार की अपार संभावनाएं

ग्वालियर। राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय- कृषि विज्ञान केन्द्र, ग्वालियर द्वारा आर्या परियोजना के अर्न्तगत "मशरूम उत्पादन द्वारा आय एवं पोषण" विषय पर पाँच दिवसीय व्यावसायिक प्रशिक्षण का सफल आयोजन किया गया जिसमें जिले के युवाओं एवं युवतियों की सक्रिय भागीदारी रही। चंबल संभाग में विभिन्न प्रकार के मशरूम उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं जिसके द्वारा आय अर्जन कर स्वयं का रोजगार स्थापित किया जा सकता है। कार्यक्रम के समापन अवसर पर कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर के अधिष्ठाता डॉ. एस.एस.तोमर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. एस.एस. कुशवाह ने की। केन्द्र की वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. रीता मिश्रा इस मशरूम उत्पादन प्रशिक्षण कार्यक्रम की आयोजक रहीं। समापन अवसर पर डा. एस.एस.तोमर ने प्रशिक्षणार्थियों का मनोबल बढ़ाते हुए पौष्टिक एवं औषधीय गुणों से भरपूर मशरूम द्वारा आय अर्जन एवं पोषण के विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान की। साथ ही उन्होंने मशरूम उत्पादन के क्षेत्र में आजीविका उपार्जन करने तथा मशरूम उत्पादन के साथ साथ समन्वित कृषि करने के लिए प्रेरित किया। केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. एस.एस. कुशवाह ने इस अवसर पर प्रतिभागियों को आर्या परियोजना के उद्देश्यों से अवगत कराया तथा ग्वालियर जिले में मशरूम उत्पादन की अपार संभावनाओं के बारे में विस्तार से चर्चा की। प्रशिक्षण के दौरान डॉ. मिश्रा ने प्रतिभागियों को मशरूम उत्पादन इकाई स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार के मशरूम उत्पादन की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगात्मक जानकारी दी। उन्होंने बताया कि बंद कमरे या झोपड़ी में मशरूम का उत्पादन आसानी से किया जा सकता है। इसके उत्पादन हेतु बांस के रैक बनाकर या टांगकर कम जगह में अधिक मशरूम का उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन लागत को कम करने के लिए मौसमी भूसे का आधार के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। केन्द्र की मषरूम उत्पादन इकाई में युवाओं को बटन व ऑयस्टर मशरूम उत्पादन के सजीव प्रदर्शन के साथ-साथ प्रायोगात्मक प्रषिक्षण भी कराया गया जिसमें डॉ. मिश्रा ने सभी युवाओं को भूसे के पाश्चुरीकरण, कम्पोस्ट बनाना, मषरूम बैग भरना, स्पॉनिंग करना, उत्पादित मशरूम को सही समय व सही ढंग से तोड़ने हेतु प्रशिक्षित किया। इस 5 दिवसीय कार्यक्रम में डा.एच.एस.गोस्वामी, श्रीमती बाली सिंह, सौरभ मोदी, निशा निरंजन, डा. जे.सी. गुप्ता, डॉ. निधि कटारे, संजय कटारे एवं श्रीमती नीलम कुशवाहा वाह्य विशेषज्ञों के रूप में उपस्थित रहे।

केवीके अम्बाला द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन पर किया जा रहा जागरूक

अंबाला। कृषि विज्ञान केन्द्र अम्बाला की टीम गावं गांव जाकर किसानों से धान की पराली न जलाने का आग्रह कर रही है, क्योंकि इससे पर्यावरण, वायु गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फसल अवशेष प्रबंधन एक प्रक्रिया है जिसमें खेत में बची हुई फसल के अवशेषों को सही तरीके से नष्ट या पुनः उपयोग किया जाता है। जब फसल की कटाई की जाती है, तो उसके बाद खेत में पुआल, तने, पत्तियां, और अन्य अवशेष बच जाते हैं। इन अवशेषों को बिना सही प्रबंधन के छोड़ देने से खासकर जब इन्हें जलाने से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, जैसे कि मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार गैसों का उत्सर्जन, और वायु प्रदूषण। साथ ही आधुनिक कृषि यंत्रो का उपयोग करने के लिए जागरूकता प्रदान कर रही है जैसे की सुपर स्ट्रा मैनेजमेन्ट यंत्र का उपयोग खेती में कटाई के बाद खेत में बचे हुए पुआल (straw) को प्रबंधित करने के लिए किया जाता है। इस यंत्र का मुख्य उद्देश्य पुआल को खेत में समान रूप से फैलाना और छोटे टुकड़ों में काटना होता है ताकि इसे मिट्टी में मिलाया जा सके। इससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, और फसल के अवशेष जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है।सुपर स्ट्रा मैनेजमेंट यंत्र का उपयोग ट्रैक्टर के साथ किया जाता है।

खाद वितरण सोसायटी केंद्र सागुल का निरीक्षण

विदिशा। शमशाबाद के तहसीलदार डॉ. दर्शन सिंह नेगी ने आज खाद वितरण सोसायटी केंद्र सागुल का निरीक्षण किया। निरीक्षण के दौरान उन्होंने वितरण व्यवस्था, स्टॉक पंजी, किसानों को उपलब्ध कराई जा रही खाद की मात्रा, पारदर्शिता तथा व्यवस्थाओं का विस्तृत अवलोकन किया। तहसीलदार ने केंद्र में उपस्थित कर्मचारियों को निर्देशित किया कि किसानों को समय पर एवं निर्धारित मात्रा में खाद उपलब्ध कराई जाए तथा किसी भी प्रकार की अनियमितता या देरी न हो। उन्होंने स्टॉक रजिस्टर एवं वितरण अभिलेखों का परीक्षण कर आवश्यक सुधारात्मक सुझाव भी दिए। निरीक्षण के दौरान किसानों से भी चर्चा की गई तथा खाद उपलब्धता और वितरण प्रक्रिया से संबंधित फीडबैक लिया गया।

12/2025-26

कृषि वानिकी में वर्मी कम्पोस्ट की भूमिका

डॉ. प्रिया, डॉ. संजय सिंह जाटव
डॉ. एस.बी. अग्रवाल, डॉ. यशपाल सिंह
वानिकी विभाग, कृषि महाविद्यालय, जबलपुर,
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

वर्मी कम्पोस्ट एक प्राकृतिक, जैविक और उच्च गुणवत्ता वाला कार्बनिक उर्वरक है, जो केंचुओं द्वारा कार्बनिक अवशेषों को विघटित करने की प्रक्रिया से बनता है। यह केवल पौधों को पोषक तत्व प्रदान नहीं करता, बल्कि मिट्टी की संरचना, उर्वरता और जैविक गतिविधि को भी निरंतर सुधारता है।

आधुनिक कृषि और वानिकी में जहाँ रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग ने मिट्टी की गुणवत्ता को क्षति पहुँचाई है, वहीं वर्मी कम्पोस्ट एक पर्यावरणङ्गअनुकूल विकल्प के रूप में उभर रहा है। सतत कृषि और वानिकी की दिशा में यह एक प्रमुख घटक माना जा रहा है।

मुख्य विषयवस्तु

वर्मी कम्पोस्ट की विशेषता इसकी सूक्ष्म संरचना और उच्च पोषक तत्व उपलब्धता में निहित है। इसके निर्माण में उपयोग किए जाने वाले केंचुए, विशेषकर कार्बनिक सामग्री को सूक्ष्म रूप में तोड़कर उसे पौधों द्वारा तुरंत अवशोषित किए जाने योग्य बनाते हैं। इसमें उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सूक्ष्म तत्व पौधों की वृद्धि, जड़ विकास और प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। वर्मी कम्पोस्ट में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीव मिट्टी को जैविक रूप से सक्रिय बनाते हैं, जिससे पोषक तत्वों का चक्रण तेज होता है और मिट्टी की उर्वर क्षमता दीर्घकालिक रूप से बढ़ती है। कृषि में वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार लाता है। यह मिट्टी को भुरभुरा बनाकर वायुसंचार और जल-धारण क्षमता बढ़ाता है, जिससे पौधों की जड़ें अधिक फैलती और मजबूत होती हैं। हल्की, रेतीली तथा क्षारीय मिट्टी में इसका प्रभाव विशेष रूप से लाभदायक होता है, क्योंकि यह मिट्टी में स्थायी कार्बनिक पदार्थ बढ़ाकर उसकी संरचना को स्थिर करता है। फसलों जैसे सब्जियाँ, दालें, अनाज और तिलहन वर्मी कम्पोस्ट से प्राप्त पोषण के कारण बेहतर गुणवत्ता तथा उच्च उपज प्रदान करती हैं।

वानिकी में वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग पौधशाला (नर्सरी) विकास और रोपण सफलता में अत्यंत प्रभावी है। वृक्षारोपण के शुरुआती चरणों में मिट्टी की कमी, जल तनाव और पोषक तत्वों की अल्पता से पौधों को बचाने में वर्मी कम्पोस्ट सहायता करता है। यह जड़ गठन को तेज करता है, जिससे यूकेलिप्टस, शीशम, सागौन, पाइन और फलदार पेड़ तेजी से बढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त, वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी के सूक्ष्मजीव समुदाय को विविध और सक्रिय बनाता है, जिसके परिणाम स्वरूप जंगलों में मिट्टी-स्वास्थ्य और पारिस्थितिक संतुलन मजबूत होते हैं।

लाभ

वर्मी कम्पोस्ट पौधों की वृद्धि को संतुलित रूप से बढ़ाता है, रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को काफी घटाता है और मिट्टी में कार्बन संचयन बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन नियंत्रण में योगदान देता है। यह मिट्टी के सभी गुणों भौतिक, रासायनिक और जैविक को सुधारता है और दीर्घकालिक रूप से भूमि की उत्पादकता स्थिर रखता है। इसके परिणामस्वरूप कृषि और वानिकी प्रणालियाँ अधिक लाभकारी, टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल बनती हैं।

भविष्य की दिशा

सतत विकास के लक्ष्य के अनुसार वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन और इसकी उपयोग तकनीक का प्रसार तेजी से बढ़ाया जाना चाहिए। किसानों के प्रशिक्षण, स्थानीय स्तर पर वर्मी यूनिट स्थापित करने, फसल-विशिष्ट उपयोग के दिशा-निर्देश विकसित करने और वानिकी परियोजनाओं में वर्मी कम्पोस्ट को नियमित रूप से शामिल करने की दिशा में कार्य किया जाना आवश्यक है। भविष्य में वर्मी कम्पोस्ट को माइकोराइजा, जैव उर्वरक और अन्य जैविक तकनीकों के साथ मिलाकर उपयोग करने से कृषि-वानिकी प्रणालियाँ और अधिक प्रभावी बन सकती हैं।

निष्कर्ष

वर्मी कम्पोस्ट सतत कृषि और वानिकी के लिए एक बहुमूल्य जैविक संसाधन है। यह मिट्टी की उर्वरता को पुनर्स्थापित करता है, पौधों की वृद्धि को गति देता है और पर्यावरणीय संतुलन को सुरक्षित रखता है। इसकी वैज्ञानिक उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है कि यह केवल उत्पादन बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि मिट्टी, पर्यावरण और जैव विविधता के संरक्षण का एक स्थायी समाधान भी है। इसलिए, भविष्य की खेती और वानिकी प्रणालियों में वर्मी कम्पोस्ट का समावेश अनिवार्य और अत्यंत लाभकारी माना जाना चाहिए।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल : 9977638510
04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. प्रिया, डॉ. संजय सिंह जाटव
डॉ. एस.बी. अग्रवाल
वानिकी विभाग, कृषि महाविद्यालय, जबलपुर,
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

'कृषि वानिकी में जैव उर्वरक और हरित खाद का एकीकृत प्रयोग'

कृषि और वानिकी में मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना और पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है। जैव उर्वरक और हरित खाद दोनों प्राकृतिक और टिकाऊ उपाय हैं, जो मिट्टी की जैविक गतिविधियों को सक्रिय रखते हुए फसल और वनस्पति उत्पादन में वृद्धि करते हैं।

जैव उर्वरक में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीव जैसे राइजोबियम, अज़ोटोबैक्टर, अज़ोस्पिरिलम, फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया और माइकोराइज़ल कवक मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। यह प्रक्रिया पौधों की वृद्धि और उत्पादन क्षमता में प्रमाणित सुधार लाती है। हरित खाद में हरी फसल अवशेष या अन्य जैविक पदार्थ भूमि में मिलाकर नष्ट किए जाते हैं, जिससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। यह मिट्टी की जल धारण क्षमता, वायुरोधन और संरचना को सुधारने में सहायक होता है।

कृषि क्षेत्र में जैव उर्वरक और हरित खाद का नियमित उपयोग पौधों की जड़ों को मजबूत करता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाकर फसल की उपज और गुणवत्ता में सुधार करता है। यह उपाय फसलों को रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है तथा उन्हें सूखे, लवणीयता, पोषक तत्वों की कमी और प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में अधिक सहनशील बनाता है। रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होने से लागत घटती है और मिट्टी तथा जल प्रदूषण की समस्या कम होती है, जिससे सतत और पर्यावरण-अनुकूल कृषि को बढ़ावा मिलता है।

वानिकी क्षेत्र में जैव उर्वरक और हरित खाद रोपित पौधों की जीवित रहने की क्षमता को बढ़ाते हैं। ये उपाय जड़ विकास को प्रोत्साहित करते हैं, पौधों को फफूंदजनित रोगों, नेमाटोड और अन्य जड़-संक्रमण से बचाते हैं। साथ ही, जंगलों की जैव विविधता और मिट्टी की संरचना सुरक्षित रहती है। मिट्टी में सूक्ष्मजीव गतिविधियों और जैविक संतुलन के निरंतर सक्रिय रहने से वन पारिस्थितिकी मजबूत होती है और भूमि की पुनरुत्पादक क्षमता में वृद्धि होती है।

भविष्य में जैव उर्वरक और हरित खाद के बड़े पैमाने पर उत्पादन और वैज्ञानिक प्रबंधन से सतत कृषि और वानिकी में उत्पादन, पर्यावरणीय सुरक्षा और जैविक विविधता सुनिश्चित की जा सकेगी। इन उपायों से न केवल फसल और पौधों की वृद्धि में सुधार होगा, बल्कि मिट्टी, जल और पर्यावरण के स्वास्थ्य को भी संरक्षित किया जा सकेगा। सही प्रबंधन और नियमित उपयोग के माध्यम से जैव उर्वरक और हरित खाद सतत कृषि एवं वानिकी के लिए एक प्रभावी, प्राकृतिक और दीर्घकालिक समाधान के रूप में स्थापित हो रहे हैं।

01/2025-26

डॉ. राखी गांगिल, डॉ. दीपक गांगिल
डॉ. रवि सिकरोडिया, डॉ. दलजीत छाबरा
डॉ. जोयसी जोगी, डॉ. राकेश शारदा
पशु सूक्ष्मजीव विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय महू- 453446 (म.प्र.)

दूधारू पशुओं में ट्यूबरकुलोसिस के लक्षण, उपचार एवं बचाव के उपाय

तपेदिक रोग, जिसे पशुओं में ट्यूबरकुलोसिस (Tuberculosis या TB) या क्षय रोग भी कहा जाता है, एक दीर्घकालिक संक्रामक रोग है जो मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि में पाया जाता है। यह रोग माइकोबैक्टेरियम बोविस नामक बैक्टीरिया के कारण होता है, जो पशुओं के फेफड़े, किडनी, लसीका ग्रंथियां और अन्य अंगों को नुकसान पहुंचाता है। इस रोग का संक्रमण संक्रमित पशु के संपर्क में आने, संक्रमित दूध या भोजन के द्वारा फैलता है। संक्रमित पशु के खांसी, नाक के स्राव, मूत्र, गोबर आदि के माध्यम से बैक्टीरिया आसानी से स्वस्थ पशुओं तक पहुंच सकते हैं। अस्वच्छ परिस्थितियाँ, गीला और भीगा वातावरण, कमजोर प्रतिरक्षा तथा उचित स्वच्छता न होने पर रोग का फैलाव तेजी से होता है। ट्यूबरकुलोसिस न केवल पशुओं के लिए बल्कि मनुष्यों के लिए भी संक्रामक है, विशेषकर पशुओं का दूषित दूध या उससे बने उत्पादों के सेवन से। इसलिए इस रोग की पहचान, उपचार तथा प्राथमिक रोकथाम अत्यंत आवश्यक है।

लक्षण

छाया रोग के प्रारंभिक लक्षण अस्पष्ट होते हैं, लेकिन रोग बढ़ने पर पशुओं में निम्न लक्षण दिखते हैं-

* बार-बार सूखी और लगातार खांसी आना।
* सांस लेने में कठिनाई या तेज़ सांस आना।
* पशु का बुखार लंबे समय तक बना रहना, कभी-कभी हल्का और कभी तेज।
* वजन में तेज कमी और शरीर का कमजोरी से दुबला-पतला होना।
* दूध उत्पादन में अचानक और लगातार कमी।
* थकान, सुस्ती, भूख में कमी आना।
* गले में सूजन या गांठ का बनना।
* थन या अंडरक्वार्टर में दर्द रहित गांठ या सूजन।
* पसलियाँ और हड्डियां बाहर दिखना, शरीर का असामान्य पतला होना।
* त्वचा पर सूजन, लालिमा और कसाव (ट्यूबरक्युलिन टेस्ट के समय त्वचा पर 4 मिमी या उससे अधिक मोटाई की सूजन)।

रोग के बढ़ने पर पशु में अधिक गंभीर लक्षण जैसे सांस फूलना, अत्यधिक कमजोरी और अंततः मृत्यु भी हो सकती है। यह रोग लंबे समय तक चलता है और संक्रमित पशु धीरे-धीरे कमजोर होकर शरीर रूप से अस्वस्थ हो जाता है।

निदान

रोग की पुष्टि के लिए ट्यूबरक्युलिन टेस्ट सबसे उपयुक्त विधि है जिसमें पशु की त्वचा पर विशेष एंटीजन लगाया जाता है और 72 घंटे बाद प्रतिक्रिया (सूजन, लालिमा, कठोरता) देखी जाती है। इसके अलावा, पशु चिकित्सक द्वारा अन्य परीक्षण जैसे रक्त जांच भी की जा सकती है।

उपचार

पशुओं में छाया रोग का पूर्ण उपचार वर्तमान में चुनौतीपूर्ण और महंगा है। हालांकि प्रारंभिक स्थिति में पशु चिकित्सक की देखरेख में स्ट्रेप्टोमाइसिन और अन्य एंटीबायोटिक दवाओं का दीर्घकालिक इलाज असरदार हो सकता है।

उपचार के दौरान पशुओं को पौष्टिक आहार प्रदान करें और कोई भी दवा केवल पशु चिकित्सक की सलाह से ही दें। रोगी पशुओं को अन्य स्वस्थ पशुओं से तुरंत अलग कर देना चाहिए ताकि संक्रमण न फैले।

रोकथाम एवं सावधानियां

* पशुओं को खरीदने से पहले ट्यूबरक्युलिन टेस्ट सहित पूरी स्वास्थ्य जांच कराएँ।
* संक्रमित पशुओं को झुंड से अलग करें और पशु चिकित्सक द्वारा उचित इलाज करवाएँ।
* पशु आवास और चारागाह की नियमित सफाई एवं कीट नियंत्रण करें।
* बाड़े या गोशाला को सूखा, हवादार और सूर्य की रोशनी वाला रखें ताकि बैक्टीरिया का विकास रोका जा सके।
* दूषित गोबर, मूत्र, नाक-नाक से निकलने वाले स्राव को अच्छी तरह से जलाएं या गहरे गड्ढे में गाड़ दें।
* संक्रमित दूध को ठीक से उबालकर ही उपयोग करें, कच्चा दूध इस्तेमाल न करें।
* पशुओं के रख-रखाव करने वालों को व्यक्तिगत स्वच्छता का ख्याल रखना चाहिए, क्योंकि यह रोग मनुष्यों में भी फैल सकता है।
* वर्ष में कम से कम दो बार सभी पशुओं का ट्यूबरक्युलिन टेस्ट कराएं।
* नए पशुओं को झुंड में शामिल करने से पहले उनकी जांच करें।

इस प्रकार, सावधानी और समय पर उचित कदम उठाकर पशुओं में छाया रोग के संक्रमण को रोका और नियंत्रित किया जा सकता है। पशुओं के स्वास्थ्य की देखभाल से उनकी उत्पादकता बढ़ती है और किसानों की आय में सुधार होता है।

बोवाइन ट्यूबरकुलोसिस का जनस्वास्थ्य में महत्व

बोवाइन ट्यूबरकुलोसिस (Bovine TB) एक गंभीर जूनोटिक रोग है जो जानवरों से मनुष्यों में फैल सकता है, विशेषकर संक्रमित दूध, मांस या पशुओं के सीधे संपर्क के माध्यम से। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा है क्योंकि इससे मानवों में टीबी जैसी बीमारी उत्पन्न हो सकती है, जो सामान्य टीबी उपचार के प्रति कम प्रतिक्रिया देती है। उच्च जोखिम वाले समूहों में पशुपालक, डेयरी कर्मचारी, बूचड़खाने के मज़दूर और कमजोर प्रतिरक्षा वाले व्यक्ति शामिल हैं। कच्चे दूध का सेवन, संक्रमित पशुओं का संपर्क और पशु चिकित्सा सेवाओं की कमी इस रोग के प्रसार को बढ़ाते हैं। इसलिए इसकी रोकथाम के लिए पशुओं की नियमित जांच, दूध का पाश्चराइजेशन और जनजागरूकता अत्यंत आवश्यक है।

02/2025-26

पशुओं में रोगों से जुड़ा सर्वाधिक सामान्य जीवाणु : Escherichia coli (E. coli)

✍डॉ. रेणुका मेवाड़े, डॉ. संजय शुक्ला
✍स्वाति त्रिपाठी, अंजू नायक, वंदना गुप्ता
पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर

✍डॉ. शशांक विश्वकर्मा, डॉ. अभिषेक बिसेन, डॉ. पुष्कर शर्मा पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर - 482001, म.प्र.

✍डॉ. पंकज कुमार उमर, डॉ. ज्योति पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001, म.प्र.

✍डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर -

Escherichia coli जिसे सामान्यतः E. coli कहा जाता है, पशु चिकित्सा विज्ञान में एक अत्यंत महत्वपूर्ण जीवाणु माना जाता है। यह ग्राम-नेगेटिव, दण्डाकार (rod-shaped) जीवाणु है, जो मुख्यतः आंतों (intestine) में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। सामान्य परिस्थितियों में यह आंतों की जैविक संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है, परंतु जब यह असामान्य रूप से बढ़ जाता है या शरीर के अन्य भागों में प्रवेश कर जाता है, तब यह कई प्रकार के रोगों का कारण बन सकता है। इसी कारण E. coli को पशुओं में संक्रमणों का सबसे सामान्य रोगजनक माना जाता है।

1. पशुओं में E. coli का व्यापक प्रसार

E. coli लगभग सभी घरेलू पशुओं–गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर, कुत्ते, बिल्ली आदि–की आंतों में पाया जाता है। यह आसानी से पर्यावरण में भी फैल सकता है, जैसे पानी, चारा, दूषित बिछावन, मल-मूत्र और दूषित हाथों के माध्यम से। इसके व्यापक प्रसार के कारण यह कई प्रकार के संक्रामक रोगों का प्रमुख कारण बन जाता है।

2. नवजात पशुओं में दस्त (Neonatal Diarrhea)

पशु चिकित्सा में E. coli द्वारा उत्पन्न नवजात बछड़ों, मेमनों एवं पिल्लों में दस्त सबसे आम समस्या है। यह संक्रमण तेजी से फैलता है और समय पर चिकित्सा न मिलने पर निर्जलीकरण (dehydration) के कारण मृत्यु का जोखिम बढ़ जाता है। पैथोजेनिक E. coli विशेष टॉक्सिन (ETEC, EPEC, EHEC आदि) बनाकर आंतों की झिल्लियों को प्रभावित करता है।

3. जननांग तंत्र संबंधी संक्रमण

मादा पशुओं में गर्भाशय संक्रमण (metritis), एण्डोमैट्राइटिस और पाइयोमेट्रा जैसी स्थितियों में भी E. coli प्रमुख रूप से पाई जाती है। यह प्रसव के बाद, अस्वच्छ वातावरण या असंतुलित प्रतिरक्षा के कारण तेजी से गर्भाशय में पनप जाती है।

4. मूत्र मार्ग संक्रमण (UTI)

कुत्तों और बिल्लियों में मूत्र मार्ग संक्रमण (Urinary Tract Infection) का सबसे बड़ा कारण भी E. coli है। यह बैक्टीरिया मूत्राशय की झिल्ली को सूजनयुक्त बनाता है, जिससे दर्द, मूत्रत्याग में जलन, बार-बार मूत्र आना जैसी समस्याएँ होती हैं।

5. श्वसन तंत्र और घाव संक्रमण

E. coli घावों में घुसकर घाव संक्रमण, फोड़े और सेप्सिस का रूप ले सकता है। यद्यपि यह श्वसन तंत्र का प्रमुख रोगजनक नहीं है, फिर भी यह कमजोर प्रतिरक्षा वाले पशुओं में द्वितीयक संक्रमण पैदा कर सकता है।

6. दूध देने वाले पशुओं में मैस्टाइटिस

डेयरी पशुधन में E. coli मैस्टाइटिस एक गंभीर आर्थिक नुकसान का कारण है। यह दूषित बिछावन, अस्वच्छ दुग्ध प्रक्रिया या पर्यावरणीय गंदगी के माध्यम से थन में प्रवेश करता है। इसे पर्यावरणीय मैस्टाइटिस का सबसे बड़ा कारक माना जाता है।

7. क्यों E. coli सबसे सामान्य रोगजनक है?

I. यह पशुओं के शरीर और पर्यावरण दोनों में स्वाभाविक रूप से मौजूद रहता है

II. स्वच्छता में कमी होने पर इसका तेजी से प्रसार होता है

III. प्रतिरक्षा कमजोर होने पर यह अवसरवादी (opportunistic) संक्रमण करता है

IV. कई स्ट्रेन्स अत्यधिक रोगजनक टॉक्सिन बनाते हैं

V.एंटीबायोटिक प्रतिरोध (antimicrobial resistance) तेजी से बढ़ रहा है

इन्हीं कारणों से E. coli विभिन्न पशु रोगों में बार-बार मुख्य कारण के रूप में पहचाना जाता है। E. coli संक्रमणों के नियंत्रण और रोकथाम के लिए पशु आवास की उचित स्वच्छता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि गंदगी और दूषित वातावरण इस जीवाणु के प्रसार को बढ़ावा देते हैं। नवजात पशुओं को समय पर और पर्याप्त मात्रा में कोलोस्ट्रम उपलब्ध कराना उनके प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करता है और E. coli संबंधी नवजात दस्त की संभावना को कम करता है। जहाँ टीके उपलब्ध हैं, वहाँ नियमित टीकाकरण संक्रमण के जोखिम को घटाता है। दुग्ध देने वाले पशुओं में स्वच्छ दुग्ध दोहन तकनीकों का पालन करना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, ताकि मैस्टाइटिस जैसे संक्रमणों को रोका जा सके। किसी भी संदिग्ध संक्रमण की स्थिति में उपचार शुरू करने से पहले एंटीबायोटिक संवेदनशीलता परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए, जिससे उचित दवा चयन सुनिश्चित हो सके और एंटीमाइक्रोबियल रेजिस्टेंस को रोका जा सके। समग्र रूप से, E. coli एक अत्यंत सामान्य किंतु कई बार गंभीर रोग उत्पन्न करने वाला जीवाणु है, इसलिए पशु स्वास्थ्य और उत्पादन पर इसके प्रभाव को कम करने के लिए स्वच्छता, उचित प्रबंधन, और वैज्ञानिक रोकथाम उपायों का पालन अत्यंत आवश्यक है।

अंकिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ माजिद खान, महिमा लांजेवार, अनुष्का पशीने
छात्र, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट (म.प्र.)

✍ डॉ. अंकित कुमार गोयल (सहायक प्राध्यापक)
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट (म.प्र.)

✍ अवधेश सिंह चौधरी विभागाध्यक्ष, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट (म.प्र.)

आलू की खेती : किसानों की आय में वृद्धि के स्रोत आधार

परिचय: भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ पर विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती की जाती है, जहाँ किसानों की आय में बढ़ोतरी के लिए तथा बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए ऐसी फसलों की खेती करना आवश्यक है, जो की कम समय, कम लागत और कम श्रम में अधिक उत्पादन और लाभ प्रदान कर सकें, ऐसी ही एक फसल है आलू जिसका वैज्ञानिक नाम सोलनम ट्यूबरोसम है,तथा ये सोलानेसी परिवार से है, जो अपने स्टार्चयुक्त खाद्य गुणों के लिए उगाया जाता है। इसकी खेती रबी मौसम या शरद ऋतु में की जाती है। आलू की खेती किसानों की आय का महत्वपूर्ण स्रोत है, क्योंकि यह विश्व की चौथी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है,आलू एक ऐसी नगदी फसल है, जिसे सब्जियों का राजा कहा जाता है।

भारत में आलू उत्पादक राज्य: आलू की खेती भारत के लगभग सभी राज्यों में की जाती है, परंतु मुख्य रूप से उ.प्र., पश्चिम बंगाल, बिहार, म.प्र., पंजाब, हरियाणा और गुजरात में इसका उत्पादन अधिक होता है। इन राज्यों की जलवायु और उपजाऊ मिट्टी आलू की खेती के लिए अनुकूल होती है। इसके अलावा हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन आलू की खेती की जाती है। यूपी देश में सबसे बड़ा आलू उत्पादक राज्य माना जाता है।

आलू का पोषण मूल्य: आलू एक पोषक तत्वों से भरपूर कंद फसल है जो ऊर्जा का अच्छा स्रोत माना जाता है इसमें -* ऊर्जा 77 किलो कैलोरी * कार्बोहाइड्रेट 17 ग्राम * प्रोटीन 2 ग्राम * वसा 0.1 ग्राम * फाइबर 2.2 ग्राम * विटामिन 19.7 मि.ग्रा. (प्रतिरक्षा बढ़ाने वाला) * पोटैशियम 429 मि.ग्रा. (हृदय और रक्तचाप के लिए लाभकारी) मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, आयरन भी थोड़ी मात्रा में पाए जाते हैं।

आलू के उपयोग:

खाद्य पदार्थों में: सब्जी, पराठा, आलू चाट, समोसा, चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, टिक्की आदि बनाने में।

प्रसंस्कृत उत्पाद: आलू स्टार्च, आलू पाउडर, पापड़, नमकीन, स्नैक्स उद्योग में।

औद्योगिक उपयोग: स्टार्च का उपयोग वस्त्र, कागज और औषधि उद्योग में।

पशु आहार: आलू की खराब या छोटे आकार की गाँठें पशुओं के चारे में प्रयुक्त।

मद्य निर्माण: आलू से इथाइल अल्कोहल और बायो-फ्यूल तैयार किया जाता है।

मृदा का चयन:- आलू की खेती के लिए बलुई दोमट या दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है, एवं मिट्टी का पीएच मान 5.5 से 7.0 के बीच होना चाहिए तथा खेत में जल भराव नहीं चाहिए, क्योंकि आलू की कंद सड़ सकते हैं, अच्छे जल निकास वाली भुरभुरी मिट्टी होनी चाहिए, ताकि आलू के कंद अच्छी तरह विकसित हो सकें। भारी चिकनी मिट्टी उपयुक्त नहीं हो ऐसे खेत चुनाव करना चाहिए जहां पिछले साल आलू या टमाटर जैसी फसल न हुई हो, ताकि रोग और कीट का प्रकोप कम हो तथा धान काटने के बाद का खेत आलू के लिए अच्छा रहता है क्योंकि मिट्टी नरम होती है। खेत ऐसा होना चाहिए जहाँ पर्याप्त धूप मिलती हो। छायादार या अधिक पेड़ों वाले खेत उपयुक्त नहीं होते खेत में पास ही सिंचाई का साधन कुआँ, ट्यूबवेल, नहर होना चाहिए क्योंकि आलू की फसल को समय-समय पर पानी की आवश्यकता होती है खेत समतल होना चाहिए ताकि क्यारियाँ और मेड़ आसानी से बनाई जा सकें खेत में खरपतवार और झाड़ियाँ नहीं होनी चाहिए।

खेत की जुताई:- आलू की खेती के लिए खेत की जुताई एक महत्वपूर्ण चरण है। जुताई के दौरान, खेत की मिट्टी को ढीला और हवादार बनाया जाता है, जिससे आलू के पौधों की जड़ें गहराई तक जा सकें और पोषक तत्वों को अच्छी तरह से अवशोषित कर सकें।बोआई से पहले गहरी जुताई मोल्ड बोर्ड हल या रोटावेटर से करनी चाहिए इससे खेत के खरपतवार और कीट-पतंगों के अंडे नष्ट हो जाते हैं पहली जुताई के बाद खेत को कुछ दिन धूप में खुला छोड़ देना चाहिए फिर 2-3 बार देशी हल या हैरो से जुताई करें ताकि मिट्टी भुरभुरी करना चाहिए जुताई के बाद खेत में पाटा अवश्य चलना चाहिए ताकि मिट्टी की सतह समतल हो जाए और नमी सुरक्षित रहे।

खाद तथा उर्वरक: आलू की खेती में बहुत अधिक मात्रा में खाद और उर्वरकों की आवश्यकता होती है क्योंकि यह मिट्टी के ऊपर सतह से ही भोजन प्राप्त करती है इसलिए इसे प्रचुर मात्रा में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है। जिसके लिए गोबर की खाद 200 क्विंटल प्रति हें. की दर से डालान चाहिए ऐसा करने से मिट्टी की उर्वराशक्ति हमेशा कायम रहती है तथा रासायनिक उर्वरक पौधों को आवश्यकतानुसार सही समय पर मिलता रहता है। रासायनिक उर्वरकों में 150 किग्रा. नेत्रजन 330 किग्रा. यूरिया के रूप में प्रति हें. की दर से डाला जाता है। यूरिया की आधी मात्रा यानि 165 किलोग्राम रोपनी के समय तथा शेष 165 किलोग्राम रोपनी के 30 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने के समय डाला जाता है। 90 किलोग्राम स्फुर तथा 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हें. की दर से डाला जाता है। स्फुर हेतु डीएपी या सिंगल सुपर फास्फेट दोनों में से किसी एक ही खाद का प्रयोग करें। डीएपी की मात्रा 200 किलोग्राम प्रति हें. तथा सिंगल सुपर फास्फेट की मात्रा 560 किलोग्राम प्रति हें. तथा पोटाश हेतु 170 किलोग्राम म्यूरिएट ऑफ पोटाश प्रति हें. की दर से उपयोग करें।

बुवाई का समय

शीतकालीन आलू: अक्टूबर से नवंबर तक तथा ठंडी और शुष्क जलवायु होनी चाहिए।

ग्रीष्मकालीन आलू: फरवरी से मार्च तक तथा गर्म और आर्द्र जलवायु नहीं होनी चाहिए।

बीज दर: आलू के लिए बीज दर स्थान एवं किस्मों के अनुसार अलग-अलग होता है जो इस प्रकार है:

अर्ली किस्में: * लगभग 20-25 क्विं./हे. बीज की आवश्यकता होती है।

मध्यवर्ती: * लगभग 25-30 क्विंटल/हेक्टेयर बीज लगते हैं।

लेट किस्में-लगभग 30-35 क्विंटल/हे. बीज लगते हैं।

पर्वतीय क्षेत्र: * यहाँ बीज दर थोड़ी अधिक रखी जाती है, यानी 30-35 क्विं./हे.।

बीजोपचार: आलू की बुवाई से पहले, बीजकंदों को फफूंद जनित रोगों और कीड़ों से बचाने के लिए बीजउपचार आवश्यक है। इसके लिए मेटालैक्सिल 8%+मैनकोजेब 64% तीन ग्राम/लीटर पानी का कवकनाशी और थिमेथोक्साम 75% एक ग्राम/लीटर पानी का कीटनाशक घोल तैयार करना चाहिए इस घोल को बीजकंदों पर स्प्रे करें या उन्हें 30 मिनट तक डुबोकर रखें, जिससे स्वस्थ अंकुरण होता है और उपज बढ़ती है।

रोपाई दूरी: * कतार से कतार दूरी - 60×25 सेंमी * पौधे से पौधे की दूरी - 20×25 सेंमी।

रोपनी की विधि: आलू रोपने के लिए मिट्टी चढ़ाकर लगभग 15 सें.मी. ऊँचा मेड बनान चाहिए तथा उसे कुदाली से हल्का थप-थप कर मिट्टी दबा देना चाहिए ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे तथा सिंचाई में भी सुविधा हो। बीज कंद को 5-7 सेंमी गहराई में मिट्टी में दबा देना चाहिए आलू रोपनी के लिए सबसे उपयुक्त विधि मेडों पर 60×25 सेमी की दूरी और 5 7 सेंमी गहराई पर बीज कंद लगाना है इससे पैदावार अधिक और कंद का आकार बेहतर मिलता है।

सिंचाई: आलू की सिंचाई करते समय मृदा में पर्याप्त नमी (65-75% तक) बनाए रखना महत्वपूर्ण है जिस के लिए बुवाई के लगभग 20-25 दिन बाद जब पौधे अच्छे से उग आएं तब प्रथम सिंचाई करना चाहिए फिर कंद बनने की शुरुआत पर लगभग 40-45 दिन बाद दूसरी सिंचाई करना चाहिए एवं फूल आने के समय 50-60 दिन बाद तीसरी सिंचाई तथा कंद के विकास काल में 70-75 दिन बाद चौथी सिंचाई और अंतिम सिंचाई खुदाई से लगभग 10-12 दिन पहले बंद कर दें ताकि कंद की खाल सख्त हो जाए।

रोग एवं रोग प्रबंधन: आलू के रोग आलू की फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं और उत्पादन में कमी ला सकते हैं। **आलू के रोगों को पहचानना और उनका प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है:**

आलू के सामान्य रोग:

फाइटोफ्थोरा ब्लाइट: यह एक फफूंदजनित रोग है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का झुलसा: यह एक फफूंदजनित रोग है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का मोजेक वायरस: यह एक वायरसजनित रोग है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का स्कैब: यह एक जीवाणुजनित रोग है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू के रोगों के लक्षण:

पत्तियों का पीला होना: आलू के पौधों की पत्तियां पीली हो सकती हैं।

पत्तियों का मुरझाना: आलू के पौधों की पत्तियां मुरझा सकती हैं।

आलू के आकार में बदलाव: आलू के आकार में बदलाव आ सकता है।

आलू के रंग में बदलाव: आलू के रंग में बदलाव आ सकता है।

आलू के रोगों का प्रबंधन:

प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग: आलू की प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना।

फफूंदनाशकों का उपयोग: फफूंदनाशकों का उपयोग करना।

जीवाणुनाशकों का उपयोग: जीवाणुनाशकों का उपयोग करना।

स्वच्छता और फसल चक्र: स्वच्छता और फसल चक्र का पालन करना।

कीट एवं कीट प्रबंधन: आलू के कीट आलू की फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं और उत्पादन में कमी ला सकते हैं। आलू के कीटों को पहचानना और उनका प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है।

आलू के सामान्य कीट:

आलू का भृंग: यह एक प्रमुख कीट है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का एफिड: यह एक छोटा कीट है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का कटवम: यह एक कीट है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू का व्हाइटफ्लाई: यह एक कीट है जो आलू के पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

आलू के कीटों के लक्षण:

पत्तियों का नुकसान: आलू के पौधों की पत्तियां नुकसान पहुंच सकती हैं।

आलू के आकार में बदलाव: आलू के आकार में बदलाव आ सकता है।

आलू के उत्पादन में कमी: आलू के उत्पादन में कमी आ सकती है।

आलू के कीटों का प्रबंधन

कीटनाशकों का उपयोग: कीटनाशकों का उपयोग करना।

जैविक नियंत्रण: जैविक नियंत्रण के तरीकों का उपयोग करना।

फसल चक्र: फसल चक्र का पालन करना।

स्वच्छता: स्वच्छता का पालन करना।

खुदाई: सामान्यतः आलू की फसल किस्म के अनुसार 90 से 120 दिन में तैयार हो जाती है इस का संकेत यह है कि पौधों की पत्तियाँ और तने पीले होकर सूखने लगें कंद की बाहरी खाल सख्त और चमकदार हो जाए तथा नाखून से खुरचने पर छिलका आसानी से न निकले। खुरपी, गैंती या हल के द्वारा सावधानीपूर्वक खुदाई करें ताकि कंद कटें नहीं और बड़े पैमाने पर आलू की खुदाई के लिए आलू खोदने वाली मशीन पोटैटो डिगर का उपयोग किया जाता है।

उपज: परिपक्वता अवधि और फसल प्रणाली को अपनाने पर रोपनी के 60 दिन बाद 100 क्विंटल, 75 दिन बाद 200 क्विंटल, 90 दिन बाद, 300 क्विंटल तथा 105 दिन बाद प्रभेद के अनुसार 400 क्विंटल प्रति ह. तक उपज प्राप्त की जाती है।

भंडारण: आलू को ठंडी और हवादार जगह पर रखना चाहिए एवं भंडारण हेतु तापमान लगभग 4-7° और आर्द्रता 85-90 उचित रहती है सीधे धूप में रखने से आलू हरे पड़ जाते हैं और जहरीले हो जाते हैं।

निष्कर्ष: आलू की खेती भारत के किसानों के लिए आय वृद्धि का एक महत्वपूर्ण और भरोसेमंद साधन सिद्ध हो रही है। यह ऐसी नगदी फसल है जिसकी मांग पूरे वर्ष बनी रहती है और जिसका उपयोग घरेलू रसोई से लेकर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग तक व्यापक रूप से किया जाता है। आलू की खेती का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह कम समय में तैयार हो जाती है और एक ही वर्ष में किसान कई बार फसल लेकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, आलू से बने प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे चिप्स, स्टार्च, आलू पाउडर और फ्रेंच फ्राइज किसानों को स्थानीय स्तर पर ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों से भी जोड़ते हैं।

रश्मिता सोनारे पीएचडी स्कॉलर (विस्तार शिक्षा विभाग)
डॉ. सीमा नबेरिया विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय , जबलपुर (म.प्र.)

वर्मीकंपोस्टिंग: फसल अवशेष को काले सोने में बदलना

यह पोषक तत्व, सूक्ष्मजीव और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाला समृद्ध कार्बनिक पदार्थ है जो फसल की पैदावार को बढ़ाता है और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखता है। यह जैविक उर्वरक अकार्बनिक उर्वरक की तुलना में कृषि मिट्टी से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के नियंत्रण में शामिल है, जो इसे बढ़ावा देता है। वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करके टिकाऊ फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि मिट्टी में वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से निरंतर फसल उगाने में आने वाली बाधाएँ कम हो जाती हैं। यह मिट्टी के जैविक और भौतिक रासायनिक गुणों को बढ़ाता है। इस वर्मीकम्पोस्ट-प्रेरित मिट्टी के जीव विज्ञान और स्थिति में सुधार से फसल उत्पादकता में वृद्धि हुई। वर्मीकम्पोस्ट की उपस्थिति में पौधों की पोषकता और वानस्पतिक वृद्धि में भी सुधार होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के उद्देश्य:

वर्मीकंपोस्टिंग के मुख्य उद्देश्य हैं: * पोषक तत्वों की कमी वाली मिट्टी को उच्च गुणवत्ता वाली खाद देने के लिए जैविक कचरे को खाद में बदलना और साथ ही ठोस जैविक कचरे का निपटान करना। * कृषि कार्यों, डेयरी फार्मों और पशु आश्रयों द्वारा उत्पादित जैविक कचरे की एक बड़ी मात्रा जिसे आमतौर पर कचरे के रूप में त्याग दिया जाता है और जो एक अप्रिय गंध उत्सर्जित करता है, उसे सही तरीके से खाद बनाकर अतिरिक्त मूल्य के साथ अंतिम उत्पाद बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट की पोषक सामग्री

क्रं.	पैरामीटर	पोषक सामग्री
1.	पीएच	6.8
2.	कार्बनिक कार्बन %	11.88
3.	कार्बनिक पदार्थ %	20.46
4.	सीः एन अनुपात	25-30
5.	कुल नाइट्रोजन (%)	1.02
6.	उपलब्ध नाइट्रोजन (%)	0.50
7.	उपलब्ध फॉस्फोरस (%)	0.30
8.	उपलब्ध पोटेशियम (%)	0.24
9.	Ca (%)	0.17
10.	Mg (%)	0.06

केंचुओं के प्रकार: ये लगभग 3600 प्रकार के केंचुए हैं जिन्हें बिल खोदने वाले और बिल न खोदने वाले प्रकारों में विभाजित किया गया है। लाल केंचुए की प्रजातियाँ, जैसे आइसेनिया फेटिडा, खाद बनाने में सबसे कुशल हैं। बिल न खोदने वाले केंचुए 10 प्रतिशत मिट्टी और 90 प्रतिशत जैविक अपशिष्ट पदार्थ खाते हैं, ये जैविक अपशिष्ट को बिल खोदने वाले केंचुओं की तुलना में अधिक तेज़ी से वर्मीकंपोस्टिंग में बदल देते हैं। जबकि बिल खोदने वाले केंचुए केवल रात में मिट्टी की सतह पर आते हैं, ये मिट्टी में 3.5 मीटर की गहराई तक छेद करते हैं और 90 प्रतिशत मिट्टी और 10 प्रतिशत जैविक अपशिष्ट को निगलकर 5.6 किलोग्राम कास्ट बनाते हैं। प्रत्येक केंचुए का वजन लगभग 0.5 से 0.6 ग्राम होता है। इसका ऊष्मायन काल 26- 27 दिन का होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के प्रकार: उत्पादन की मात्रा और खाद बनाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली संरचनाएँ वर्मीकंपोस्टिंग के विभिन्न प्रकारों को निर्धारित करती हैं।

1. **छोटे पैमाने पर वर्मीकंपोस्टिंग:** जब व्यक्तिगत ज़रूरतों के हिसाब से वर्मीकंपोस्टिंग छोटे पैमाने पर की जाती है, तो एक किसान प्रति वर्ष 5 से 10 टन वर्मीकंपोस्ट एकत्र कर सकता है।

2. **बड़े पैमाने पर वर्मीकंपोस्टिंग:** इसे व्यावसायिक पैमाने पर किया जाता है, जिससे प्रति वर्ष 50 से 100 टन जैविक अपशिष्ट उत्पन्न होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के तरीके: वर्मीकंपोस्ट बनाने के कई तरीके हैं, लेकिन बेड और पिट प्रक्रिया सबसे लोकप्रिय हैं।

1)**बिस्तर विधि:** 6'2'2 फीट माप वाले जैविक पदार्थ का बिस्तर बनाकर, पक्के या कच्चे फर्श पर खाद बनाई जाती है। इस दृष्टिकोण को बनाए रखना और उपयोग करना सरल है।

2)**गड्ढा विधि:** 5'5'3 फीट आकार के और सीमेंट से बने गड्ढों में खाद बनाना गड्ढा विधि है। संरचना को ढकने के लिए घास या किसी अन्य देशी सामग्री का उपयोग किया जाता है। यह विधि पसंद नहीं की जाती है क्योंकि इससे अधिक कचरा उत्पन्न होता है, वायु संचार खराब होता है और उत्पादन में अधिक लागत आती है।

वर्मीकंपोस्टिंग

समृद्ध वर्मीकंपोस्टिंग तैयार करने की विधियाँ:-

कृमि खाद तैयार करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखें। ये निम्नानुसार हैं:- * जैविक अपशिष्ट, जैसे पशु मल, रसोई का कचरा और अन्य जैविक अपशिष्टों को 50:50 के अनुपात में विघटित करना।

साइट का चयन: यह छायादार होना चाहिए, उच्च आर्द्रता और ठंडा होना चाहिए, सड़क के निकटता, पानी की आपूर्ति के निकटता, बिजली की आपूर्ति के निकटता,

* आइसीना फोटिडा में कोकून का उत्पादन हर 3 दिनों में 1।

* आयाम 8% * 4% * 2.5 %के बिस्तर के लिए वर्मीकंपोस्टिंग के लिए आवश्यक कच्चा माल 1.5 - 2.0 क्विंटल है और बिस्तर बाथरूम की तरह दो तरफा ढलान वाला है। ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए। * बिस्तर की सामग्री भारी होनी चाहिए, उच्च जल अवशोषण और कम सीएन अनुपात, यह ताजा घास और ताजा गाय का गोबर नहीं होना चाहिए। * गड्ढे को भरने के बाद उसमें 4 किग्रा/एम2 की दर से केंचुए डाले जाते हैं। * इसके बाद गड्ढे को बोरियों से ढक देना चाहिए ताकि गड्ढे में नमी बनी रहे। * बोरियों में पानी छिड़कना चाहिए ताकि मिश्रण की मात्रा 40-50% हो। * वायु संचार बनाए रखने और उचित विघटन के लिए बिस्तर को 30 दिनों के बाद एक बार पलट देना चाहिए। * खाद 40-45 दिनों में तैयार हो जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ:

* **पौधों की जड़ों का विकास:** वर्मी कम्पोस्ट का पौधों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह पौधों को मिलने वाले पोषक तत्वों को बढ़ाता है, जिससे बीज जल्दी अंकुरित होते हैं, तेजी से बढ़ते हैं, बेहतर जड़ प्रणाली विकसित होती है और अधिक उपज होती है। इसका मतलब है कि अधिक फूल या ताजे फल और सब्जियाँ। * मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार होता है। * वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी की उर्वरता और जल-प्रतिरोधकता को बढ़ाता है। * अंकुरण, पौधों की वृद्धि और फसल की उपज में मदद करता है। * ऑक्सिन, जिबेरेलिक एसिड आदि जैसे पौधों के विकास हार्मोन के साथ मिट्टी का पोषण करता है।

वर्मीकम्पोस्टिंग की सीमाएं:

1.**समय की खपत:** केंचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया पारंपरिक खाद बनाने की विधि की तुलना में धीमी हो सकती है, इसमें जैविक पदार्थों को विघटित करने में छह महीने या उससे अधिक समय लग सकता है।

2.**गंध और कीट:** यदि ठीक से प्रबंधित नहीं किया जाता है, तो केंचुआ खाद बनाने की प्रणाली अप्रिय गंध छोड़ सकती है, और मक्खियों और अन्य कीटों जैसे कीटों को आकर्षित कर सकती है।

3.**तापमान और नमी नियंत्रण:** केंचुओं को विशिष्ट तापमान और नमी की आवश्यकता होती है, इसलिए इष्टतम कृमि गतिविधि और अपघटन हेतु इन कारकों को सावधानीपूर्वक बनाए रखा जाना चाहिए।

4.**स्थान की आवश्यकताएँ:** केंचुआ खाद बनाने के डिब्बे या सिस्टम के लिए स्थान की आवश्यकता होती है, जो सीमित क्षेत्रों वाले लोगों के लिए एक बाधा हो सकती है।

5.**रासायनिक संवेदनशीलता:** केंचुआ कुछ रसायनों, विशेष रूप से अमोनिया के प्रति संवेदनशील होते हैं, जो खाद बनने वाले कार्बनिक पदार्थों के प्रकारों को सीमित कर सकते हैं।

12/2025-26

✍ नरेन्द्र पाटीदार एम.एस.सी. (एजी.), मंदसौर वि.वि. मंदसौर
✍ अरुण एम.एससी. (एजी.), मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर
✍ डॉ. अंकित कुमार सिंह (सहायक प्रोफेसर) मंदसौर वि.वि. मंदसौर

जैविक खेती : एक स्थायी कृषि पद्धति

परिचय: भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग 60 प्रतिशत आबादी आज भी अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। वर्षों से पारंपरिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और रासायनिक औषधियों का अत्यधिक उपयोग बढ़ गया है, जिससे मृदा की गुणवत्ता, जल की शुद्धता और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इन समस्याओं का समाधान जैविक खेती के माध्यम से संभव है, जो प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित करती है। जैविक खेती न केवल मृदा स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित करती है, बल्कि किसानों की आय और उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य दोनों में सुधार लाती है।

जैविक खेती का इतिहास और आवश्यकता: जैविक खेती की अवधारणा नई नहीं है। भारत में प्राचीन काल से ही गोबर, हरी खाद, और कम्पोस्ट के प्रयोग से भूमि की उर्वरता को बनाए रखा जाता था। परंतु हरित क्रांति के बाद अधिक उत्पादन की चाह में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग बढ़ा, जिससे मृदा के सूक्ष्मजीव नष्ट होने लगे और उत्पादन लागत बढ़ी। आज बढ़ते प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य समस्याओं के बीच जैविक खेती की आवश्यकता और भी अधिक महसूस की जा रही है।

मुख्य उद्देश्य और सिद्धांत: जैविक खेती का प्रमुख उद्देश्य भूमि, जल और पर्यावरण को सुरक्षित रखते हुए सतत कृषि विकास को सुनिश्चित करना है। **इसके मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं-**

* मृदा की प्राकृतिक उर्वरता को बनाए रखना। * रासायनिक पदार्थों के उपयोग को समाप्त या न्यूनतम करना। * स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना। * जैव विविधता का संरक्षण करना। * किसानों की उत्पादन लागत को घटाकर उनकी आय में वृद्धि करना।

जैविक खेती की प्रमुख विधियाँ व तकनीकें

1. **हरी खाद का प्रयोग:** दलहनी फसलों जैसे सन, ढैंचा, मूंग आदि की फसल को भूमि में पलटकर हरी खाद के रूप में प्रयोग करना।

2. **कम्पोस्ट और वर्मी-कम्पोस्ट:** जैविक अपशिष्ट पदार्थों को सड़ाकर कार्बनिक खाद तैयार करना जो मृदा की संरचना में सुधार लाता है।

3. **जीवामृत और घनजीवामृत:** गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन आदि से तैयार घोल का प्रयोग जो सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को बढ़ावा देता है।

4. **फसल चक्र और मिश्रित खेती:** भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए विभिन्न फसलों का क्रमिक उत्पादन करना।

5. **जैविक कीटनाशक:** नीम, लहसुन, अदरक, धतूरा आदि से बने घोलों का प्रयोग कीट नियंत्रण हेतु करना।

जैविक खाद, कीटनाशक एवं फसल प्रबंधन: जैविक खेती में प्रयुक्त खादें जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट और वर्मी-कम्पोस्ट न केवल पोषक तत्व प्रदान करती हैं बल्कि मिट्टी की जल धारण क्षमता और वातन में सुधार करती हैं। जैविक कीटनाशक फसलों पर रासायनिक अवशेष नहीं छोड़ते और पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित रहते हैं। फसल प्रबंधन में समय पर बुवाई, खरपतवार नियंत्रण, तथा जैव विविधता का संरक्षण शामिल है।

सरकारी योजनाएँ और पहलें

भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ चला रही हैं, जैसे-

* परम्परागत कृषि विकास योजना (PKVY)
* राष्ट्रीय जैविक कृषि मिशन (NOM)
* मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट फॉर नॉर्थ ईस्ट रीजन (MOVCDNER)

इन योजनाओं के माध्यम से किसानों को प्रशिक्षण, प्रमाणन, वित्तीय सहायता तथा विपणन की सुविधाएँ दी जाती हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य कृषि को आत्मनिर्भर और पर्यावरण-अनुकूल बनाना है।

लाभ, चुनौतियाँ और सुझाव: जैविक खेती के अनेक लाभ हैं जैसे- मृदा स्वास्थ्य में सुधार, पर्यावरण संरक्षण, स्वस्थ खाद्य उत्पादन और किसानों की दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता। हालाँकि प्रारंभिक वर्षों में उत्पादन में कुछ कमी देखी जाती है, परंतु दीर्घकाल में मिट्टी की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता दोनों बढ़ती हैं। इस पद्धति की प्रमुख चुनौतियाँ हैं ङ्क पर्याप्त प्रशिक्षण का अभाव, विपणन की कठिनाइयाँ और प्रमाणन प्रक्रिया की जटिलता। सरकार को चाहिए कि किसानों के लिए सुलभ प्रमाणन प्रणाली, बेहतर बाजार संपर्क और जैविक उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था करे।

निष्कर्ष: जैविक खेती न केवल कृषि का भविष्य है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और जनस्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। यदि प्रत्येक किसान आंशिक रूप से ही सही, परंतु जैविक विधियों को अपनाने लगे, तो भारत पुनः विश्व में कृषि क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकता है। यह पद्धति 'एक पृथ्वी - एक स्वास्थ्य' के सिद्धांत को साकार करती है।

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2025-26

भारतीय कृषि में महिलाओं की अपरिहार्य भूमिका

✍ **अंकिता साहू** सहायक प्राध्यापक एवं अनुभागाध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

✍ **शिवानी भारद्वाज** एम.एससी. अंतिम वर्ष के छात्र, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

✍ **नेहा द्विवेदी, आदित्य सिंह** अतिथि शिक्षक, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

परिचय और भागीदारी का परिदृश्य: ग्रामीण भारत के सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय विकास में ग्रामीण महिलाएँ अग्रणी हैं। भारत की 80% ग्रामीण महिलाएँ कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं, जिनमें से 33% कृषि उद्योग में और 48% स्वतंत्र किसान हैं (स्रोतः नीति आयोग)। महिला श्रमिकों का सशक्तिकरण खाद्य और पोषण सुरक्षा को बेहतर बनाने, भूख और गरीबी को कम करने और 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति है।

वैश्विक और राष्ट्रीय परिदृश्य: विकासशील देशों में कृषि श्रम शक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी 43त्न है। उत्पादक संसाधनों तक समान पहुँच न होने के कारण महिला किसान पुरुषों की तुलना में कम उत्पादक होती हैं। यदि महिलाओं को समान पहुँच मिले, तो वे कृषि उपज में 20-30त्न तक की वृद्धि कर सकती हैं, जिससे दुनिया में भूखे लोगों की संख्या 15 करोड़ तक कम हो सकती है। **भारतीय परिदृश्य (2011 की जनगणना):** कुल महिला मुख्य श्रमिकों में से 55% कृषि श्रमिक और 24% किसान थीं। हालाँकि, केवल 12.8% परिचालन जोतों का स्वामित्व महिलाओं के पास था, जो भूमि स्वामित्व में बड़ी लैंगिक असमानता को दर्शाता है। ग्रामीण महिलाओं की कार्यबल भागीदारी दर (30.5%) शहरी महिलाओं (20.20%) की तुलना में अधिक है।

महिला कार्यबल के सामने आर्थिक बाधाएं

अपनी उच्च भागीदारी के बावजूद, महिला किसानों को कई प्रणालीगत बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी आर्थिक और सामाजिक कमज़ोरी बनी रहती है। ऐतिहासिक रूप से भूमि पर सीमित कानूनी अधिकार महिलाओं की आर्थिक कमज़ोरी को बढ़ाते हैं। भूमि स्वामित्व से घरेलू हिंसा में कमी और कानूनी अधिकारों को मज़बूती मिलती है (बोधगया संघर्ष, 1970 के दशक)। कृषि कार्यों की श्रम-प्रधान प्रकृति के बावजूद, श्रम बाजार की खामियों (सीमित गतिशीलता, सूचना का अभाव) और क्षेत्रीय कारकों (स्थानीय मांग, कार्य की कठिनाई, जीवन-यापन की लागत) के कारण कृषि मजदूरी दरों में व्यापक अंतर-राज्यीय भिन्नताएँ और पुरुषों की तुलना में असमानताएँ मौजूद हैं।कृषि तकनीक में लैंगिक समावेशिता सीमित है। सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंड, शिक्षा/प्रशिक्षण/डिजिटल साक्षरता तक सीमित पहुँच, और ऋण/भूमि स्वामित्व जैसी वित्तीय बाधाएँ तकनीक में निवेश करने की क्षमता को कम करती हैं। प्रौद्योगिकी प्रदाताओं द्वारा महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की अपर्याप्त समझ और उत्पाद डिज़ाइनों में लैंगिक संवेदनशीलता का अभाव। आय सृजन में उनकी अदृश्य भूमिका, सीमित संपत्ति स्वामित्व और कम प्रशिक्षण के कारण महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक वित्तीय पहुँच संबंधी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। तत्काल पारिवारिक खर्चों के कारण उन्हें अक्सर फसल की कम कीमत भी मिलती है।

नीतिगत और आर्थिक हस्तक्षेप, और निष्कर्ष

इन चुनौतियों का समाधान करने और महिला किसानों के सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा कई नीतिगत और आर्थिक हस्तक्षेप किए जा रहे हैं।महिलाओं के तकनीकी, प्रबंधकीय और नेतृत्व कौशल को बढ़ाने के लिए लिंग-संवेदनशील प्रशिक्षण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।श्रम न्यूनीकरण प्रौद्योगिकियाँ- ऐसी प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना जो शारीरिक श्रम को कम करती हैं (जैसे, निराई और कटाई के उपकरण), जिससे महिलाओं के स्वास्थ्य, दक्षता और उत्पादकता में सुधार होता है।

महिला नेतृत्व को बढ़ावा देना

मार्गदर्शन नेटवर्क स्थापित करना और कृषि संबंधी निर्णय लेने में लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करना। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों तक बेहतर पहुँच- भूमि, जल और अन्य प्रमुख संसाधनों के स्वामित्व और उपयोग के लिए महिलाओं के कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करना। लक्षित ऋण और सब्सिडी योजनाओं (पीएमईजीपी, एमकेएसपी) के माध्यम से वित्तीय समावेशन का विस्तार करना, महिला किसानों और उद्यमियों को कम ब्याज दर वाले ऋणों के साथ समर्थन करना।

महिलाओं के लिए सरकारी योजनाएं

* नमो ड्रोन दीदी 2023 महिलाओं के नेतृत्व वाले स्वयं सहायता समूहों को कृषि उद्देश्यों के लिए ड्रोन तकनीक और पायलट प्रशिक्षण प्रदान करके सशक्त बनाना।
* राष्ट्रीय कृषि विस्तार और प्रौद्योगिकी मिशन (NMAET) 2014 महिला किसानों को सही ज्ञान, प्रौद्योगिकी और संसाधन प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाना।
* राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन 2007 कृषि और खाद्य सुरक्षा में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानते हुए, उन्हें संसाधन प्रदान करके सशक्त बनाना।
* कृषि अवसंरचना कोष 2021 महिला किसानों और उद्यमियों को कृषि अवसंरचना परियोजनाओं के लिए ऋण और सब्सिडी सहित निधि संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष

महिलाएँ कृषि के लिए अपरिहार्य हैं, जो किसान, मजदूर और मूल्य-श्रृंखला कर्ता के रूप में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। अपनी केंद्रीय भूमिका के बावजूद, उन्हें भूमि, ऋण, प्रौद्योगिकी और उचित मजदूरी तक पहुँच में प्रणालीगत बाधाओं का सामना करना पड़ता है। लैंगिक अंतर को कम करने से कृषि उपज में वृद्धि होगी, वैश्विक कृषि उत्पादन बढ़ेगा, और खाद्य सुरक्षा एवं गरीबी उन्मूलन मज़बूत होगा, जिससे देश के समग्र विकास को गति मिलेगी

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गेहूं उत्पादन की उन्नत तकनीक

कोमल गुप्ता राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

छत्रपाल सिंह पुहुप दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

सखा राम शोरी इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

गेहूँ भारत में दूसरी सबसे जरूरी अनाज की फसल है। यह दुनिया में खाने के लिए इस्तेमाल होने वाले सभी अनाजों में सबसे जरूरी फसल है। गेहूं मनुष्य के शरीर की न्यूट्रिशनल जरूरतों के लिए एक अच्छा सप्लीमेंट है क्योंकि इसमें 8.0-15.0% प्रोटीन, 60-68% स्टार्च, 1.5-2.0% फैट, 2.0-2.5% सेल्यूलोज और 1.5-2.0% मिनरल होते हैं। गेहूं खाने और न्यूट्रिशनल सिक्योरिटी में एक जरूरी भूमिका निभाता है क्योंकि यह सेहत के लिए एक बहुत अच्छा मुख्य खाना है, इसे लगभग 65% आबादी अलग-अलग तरह से खाती है। भारत में पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश मुख्य फसल उत्पादक क्षेत्र हैं।

जलवायु एवं भूमि: गेहूँ की खेती के लिए समशीतोषण जलवायु की आवश्यकता होती है, इसकी खेती के लिए अनुकूल तापमान बुवाई के समय 20-25 डिग्री सेंटीग्रेट उपयुक्त माना जाता है, गेहूँ की खेती मुख्यत सिंचाई पर आधारित होती है गेहूँ की खेती के लिए दोमट भूमि सर्वोत्तम मानी जाती है, लेकिन इसकी खेती बलुई दोमट, भारी दोमट, मटियार भूमि में की जा सकती है।

खेत की तैयारी: गेहूँ की बुवाई अधिकतर धान की फसल के बाद ही की जाती है, पहली जुताई मिटटी पलटने वाले हल से तथा बाद में डिस्क हैरो या कल्टीवेटर से 2-3 जुताईयां करके खेत को समतल करते हुए भुरभुरा बना लेना चाहिए, डिस्क हैरो से धान के ढूंठे कट कर छोटे छोटे टुकड़ों में हो जाते हैं, इन्हें शीघ्र सड़ाने के लिए 20-25 किग्रा यूरिया प्रति हैक्टर कि दर से पहली जुताई में अवश्य दे देनी चाहिए। इससे ढूंठे, जड़ें सड़ जाती हैं ट्रैक्टर चालित रोटावेटर से एक ही जुताई द्वारा खेत पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है।

प्रजातियाँ: रत्न, अरपा, छत्तीसगढ़ गेहूं-2, छत्तीसगढ़ गेहूं-3, छत्तीसगढ़ गेहूं-4, छत्तीसगढ़ अंबर गेहूं, छत्तीसगढ़ हंसा गेहूं आदि हैं।

असिंचित: इसमें मगहर के 8027, इंद्रा के 8962, गोमती के 9465, के 9644, मन्दाकिनी के 9251, एवं एचडीआर 77 आदि हैं।

सिंचित: सिंचित दशा वाली प्रजातियाँ सिंचित दशा में दो प्रकार की प्रजातियां पाई जाती हैं,

समय से बुवाई के लिए: इसमें देवा के 9107, एच पी 1731, राजश्य लक्ष्मी, नरेन्द्र गेहूँ 1012, उजियार के 9006, डीएल 784-3, (वैशाली) भी कहतें हैं, एचयूडब्लू 468, एचयूडब्लू 510, एचडी 2888, एचडी 2967, यूपी 2382, पी बी डब्लू 443, पी बी डब्लू 343, एचडी 2824 आदि हैं।

देर से बुवाई के लिए: त्रिवेणी के 8020, सोनाली एचपी 1633 एचडी 2643, गंगा, डीवी डब्लू 14, के 9162, के 9533, एचपी 1744, नरेन्द्र गेहूँ 1014, नरेन्द्र गेहूँ 2036, नरेन्द्र गेहूँ 1076, यूपी 2425, के 9423, के 9903, एच डब्लू 2045, पी बी डब्लू373,पी बी डब्लू 16 आदि हैं।

बीज दर: गेहूँ कि बीज दर लाइन से बुवाई करने पर 100 कि0ग्रा0 प्रति हैक्टर तथा मोटा दाना 125 कि0ग्रा0 प्रति हैक्टर तथा छिड़काव से बुवाई कि दशा से 125 कि0ग्रा0 सामान्य तथा मोटा दाना 150 कि0ग्रा0 प्रति हैक्टर कि दर से प्रयोग करते हैं,

बीज शोधन: बुवाई के पहले बीज शोधन के लिए बाविस्टिन, काबेन्डाजिम कि 2 ग्राम मात्रा प्रति कि0ग्रा0 कि दर से बीज शोधित करके ही बीज की बुवाई करनी चाहिए। जैविक बीजोपचारः गेहूं के बीज को एजोटोबेक्टर कल्चर से उपचारित करते हैं। फास्फोरस विलयकारी जीवाणु (पीएसबी) कल्चर से बीज को उपचारित करके भूमि में फास्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। प्रत्येक किलोग्राम बीज के लिए दोनों कल्चर का 10-10 ग्राम उपयोग किया जाये।

बुवाई विधि: गेहूँ की बुवाई समय से एवं पर्याप्त नमी पर करनी चाहिए अंन्यथा उपज में कमी हो जाती है। गेहूँ की बुवाई सीड्रिल से करनी चाहिए तथा गेहूँ की बुवाई हमेशा लाइन में करें।

बुवाई समय: सयुंक्त प्रजातियों की बुवाई अक्तूबर के प्रथम पक्ष से द्वितीय पक्ष तक उपयुक्त नमी में बुवाई करनी चाहिए, अब आता है सिंचित दशा इसमे की चार पानी देने वाली हैं समय से अर्थात 15-25 नवम्बर, सिंचित दशा में ही तीन पानी वाली प्रजातियों के लिए 15 नवंबर से 10 दिसंबर तक उचित नमी में बुवाई करनी चाहिए और सिंचित दशा में जो देर से बुवाई करने वाली प्रजातियाँ हैं वो 15-25 दिसम्बर तक उचित नमी में बुवाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए, गेहूँ की अच्छी उपज के लिए खरीफ की फसल के बाद भूमि में 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तथा देर से बुवाई करने पर 80 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश, अच्छी उपज के लिए 20 क्यूिंटल प्रति हैक्टर सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। गोबर की खाद एवं आधी नत्रजन की मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय आखिरी जुताई में या बुवाई के समय खाद का प्रयोग करना चाहिए, शेष नत्रजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई पर तथा बची शेष मात्रा दूसरी सिंचाई पर प्रयोग करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: गेहूँ की फसल में रबी के सभी खरपतवार जैसे बथुआ, प्याजी, खरतुआ, हिरनखुरी, चटरी, मटरी, सैंजी, अंकरा, कृष्णनील, गेहुंसा, तथा जंगली जई आदि खरपतवार लगते हैं। इनकी रोकथाम निराई गुड़ाई करके की जा सकती है, लेकिन कुछ रसायनों का प्रयोग करके रोकथाम किया जा सकता है जो की निम्न है जैसे की पेंडामेथेलिन 30 ईसी 3.3 लीटर की मात्रा 800-1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव बुवाई के बाद 1-2 दिन तक करना चाहिए। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करने के लिए बुवाई के 30-35 दिन बाद एवं पहली सिंचाई के एक सप्ताह बाद 2,4 डी सोडियम साल्ट 80% डब्लूपी. की मात्रा 625 ग्राम 600-800 लीटर पानी में मिलकर 35-40 दिन बाद बुवाई के फ्लैटफैन नीजिल से छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद जहाँ पर चौड़ी एवं संकरी पत्ती दोनों ही खरपतवार हों वहां पर सल्फोसल्फ्युरान 75% 32 एम.एल. प्रति हैक्टर इसके साथ ही मेटासल्फ्युरान मिथाइल 5 ग्राम डब्लूजी. 40 ग्राम प्रति हैक्टर बुवाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए।

रोग और नियंत्रण: खड़ी फसल में बहुत से रोग लगते हैं, जैसे अल्टरनेरिया, गेरुई या रतुआ एवं ब्लाइट का प्रकोप होता है जिससे भारी नुकसान हो जाता है। इसमें मुख्य रूप से झुलसा रोग लगता है, इनकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब 2 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से या प्रापिकोनाजोल 25% ईसी की 0.5 लीटर मात्रा 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए, इसमे गेरुई या रतुआ मुख्य रूप से लगता है, इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब 2 किग्रा. या जिनेब 25% ईसी आधा लीटर, 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति है. छिड़काव करना चाहिए।

कीट और नियंत्रण: गेहूँ की फसल में शुरू में दीमक कीट, माहू, सुंडी, गुलाबी तना बेधक कीट लगता है, इन सभी कीट की रोकथाम के लिए कीटनाशी जैसे क्यूनालफास 25 ईसी की 1.5-2.0 लीटर मात्रा 700-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए, या सैपरमेथ्रिन 750 मी.ली. 700-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कटाई: फसल पकते ही कटाई करके तुरंत ही मड़ाई कर दाना निकाल लेना चाहिए, अत्यधिक क्षेत्री वाली फसल कि कटाई कम्बाईन से करनी चाहिए इसमे कटाई व मड़ाई एक साथ ही जाती है जब कम्बाईन से कटाई कि जाती है।

उपज: असिंचित स्थिति में 35-40 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है, सिंचित स्थिति में समय से बुवाई करने पर 55-60 क्यूिंटल प्रति हैक्टेयर पैदावार मिलती है तथा सिंचित देर से बुवाई करने पर 40-45 क्विं. प्रति हैक्टर पैदावार प्राप्त होती है।

भण्डारण: मौसम का बिना इंतजार किए हुए उपज को बोरो में भर कर साफ सुथरे स्थान पर सुरक्षित कर सूखी नीम कि पत्ती का बिछावन डालकर करना चहिए या रसायन का भी प्रयोग करना चाहिए।

कृषक ही बने प्रजनक : किसानों की भागीदारी से बीज विकास

डॉ. द्वारका सहायक प्रोफेसर (अतिथि), कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि वि.वि, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

निशा चढ़ार एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड वि.वि., शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़

डॉ. आनंद कुमार पाण्डेय सह-प्राध्यापक, कीटशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी केम्पस, चन्द्र शेखर आजाद विश्वविद्यालय कृषि एवं प्रौद्योगिकी (उ.प्र.)

सारांश

कृषक ही बने प्रजनक एक क्रांतिकारी विचार है, जिसमें किसान पारंपरिक ज्ञान और अनुभव से फसल की किस्मों को सुधारने में योगदान देते हैं। इससे न केवल बीजों की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि किसानों का आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता भी बढ़ती है।

प्रस्तावना

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की भूमिका सिर्फ खाद्य उत्पादन तक सीमित नहीं रह गई है। अब किसान फसल सुधार और बीज विकास की प्रक्रिया में भी सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। इस परिवर्तन ने Participatory Plant Breeding यानी भागीदारी पौध प्रजनन की एक नई अवधारणा को जन्म दिया है, जहाँ वैज्ञानिकों और किसानों की साझेदारी से खेतों में उपयोगी और स्थानीय अनुकूल किस्मों का विकास संभव हुआ है।

किसानों की भूमिका बीज विकास में

* पारंपरिक बीज चयन की तकनीकें किसानों के अनुभव और पर्यावरणीय समझ पर आधारित होती हैं। आधुनिक बीज विकास कार्यक्रमों में जब किसानों की स्थानीय जानकारी और वैज्ञानिक अनुसंधान को एक साथ जोड़ा गया, तो परिणाम अत्यंत प्रभावशाली रहे। इस प्रक्रिया में-

* किसान बीज चयन, संकरण, परीक्षण, और उत्पादन के प्रत्येक चरण में शामिल रहते हैं।

* स्थानीय जलवायु, मिट्टी, रोग-कीट, और बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए स्थानीय अनुकूलित किस्मों का विकास होता है।

* किसान अपने स्वयं के खेतों को 'जीवित प्रयोगशाला' के रूप में उपयोग करते हैं।

भागीदारी प्रजनन के लाभ

स्थानीय जरूरतों की पूर्ति- किसान उन किस्मों का चयन करते हैं जो उनकी भूमि और जलवायु के अनुकूल हों।

बीज पर स्वराज्य - किसान अपनी जरूरतों के अनुसार बीज तैयार करते हैं, जिससे बाजार पर निर्भरता घटती है।

कम लागत, अधिक लाभ - बिना कंपनी के बीजों पर निर्भर हुए, बेहतर उत्पादन संभव होता है।

जैव विविधता का संरक्षण - देसी किस्मों को संरक्षित और पुनर्जीवित करने में मदद मिलती है।

उदाहरण

* बिहार, ओडिशा, और मध्यप्रदेश के कई किसानों ने धान और गेहूं की कई नई किस्में विकसित की हैं।

* संगठनों ने किसानों को प्रशिक्षित कर, उन्हें बीज प्रजनन के लिए सशक्त बनाया है।

नीति एवं सहयोग

सरकार और कृषि अनुसंधान संस्थानों को ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए, जिसमें किसानों को प्रशिक्षित कर उन्हें बीज विकास प्रक्रिया में भागीदार बनाया जाए। इससे बीज का लोकतंत्रीकरण होगा और कृषि में आत्मनिर्भरता आएगी।

निष्कर्ष

बीज विकास की प्रक्रिया में किसानों की सक्रिय भागीदारी एक सशक्त, टिकाऊ और स्वदेशी कृषि तंत्र की नींव है। जब किसान खुद बीजों के निर्माता बनते हैं, तब वे केवल उपभोक्ता नहीं रहते, बल्कि ज्ञान और नवाचार के वाहक बन जाते हैं। यह भारत को बीज स्वराज्य की ओर ले जाने का सशक्त माध्यम है।

12/2025-26

मध्यप्रदेश में कृषि शैक्षणिक संस्थानों और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का पतन: अतिथि शिक्षकों पर निर्भरता का परिणाम

कपिल मारन पीएचडी शोधार्थी, (कृषि विस्तार शिक्षा विभाग), राजमाता विजयाराजे कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति की आधारशिला होती है। किसी राज्य की शिक्षा व्यवस्था उसकी सोच, प्राथमिकताओं और भविष्य की दिशा को दर्शाती है। दुर्भाग्यवश, मध्यप्रदेश की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति एक गंभीर संकट से गुजर रही है। कभी उत्कृष्टता और समर्पित शिक्षकों के लिए प्रसिद्ध रहे इस राज्य के महाविद्यालय और विश्वविद्यालय आज गुणवत्ता के मामले में पिछड़ते जा रहे हैं। इस पतन का मुख्य कारण है–स्थायी शिक्षकों की नियुक्ति के स्थान पर लगातार अतिथि (Guest) शिक्षकों पर निर्भरता।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: स्थिरता से अस्थिरता की ओर : बीते दशकों में मध्यप्रदेश की उच्च शिक्षा व्यवस्था अपेक्षाकृत स्थिर और सुदृढ़ थी। सरकारी कृषि महाविद्यालयों में पूर्णकालिक और योग्य प्राध्यापक नियुक्त रहते थे जो केवल पढ़ाने तक सीमित नहीं थे, बल्कि शोध, विद्यार्थियों के मार्गदर्शन और समाजसेवा में भी सक्रिय रहते थे। कृषि महाविद्यालय इंदौर, ऋ.च कृषि महाविद्यालय सीहोर, कृषि महाविद्यालय जबलपुर व रीवा जैसे संस्थान कभी शिक्षा के प्रतीक माने जाते थे। लेकिन पिछले दो दशकों में यह व्यवस्था धीरे-धीरे चरमरा गई। हजारों स्वीकृत पद वर्षो से खाली पड़े हैं। सरकार ने इन रिक्तियों को भरने के बजाय अस्थायी व्यवस्थाओं–जैसे अतिथि और व्यावसायिक शिक्षकों–पर निर्भर रहना शुरू कर दिया। जो व्यवस्था कुछ महीनों के लिए बनाई गई थी, वह अब स्थायी रूप से शिक्षा प्रणाली का हिस्सा बन गई है।

अतिथि और व्यावसायिक शिक्षकों की बढ़ती व्यवस्था: अतिथि शिक्षकों की नियुक्ति प्रारंभ में इस उद्देश्य से की गई थी कि शिक्षण कार्य बाधित न हो। इन्हें घंटे या महीने के आधार पर भुगतान किया जाता है, परंतु इनमें स्थायी सेवा का कोई प्रावधान नहीं होता। इसी प्रकार, व्यावसायिक शिक्षकों की नियुक्ति कौशल आधारित शिक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत की गई, परंतु उनके पद भी अस्थायी हैं। इन व्यवस्थाओं ने तात्कालिक समस्या तो हल की, परंतु दीर्घकाल में शिक्षण की गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित किया। अस्थायी शिक्षक संस्थान से भावनात्मक रूप से जुड़ नहीं पाते, शोध कार्य नहीं कर पाते, और प्रशासनिक या नवाचार संबंधी जिम्मेदारियां नहीं निभा पाते। परिणाम स्वरूप शिक्षा केवल औपचारिकता बनकर रह गई है।

शिक्षकों पर प्रभाव: असुरक्षा और निरुत्साह का वातावरणः आज मध्यप्रदेश में बड़ी संख्या में ऐसे शिक्षक कार्यरत हैं जो उच्च योग्य (PhD, NET) होने के बावजूद अतिथि या संविदा रूप में काम कर रहे हैं। इन्हें बहुत कम वेतन मिलता है, न तो कोई भविष्य निधि, न स्थायी दर्जा, और न ही सामाजिक सुरक्षा। इस अस्थिरता ने शिक्षकों के मनोबल को कमजोर कर दिया है। कई प्रतिभाशाली शिक्षक स्थायी अवसरों की तलाश में अन्य राज्यों या निजी कोचिंग संस्थानों की ओर पलायन कर जाते हैं। इस 'ब्रेन ड्रेन' से सरकारी शिक्षा संस्थान अपने सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों को खो रहे हैं, जिससे शिक्षण और अनुसंधान दोनों की गुणवत्ता गिर रही है।

विद्यार्थियों पर प्रभाव: सीखने की निरंतरता का अभावः इस संकट का सबसे बड़ा असर विद्यार्थियों पर पड़ा है। जब हर वर्ष शिक्षक बदल जाते हैं, तो शिक्षा की निरंतरता समाप्त हो जाती है। विद्यार्थियों को न तो दीर्घकालिक मार्गदर्शन मिलता है, न ही शोध और व्यक्तित्व विकास के अवसर। अतिथि शिक्षक अपने सीमित समय और अधिकारों के कारण पाठ्यक्रम से बाहर की गतिविधियों में भाग नहीं ले पाते। परिणाम स्वरूप कक्षाएं केवल औपचारिक बनकर रह जाती हैं, मूल्यांकन यांत्रिक हो जाता है और विद्यार्थियों की सोचने-समझने की क्षमता घटती जाती है। यह स्थिति न केवल उच्च शिक्षा बल्कि रोजगार और सामाजिक विकास को भी प्रभावित करती है।

संस्थागत प्रभाव: विश्वविद्यालयों से लेकर ग्रामीण स्थित महाविद्यालयों तक सभी सरकारी संस्थान लगभग पूरी तरह अतिथि शिक्षकों के भरोसे चल रहे हैं। प्रयोगशालाएं बंद पड़ी हैं, शोध कार्य रुक गए हैं और NAAC जैसे मूल्यांकन में कॉलेजों की ग्रेडिंग लगातार गिर रही है। प्रदेश के मात्र दो कृषि विश्वविद्यालय–जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर और राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर भी अपने संबद्ध कॉलेजों की कमजोर स्थिति के कारण गुणवत्ता बनाए रखने में असमर्थ हैं। कृषि संबंधित शोध परियोजनाओं, प्रकाशनों और राष्ट्रीय रैंकिंग में मध्यप्रदेश का प्रदर्शन लगातार नीचे जा रहा है।

प्रशासनिक उपेक्षा और राजनीतिक दृष्टिहीनता: सरकार द्वारा समय-समय पर स्थायी भर्ती की घोषणाएँ की जाती हैं, परंतु अधिकांश भर्तियाँ वर्षों तक अटकी रहती हैं। बजटीय सीमाओं और प्रशासनिक विलंब के कारण ये प्रक्रियाएँ अधूरी रह जाती हैं। वहीं दूसरी ओर, राजनीतिक प्राथमिकताएँ शिक्षा सुधार के बजाय लोकलुभावन योजनाओं पर केंद्रित हैं। यह नीति दूरदर्शिता के अभाव को दर्शाती है। केवल छात्रवृत्तियाँ बाँटने या प्रोत्साहन योजनाएँ लागू करने से शिक्षा की गुणवत्ता नहीं सुधरती। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मूल आधार है–एक स्थायी, प्रेरित और जिम्मेदार शिक्षक समुदाय।

शोध और नवाचार पर असर: विश्वविद्यालय की पहचान केवल पढ़ाई से नहीं, बल्कि शोध, नवाचार और समाजसेवा से बनती है। अतिथि शिक्षकों के पास न समय होता है, न संसाधन और न ही मान्यता कि वे शोध कार्य कर सकें। फलस्वरूप, मध्यप्रदेश के कृषि विश्वविद्यालय राष्ट्रीय शोध परियोजनाओं और प्रकाशनों में पिछड़ रहे हैं। इससे एक दुष्चक्र बन गया है–कम शोध से कम फंड मिलता है, और कम फंड से शिक्षा व्यवस्था और कमजोर होती जाती है।

स्थायित्व और गरिमा की पुर्नस्थापना: यदि इस गिरावट को रोकना है, तो ठोस नीतिगत कदम आवश्यक हैं–

1.स्थायी शिक्षकों की शीघ्र भर्ती: सभी स्वीकृत पदों को पारदर्शी और नियमित प्रक्रिया से भरा जाए।

2.संस्थानों को स्वायत्तता: कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को शिक्षण और नियुक्ति से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाए।

3.शिक्षक विकास कार्यक्रम: प्रशिक्षण, शोध छात्रवृत्ति और विनिमय कार्यक्रमों से शिक्षकों की गुणवत्ता और आत्मविश्वास बढ़ाया जाए।

4.निगरानी और जवाबदेही: नियमित मूल्यांकन और प्रदर्शन ऑडिट से संस्थानों की जवाबदेही तय की जाए।

निष्कर्ष: मध्यप्रदेश में शिक्षा संस्थानों का पतन किसी एक नीति की गलती नहीं, बल्कि वर्षों की उपेक्षा का परिणाम है। अतिथि और व्यावसायिक शिक्षकों पर निर्भरता ने शिक्षा की जड़ों को कमजोर कर दिया है। यदि अब भी सुधार नहीं हुआ, तो राज्य एक पूरी पीढ़ी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित कर देगा। शिक्षा केवल पुस्तकों या भवनों से नहीं चलती–यह शिक्षकों की निष्ठा, स्थायित्व और आत्मसम्मान पर टिकी होती है। अतः आवश्यकता है कि मध्यप्रदेश एक बार फिर उस परंपरा को पुनर्जीवित करे जहाँ शिक्षक केवल 'कार्यरत कर्मचारी' नहीं, बल्कि 'राष्ट्र निर्माण के आधारस्तंभ' हों।

शालु गिरी, उजमा अर्शी कनिष्ठ परियोजना अध्येता, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, प.सु.श. केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान, भोपाल (म.प्र.)

जाधव शांतिलाल, असद खान पी-एच.डी. शोधार्थी, भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

ग्लूटेन-मुक्त जीवन: स्वस्थ भारत की ओर एक क्रांतिकारी कदम

ग्लूटेन-फ्री जीवन: भारत के लिए स्वस्थ विकल्प

भारत में ग्लूटेन असहिष्णुता तेजी से पहचानी जा रही है, जिसमें इसके लक्षण अक्सर सामान्य पाचन असुविधा जैसे पेट दर्द, सूजन या भूरे के खाने के बाद अचानक थकान के रूप में छुपे होते हैं। हालिया अध्ययनों के मुताबिक भारतीय शहरी जनसंख्या में लगभग 1 प्रतिशत लोग सीलियक रोग से प्रभावित है जबकि गैर-सीलियक ग्लूटेन संवेदनशीलता भी बढ़ रही है और लगभग 10 प्रतिशत आबादी को प्रभावित कर रही है। सामान्य अपच से अलग, ग्लूटेन से जुड़ी बीमारियाँ शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को छोटे आंत पर हमला करने के लिए प्रेरित करती हैं जिससे पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा आती है और एनीमिया, ऑस्टियोपोरोसिस और कुछ कैंसर जैसी जटिलताओं का खतरा बढ़ जाता है ।

ग्लूटेन क्या है और क्यों महत्वपूर्ण है?

ग्लूटेन गेहूं, जौ और राई में पाया जाने वाला एक जटिल प्रोटीन है जो बेक्ड खाद्य पदार्थों को खिंचाव और बनावट प्रदान करता है। सीलियक रोग ग्रसितों में, यह प्रोटीन शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा आंत की परत पर हमला कर विलोस्स अट्रॉफी पैदा करता है जिससे लोहा, विटामिन बी 12, फोलेट और कैल्शियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है। गैर-सीलियक ग्लूटेन संवेदनशीलता भी समान लक्षण उत्पन्न करती है पर इसमें आंत को कोई क्षति नहीं होती; इसके कारणों को समझने के लिए अनुसंधान जारी है ।

ग्लूटेन असहिष्णुता के लक्षण

* गेहूं आधारित खाद्य पदार्थ खाने के बाद सूजन, दस्त या पेट दर्द
* लगातार थकान, सिरदर्द, जोड़ों का दर्द
* 'ब्रेन फॉग' या मूड में बदलाव
* त्वचा पर खुजली वाले धब्बे, मासिक चक्र में गड़बड़ी
* गंभीर लक्षण जैसे वजन घटना, एनीमिया, या होंठ के घाव

इन लक्षणों को अक्सर सामान्य पाचन समस्या समझा जाता है, जिससे निदान में देरी होती है। ऐसे मामलों में शीघ्र जांच आवश्यक है ।

ग्लूटेन समस्या के निदान के लिए टेस्ट

रक्त परीक्षण: प्रति-टी.टी.जी. और ई.एम.ए. एंटीबॉडी, जो 90-95 प्रतिशत सटीकता के साथ सीलियक रोग का निदान करते हैं ।

जेनेटिक परीक्षण: एच.एल.ए.-डी.क्यू. 2 और डी.क्यू. 8 मार्कर, जो परिवार के सदस्यों में जोखिम का आकलन करने में उपयोगी है।

एडवांस्ड आई.एल. 2 परीक्षण: नया रक्त परीक्षण जो ग्लूटेन चुनौती के बिना सीलियक रोग का 90% संवेदनशीलता और 97% विशिष्टता के साथ निदान करता है। फिलहाल यह मुख्यतः विशेष केंद्रों में उपलब्ध है और वैधता पर काम जारी है ।

एंडोस्कोपी और बायोप्सी: आंतों की क्षति की पुष्टि के लिए स्वर्ण मानक।

निकास आहार : चिकित्सकीय निगरानी में ग्लूटेन का निषेध, गैर-सीलियक ग्लूटेन संवेदनशीलता के निदान के लिए जरूरी। जल्दी और सही निदान से ऑस्टियोपोरोसिस, बांझपन, एनीमिया और कैंसर जैसी जटिलताओं से बचाव होता है ।

भारत में ग्लूटेन असहिष्णुता क्यों बढ़ रही है?

हरित क्रांति के बाद से गेहूं की नई किस्मों में ग्लूटेन की मात्रा बढ़ गई है, और शहरी भारत में लगभग 70 प्रतिशत आहार में गेहूं शामिल होने से ग्लूटेन का सेवन काफी बढ़ गया है । प्रसंस्कृत और फास्ट फूड की बढ़ती खपत भी इस वृद्धि में भूमिका निभा रही है। युवा भारतीयों में आनुवांशिक प्रवृत्तियां इस बढ़ती प्रवृत्ति को और बढ़ा रही हैं जिसे हालिया एपिडेमियोलॉजिकल सर्वेक्षण भी पुष्टि करते हैं ।

ग्लूटेन असहिष्णुता से कैसे उबरें और प्रबंधन करें

सख्त ग्लूटेन-मुक्त आहार (जी.एफ.डी.) ही पोषणीय उपचार है। अधिकांश लक्षण कुछ सप्ताहों से महीनों में सुधरते हैं; पूर्ण आंत की मरम्मत में 6 से 24 महीने लग सकते हैं। बच्चों और महिलाओं में आयरन, विटामिन बी 12, विटामिन डी के सप्लीमेंट्स की सिफारिश की जाती है। प्रोबायोटिक्स लाभकारी हो सकते हैं लेकिन इन्हें नियमित उपचार के रूप में अपनाने से पहले और अनुसंधान की आवश्यकता है। छुपे ग्लूटेन स्रोतों और क्रॉस-कंटमिनेशन से सतर्क रहना अत्यंत आवश्यक है। रोगी "एफ.एस.एस.ए.आई." के ग्लूटेन-मुक्त लेबलिंग मानकों का पालन करें और स्वास्थ्य विशेषज्ञ या पंजीकृत डाइटिशियन से परामर्श अवश्य लें।

बाजरा, रागी और ज्वाररू ग्लूटेन-मुक्त सुपरफूड

बाजरा, रागी, और ज्वार जैसे मीलेट प्राकृतिक रूप से ग्लूटेन मुक्त होते हैं और भारत के राष्ट्रीय मीलेट मिशन के माध्यम से इन्हें पोषण और स्थिरता में शामिल किया जा रहा है। ये प्रोटीन, फाइबर, आयरन, एंटीऑक्सीडेंट्स, और बी-कॉम्प्लेक्स विटामिन से भरपूर होते हैं। ये गेहूं की तुलना में कम जल का उपयोग करते हैं जिससे पर्यावरण संरक्षण में योगदान होता है। बाजार के आंकड़े दर्शाते हैं कि मीलेट आधारित उत्पादों की मांग 2022 से दोगुनी हो गई है और ग्लूटेन-मुक्त उत्पादों में निरंतर नवाचार हो रहा है।

अपने स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लें

यदि आप बार-बार पाचन संबंधी परेशानी, थकान, या तंत्रिका संबंधी लक्षण महसूस करते हैं, तो व्यापक परीक्षण के लिए स्वास्थ्य सेवा प्रदाता से संपर्क करें। सही निदान और ग्लूटेन-मुक्त आहार अपनाने के साथ पोषक तत्वों से भरपूर मीलेट शामिल करना गंभीर रोगों से बचाव कर जीवन गुणवत्ता बढ़ा सकता है। भारत में ग्लूटेन-फ्री खाद्य बाजार की वार्षिक वृद्धि लगभग 25 प्रतिशत अनुमानित है जो जागरूकता और नवाचार की गवाही है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885

अमित राय
मैं. माँ उर्वरक केन्द्र
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता
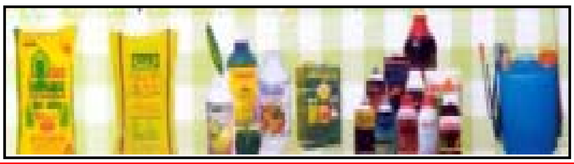
पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

डॉ. पी.पी. सिंह, डॉ. जे.सी. गुप्ता
श्रीमती रीना शर्मा रा.वि.सिं.कृ.वि.वि.-केवीके मुरैना (म.प्र.)
डॉ. रूपेश जैन रा.वि.सिं.कृ.वि.वि.-केवीके दतिया
डॉ. शीतल शर्मा पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
आई.व्ही. आर. आई., इज्जत नगर बरेली (उ.प्र.)

पशु खरीदते समय अच्छे दुधारू पशुओं की नस्ल एवं शारीरिक बनावट के आधार पर पहचान

डेयरी व्यवसाय में अच्छे पशु की पहचान सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। वैसे तो पशुओं का चुनाव करने में पशुओं के रिकार्ड काफी महत्वपूर्ण व उपयोगी होते हैं। जिनमे पशु की जन्मतिथि, प्रथम ब्यॉत के समय उम्र तथा दूध उत्पादन से सम्बंधित आंकड़े दर्ज रहते हैं साथ ही पशु के स्वास्थ्य से संबंधित आंकड़े भी पशुओं के रिकार्ड में दर्ज किये जाते है। परंतु भारत जैसे देश में संगठित डेयरी फार्मो के अलावा अन्यत्र पशुपालकों द्वारा उक्त रिकार्ड नहीं रखे जाते है। परिणाम स्वरूप पशुपालाकों को नये पशु खरीदते समय पशु के वाहरी लक्षणों तथा क्रय किये जाने वाले पशु की नस्ल के लक्षणों को देखकर ही खरीदारी की जाती है। दुधारू पशुओं की खरीद समान जलवायु वाले स्थानों से ही करनी चाहिए। जिससे कि पशु को नये स्थान पर आने पर जलवायु संबंधी चुनौतियों का सामना न करना पड़े। किसी पशु को पशु मेले या पशु हाट से खरीदना वास्तव में एक कला होती है। यद्यपि पशुपालकों को उन्नत नस्ल के पशु स्वयं अपनी देखरेख में तैयार करने चाहिए क्योंकि पशुपालक के पास अपनी नर व मादा पशु का पूरा रिकार्ड रहता है तथापि आर्थिक कारणों से अधिकांश पशुपालक स्वयं नये पशु तैयार नहीं करते तथा अन्य जगह से नये ब्यॉत वाले पशु खरीदकर लाते हैं।

पशुओं को पशु हाट से खरीदते समय निम्नलिखित सावधानियों को अपनाना चाहिए-

1. पशुओं को पशु नस्ल के लक्षणों तथा दुग्ध उत्पादन क्षमता के आधार पर खरीदना चाहिए।
2. यदि किसी व्यवसायिक डेयरी फार्म से पशु क्रय किया जाना है तो उस पशु की हिस्ट्रीशीट की जानकारी देखने के बाद ही पशु की खरीदारी की जानी चाहिए।
3. सामान्यतः पशु को प्रथम ब्यॉत या द्वितीय ब्यॉत के एक माह बाद दुग्ध उत्पादन देखकर ही खरीदना चाहिए।
4. पशु को तीन बार दुग्ध दोहन कराने तथा तीनों का औसत दुग्ध उत्पादन पशु के दुग्ध उत्पादन क्षमता का एक वास्तविक ऑकडा प्रदान करता है।
5. ऐसे पशुओं को खरीदना चाहिए जो स्वभाव से शान्त तथा किसी भी व्यक्ति से दूध दोहन करने पर शान्त रहे।
6. सामान्तः पशुओं को नवम्बर व दिसम्बर माह में क्रय करना चाहिए।
7. पशुओं को किसी भरोसेमंद फार्म या व्यवसायी से खरीदना चाहिए।
8. उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले, स्वस्थ तथा हाल ही में ब्यॉत हुये पशुओं को यदि उपलब्ध हो तो पशु चिकित्सक के मार्गदर्शन में खरीदना चाहिए।

वाहय शारीरिक लक्षणों के आधार पर अच्छे पशुओं की पहचान: वाहय शारीरिक लक्षणो तथा विभिन्न अंगो को देखकर पशु का चुनाव करना चाहिए। वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न शारीरिक बनावट तथा अंगों को निश्चित अंक देकर पशु चयन को करने की सलाह दी गई है। विभिन्न शारीरिक मापदंड तथा उनको दिये गये अधिकतम अंक निम्नानुसार है।

1.शारीरिक गठन (अधिकतम अंक 15): पशु का शारीरिक गठन वास्तव में पूरे पशु की शारीरिक स्थिति को दर्शाता है पशु के शारीरिक गठन को दूर से ही पहचाना जा सकता है। शारीरिक गठन में सबसे महत्वपूर्ण भाग पुठ्ठा गाय का कद तथा नस्ल के लक्षण क्रमशः होते है गाय के पुठे सामान्यतः लंबे चौडे तथा समान लेवल के होने चाहिए क्योंकि पुठे गाय के अयन को शारीरिक ढॉचे से जोडते हैं जिसके कारण अयन लंबा चौडा एवं समान लेवल पर रहता है। पशु की कद उसकी ऊँचाई एवं पैरो की लंबाई से नापा जाता है कद ऊँचा होने पर अयन की ऊँचाई बढ जाती है जिससे गाय बडी हो जाती है अधिक मात्रा में आहार लेती है तथा परिणाम स्वरूप अधिक दुग्ध उत्पादन करती है।

पुठे एवं पूंछ की हड्डी समान लेबल पर

पुठे पूंछ की हड्डी की तुलना में ऊपर मध्यम पशु

2.गाय के दूध उत्पादन लक्षण (20 अंक): गाय के दुधारू लक्षणो में गाय का आकार आगे की ओर चौडा तथा पीछे की ओर संकरा होता है शरीर की त्वचा मुलायम व चमकदार होती है। दुधारू लक्षणों में महत्व के अनुसार कोणीय विन्यास, पसलियॉं ;त्पइेद्ध, जॉघ ;जैपहीद्ध, कंधे ;पजीमतेद्ध, गर्दन व जवडे का निचला हिस्सा क्रमशः होते है। अच्छे पशुओं में गर्दन लम्बी, कंधे नुकीले तथा उन पर चर्बी नहीं होती है। पशु की जॉघ पतली, घुमादार व अतिरिक्त वसा रहित होनी चाहिए। पशु की त्वचा पतली, ढीली तथा लचीली होनी चाहिए।

3.दैहिक क्षमता (10 अंक): दैहिक क्षमता को सामान्यतः पशु के द्वारा अधिक भोजन ग्रहण करने के साथ जोडकर देखा जाता है क्योंकि अधिक भोजन ग्रहण करने पर अधिक दूध उत्पादन करने की संभावना होती है। दैहिक क्षमता को पशु शरीर की लम्बाई एवं गहराई के अनुपात में देखा जाता है। सामान्य भाषा में पशु के पेट की लम्बाई, चौडाई व गहराई को प्रदर्शित करने के लिए दैहिक क्षमता का प्रयोग किया जाता है। अच्छे पशु छाती के भाग में चौडे, पसलियॉं पीछे की ओर मुडी और गहरी होती है।

4.पैर और टांगें (15 अंक): शरीर के इन भागों का मूल्यांकन कठिन होता है। शरीर के ये भाग पशु के विभिन्न क्रियाकलापों पर सीधा प्रभाव डालते है। इन भागों के मूल्यांकन में महत्व के आधार पर टॉगे पिछले पैर (पीछे एवं पार्श्व से देखने पर) घुटने तथा खुर होते है। आदर्श पशु में टॉगों की खुर छोटे तथा ऐडी गहरी होती है। पिछले पैर चौडे, सीधे तथा टखने के साथ सामान्यतः जुडे होते हैं। आदर्श पैर पशु के चलने पर सीधे दिखाई पडते हैं।

5.अयन (40 अंक): पशु शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग अयन होता है। दुधारू पशुओं का मुख्य कार्य दुग्ध उत्पादन होता है। अतः दुग्ध स्त्रवण भाग (अयन) पर सर्वाधिक ध्यान देना चाहिए। कई वर्षो तक अधिक उत्पादन के तनाव को सहन करने के लिए अयन शरीर से मजबूती से जुडा, अच्छे आकार का एवं संतुलित होना चाहिए। अयन का अगला भाग मध्यम लम्बाई का, मजबूती से शरीर के ढॉचे से जुडा हुआ होना चाहिए। यह अयन के पिछले हिस्से से एक समान चौडाई पर संतुलित होना चाहिए। अयन का अगला हिस्सा पशु के चलने पर बहुत थोडा हलना चाहिए।

अयन का पिछला हिस्सा ऊंचा, चौड़ा, चिकना तथा गहरा होना चाहिए। पिछले अयन के दोनों अर्धभाग समान आकार तथा चौडाई के (ऊपर से नीचे तक) होने चाहिये। अयन में जुडे सभी थन समान आकार के लगभग 1.5 इंच से 2.5 इंच लम्बे होने चाहिए। सभी थन एक समान दूरी पर अयन के चारो कोनों पर जुडे रहने चाहिए। सभी थन अयन के दूध से खाली होने पर अंदर की ओर हल्के से मुडे रहने चाहिए तथा अयन दूध से भरने पर नीचे की ओर सीधे होने चाहिए। अयन की त्वचा मुलायम, ढीली एवं नर्म होनी चाहिए। अयन में दूध की शिरा बडी एवं मोटी होना अच्छे दुग्ध उत्पादन का प्रतीक होती है। अयन का मूल्यॉकन करते समय पशु की उम्र व ब्यॉत का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पशु की उम्र बढने पर अयन लंबा तथा गहरा हो जाता है।

पशुपालक किसानों को पशु चयन करते समय कई पशुओं का शारीरिक लक्षणों के आधार पर (अंको की सहायता से) तुलनात्मक मूल्यॉकन करना चाहिए। इस तुलनात्मक मूल्यांकन में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले पशु की खरीदी करना चाहिए। पशुपालक किसान यदि पशु की शारीरिक लक्षणों के आधार पर नवीन पशुओं की खरीद करते है तो निश्चित रूप से अच्छी गुणवत्ता के पशु खरीद पायेंगे एवं अपनी आर्थिक आमदनी को अधिक दुग्ध उत्पादन द्वारा बढा पायेंगे।

01/2025-26

डॉ. शेख टी. जे., डॉ. अमित कुमार झा
डॉ. राजीव रंजन., डॉ. राजेश रंजन
डॉ. बलेश्वरी दीक्षित

पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश-486001

बकरी के बच्चों (मेमनों) में दस्त (सफेद दस्त) की समस्या का समाधान

बकरी पालन भारत में एक महत्वपूर्ण पशुपालन व्यवसाय है। यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए अतिरिक्त आय का एक प्रमुख स्रोत है। बकरियों के बच्चों, जिन्हें मेमने कहा जाता है, में दस्त की समस्या सबसे आम और गंभीर समस्या है, जो उनकी मृत्यु दर को अधिक बढ़ा देती है। विशेषकर जन्म के बाद के तीन सप्ताह में यह समस्या ज्यादा देखने को मिलती है। सफेद दस्त, जिसे व्हाइट स्कोर भी कहा जाता है, बकरी के बच्चों की मृत्यु का एक प्रमुख कारण है, जिससे पशुपालकों को काफी आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है। इस लेख में हम इस समस्या के कारणों, लक्षणों, उपचार और रोकथाम के बारे में विस्तार से जानेंगे।

दस्त की परिभाषा और प्रकार

दस्त एक ऐसी स्थिति है जिसमें पशु के मल में पानी की मात्रा अधिक हो जाती है, जिससे मल का रंग, गंध और स्थिरता में परिवर्तन आ जाता है। यह समस्या पाचन तंत्र की गड़बड़ी का संकेत देता है और शरीर में पानी तथा खनिजों की कमी का कारण बनता है। मेमनों में मुख्यतः दो प्रकार के दस्त देखने को मिलते हैं जो अलग-अलग कारणों से होते हैं।

सफेद दस्त, जिसे व्हाइट स्कोर कहा जाता है, यह सबसे आम समस्या है जो आमतौर पर जन्म के बाद 2 से 10 दिनों में शुरू हो जाती है। इसमें मल का रंग हल्का पीला या सफेद होता है और मल में दुर्गंध नहीं होती। यह आमतौर पर ई. कोलाई, क्लोस्ट्रिडिया और अन्य बैक्टीरिया के कारण होता है। दूसरे प्रकार के दस्त भूरे रंग के होते हैं जो आमतौर पर कोक्सीडिया परजीवी के कारण होते हैं और अधिकतर दो सप्ताह से आठ सप्ताह के बीच के बच्चों को प्रभावित करते हैं। इन दोनों प्रकार के दस्त में पशुपालकों को अलग-अलग उपचार विधियों का प्रयोग करना पड़ता है।

दस्त के कारण

बकरी के बच्चों में दस्त के अनेक कारण हो सकते हैं जिन्हें समझना बहुत जरूरी है। संक्रामक कारण दस्त का सबसे प्रमुख कारण है। ई. कोलाई, सेलमोनेला, क्लोस्ट्रिडियम परफ्रिंजेंस, रोटावायरस, कोक्सीडिया और अन्य रोगाणु दस्त का प्रमुख कारण हैं। ये रोगाणु दूषित दूध, पानी और वातावरण के माध्यम से बच्चों में प्रवेश करते हैं। नवजात बच्चे अभी अपनी प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह विकसित नहीं करते हैं, इसलिए वे आसानी से संक्रमण के शिकार बन जाते हैं।

पोषण संबंधी कारण भी दस्त की समस्या का एक महत्वपूर्ण कारण है। दूध की अपर्याप्त मात्रा, दुर्बल

कॉलोस्ट्रम (प्रथम दूध) का सेवन, या गलत दूध पिलाने की विधि दस्त का कारण बन सकती है। माँ से अलग किए गए बच्चों में अक्सर पोषण संबंधी दस्त देखने को मिलता है। यदि बच्चे को सही समय पर, सही तापमान पर और सही मात्रा में दूध नहीं दिया जाता है, तो वह दस्त से ग्रस्त हो सकता है।

वातावरणीय कारण भी दस्त को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खराब साफ-सफाई, नमी युक्त पर्यावरण, भीड़-भाड़, तापमान में अचानक परिवर्तन और खराब रहने की स्थिति दस्त को बढ़ावा देते हैं। जब बकरियों को ठीक से साफ-सुथरी जगह नहीं दी जाती है, तो वहाँ बैक्टीरिया तेजी से पनपते हैं। आहार संबंधी कारण भी दस्त का कारण बन सकते हैं। किसी नए आहार में अचानक परिवर्तन, खराब गुणवत्ता का दाना, बासी दूध या दूषित पानी दस्त का कारण बन सकते हैं। कई बार जब किसानों को दाने या चारे की किस्म बदलनी पड़ती है, तो बच्चों का पाचन तंत्र अचानक परिवर्तन को सहन नहीं कर पाता है।

तनाव संबंधी कारण भी महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि जलवायु परिवर्तन, परिवहन, टीकाकरण या अन्य शारीरिक तनाव दस्त का कारण हो सकते हैं। जब बच्चे को किसी भी प्रकार का तनाव होता है, तो उसकी प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है और वह संक्रमण के लिए अधिक असुरक्षित हो जाता है।

दस्त के लक्षण

दस्त से प्रभावित मेमनों में कई तरह के लक्षण दिखाई देते हैं जो पशुपालकों को समय पर पहचान करने में मदद करते हैं। सबसे स्पष्ट लक्षण मल की स्थिरता में परिवर्तन है जो किसी भी पशुपालक के लिए आसानी से दिखाई दे जाता है। मल पहले हल्का पीला या सफेद होता है, फिर धीरे-धीरे पानीदार हो जाता है। इसके अलावा बच्चा कमजोर और सुस्त दिखने लगता है, उसकी भूख कम हो जाती है और वह दूध पीने में अरुचि दिखाता है।

निर्जलीकरण के लक्षण भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। त्वचा पर सूखापन आ जाता है, आँखें धंसी हुई दिखने लगती हैं और शरीर निर्जलीकरण के अन्य संकेत दिखाता है। बच्चे की शारीरिक मुद्रा में भी परिवर्तन आता है क्योंकि बच्चा अक्सर गिरा हुआ और कमजोर दिखता है, उसकी पीठ झुकी होती है और वह अलग-थलग रहता है। कई बार बच्चा अपनी माँ के पास से भी नहीं जाता है और शांत बैठा रहता है।

कुछ मामलों में बुखार भी देखने को मिलता है, लेकिन ज्यादातर मामलों में तापमान सामान्य होता है। यदि बच्चे को बुखार है, तो यह गंभीर संक्रमण का संकेत हो सकता है। मल में कभी-कभी रक्त या बलगम भी दिखाई दे सकता है, जो एक बहुत गंभीर स्थिति है। बच्चे की सामान्य मानसिक स्थिति में भी बदलाव आता है, और वह चिड़चिड़ा या अधिक शांत हो सकता है।

रोग निदान

दस्त के सही कारण का पता लगाना उपचार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि विभिन्न कारणों के लिए विभिन्न उपचार की आवश्यकता होती है। एक पशु चिकित्सक से परामर्श लेना सर्वोत्तम उपाय है, विशेषकर जब दस्त गंभीर हो या लंबे समय तक बना रहे। प्रयोगशाला में मल की जाँच करके रोगाणुओं की पहचान की जा सकती है। इस जाँच में माइक्रोस्कोप के अंतर्गत मल को देखा जाता है और किस प्रकार के परजीवी या बैक्टीरिया हैं, इसका पता लगाया जाता है।

रक्त परीक्षण भी किया जा सकता है जो शरीर में संक्रमण की गंभीरता और शरीर में पानी व खनिजों की कमी का पता लगाने में मदद करता है। आमतौर पर, सफेद दस्त का निदान लक्षणों और मल की जाँच से ही हो जाता है। अनुभवी पशु चिकित्सक अक्सर लक्षणों को देखते ही समझ जाते हैं कि समस्या किस प्रकार की है। हालांकि, पुष्टि के लिए प्रयोगशाला परीक्षण कराना अच्छा होता है।

दस्त का उपचार

दस्त के उपचार में सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात निर्जलीकरण से लड़ना है। दस्त से सबसे बड़ा खतरा निर्जलीकरण है क्योंकि इससे बच्चे की मृत्यु तक हो सकती है। इसलिए, शरीर में पानी और खनिजों की कमी को पूरा करना सबसे महत्वपूर्ण है। मेमने को ओ.आर.एस. (ओरल रिहाइड्रेशन सॉल्यूशन) दिया जाना चाहिए जो एक विशेष घोल है जिसमें पानी, नमक, चीनी और अन्य खनिज होते हैं।

ओ.आर.एस. घर पर भी आसानी से बनाया जा सकता है। एक लीटर पानी में 6 ग्राम नमक, 6 ग्राम

चीनी और 1 ग्राम पोटेशियम क्लोराइड मिलाकर यह घोल बनाया जा सकता है। यदि पोटेशियम क्लोराइड उपलब्ध न हो, तो नीबू का रस भी काम आ सकता है। इस घोल को बच्चे को कुछ-कुछ समय के अंतराल पर पिलाया जाना चाहिए। अच्छा होगा कि यह घोल हल्का गर्म हो।

एंटीबायोटिक्स का प्रयोग भी बहुत महत्वपूर्ण है, विशेषकर जब बैक्टीरियल संक्रमण हो। आमतौर पर एन्रोफ्लोक्सासिन, जेंटामाइसिन या अन्य एंटीबायोटिक्स दिए जाते हैं। पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार ही दवाइयाँ दी जानी चाहिएँ क्योंकि गलत दवा या गलत मात्रा बच्चे को और नुकसान पहुँचा सकती है। एंटीबायोटिक्स आमतौर पर 3 से 5 दिनों के लिए दी जाती हैं।

प्रोबायोटिक्स का उपयोग भी बहुत फायदेमंद होता है। ये लाभदायक जीवाणु होते हैं जो पाचन तंत्र को ठीक करने में मदद करते हैं। कई प्रोबायोटिक तैयारियाँ बाजार में उपलब्ध हैं। ये दवाएँ आंत में अच्छे जीवाणुओं की संख्या बढ़ाती हैं और पाचन क्रिया को सुधारती हैं।

आहार प्रबंधन भी उपचार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। दस्त की स्थिति में दूध की मात्रा कम कर देनी चाहिए और समय-समय पर छोटी मात्रा में दूध देना चाहिए। हल्का और पचाने में आसान दूध देना चाहिए क्योंकि भारी दूध पाचन तंत्र को और परेशान कर सकता है। गर्म दूध अधिक फायदेमंद होता है क्योंकि यह पचाने में आसान होता है और दस्त को कम करने में मदद करता है।

कोक्सीडिया के कारण दस्त होने पर विशेष दवाएँ दी जाती हैं। इन पूरक पोषण दवाओं में कोक्सीडियोस्टैट दवाएँ शामिल हैं, जैसे कि अम्प्रोलियम या सल्फामेथॉक्साजोल। ये दवाएँ कोक्सीडिया परजीवी को मारती हैं और बच्चे को इस संक्रमण से बचाती हैं।

रोकथाम के उपाय

दस्त की रोकथाम निश्चित रूप से इसके उपचार से बेहतर है, और पशुपालकों को रोकथाम पर अधिक ध्यान देना चाहिए। साफ-सफाई बकरियों के स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। बकरियों के बाड़े को हमेशा स्वच्छ रखना चाहिए और नियमित रूप से गंदगी को साफ करना चाहिए। गीली जगहों को सूखा रखना चाहिए क्योंकि नमी में बैक्टीरिया तेजी से पनपते हैं। नियमित रूप से कीटाणुनाशक से सफाई करनी चाहिए ताकि हानिकारक जीवाणु नष्ट हों। अच्छी जल निकासी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि बाड़े में पानी न रुके।

कॉलोस्ट्रम देना भी बहुत महत्वपूर्ण है। नवजात मेमने को जन्म के एक घंटे के भीतर गर्म कॉलोस्ट्रम देना चाहिए क्योंकि यह प्रथम दूध होता है और इसमें मातृ एंटीबॉडीज होती हैं। यह प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है और संक्रमणों से बचाव करता है। कॉलोस्ट्रम शरीर के लिए बहुत पौष्टिक और सुरक्षात्मक होता है।

टीकाकरण एक अन्य महत्वपूर्ण रोकथाम उपाय है। उपयुक्त उम्र में मेमनों को आवश्यक टीके लगवाने चाहिए क्योंकि यह भविष्य में विभिन्न बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है। बकरियों के लिए विभिन्न टीके उपलब्ध हैं जो विभिन्न बीमारियों से बचाव करते हैं।

माँ की स्वास्थ्य देखभाल भी बहुत महत्वपूर्ण है। गर्भवती बकरियों को अच्छा पोषण देना चाहिए ताकि वे मजबूत और पोषक कॉलोस्ट्रम पैदा कर सकें। यदि माँ को पोषण अच्छा नहीं है, तो वह अच्छे दूध और कॉलोस्ट्रम नहीं दे सकती है।

सही तरीके से दूध देना भी बहुत जरूरी है। यदि माँ से अलग किया जा रहा है, तो ठीक से निर्धारित समय पर, सही तापमान पर और स्वच्छ बर्तनों में दूध देना चाहिए। दूध देने के लिए उपयोग किए जाने वाले सभी बर्तन हमेशा साफ और कीटाणु रहित होने चाहिए।

परजीवी नियंत्रण भी एक महत्वपूर्ण रोकथाम उपाय है। आंतरिक और बाहरी परजीवियों से बचाव के लिए नियमित रूप से कृमिनाशक दवाएँ दी जानी चाहिए। आमतौर पर हर दो से तीन महीने में कृमिनाशक दवा दी जाती है।

आहार की गुणवत्ता पर भी ध्यान देना चाहिए। सूखा चारा, दाना और अन्य खाद्य सामग्री अच्छी गुणवत्ता की होनी चाहिए। बासी, फफूंदी युक्त या दूषित आहार नहीं देना चाहिए क्योंकि ये नुकसानदेह हो सकते हैं। पानी भी स्वच्छ और ताजा होना चाहिए।

तनाव कम करना भी महत्वपूर्ण है। बकरियों को तनाव से बचाना चाहिए क्योंकि तनाव से प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। परिवहन, भीड़ और अचानक परिवर्तन से बचना चाहिए। बकरियों को शांत और आरामदायक वातावरण में रखना चाहिए।

आयुर्वेदिक और प्राकृतिक उपचार

परंपरागत और प्राकृतिक तरीकों से भी दस्त का उपचार किया जा सकता है, विशेषकर हल्के मामलों में। अरंडी का तेल, मेथी, अजवाइन, जीरा और हल्दी जैसे प्राकृतिक पदार्थ पाचन को ठीक करने में मदद करते हैं और सदियों से उपयोग किए जा रहे हैं। छाछ और दही प्रोबायोटिक्स के प्राकृतिक स्रोत हैं और बकरियों की पाचन क्रिया को सुधारने में मदद करते हैं। केले जैसे फल और अन्य हल्के आहार भी उपयोगी हो सकते हैं क्योंकि ये पचाने में आसान होते हैं। हालांकि, इन्हें पशु चिकित्सक के परामर्श के साथ ही दिया जाना चाहिए ताकि कोई गलती न हो। कुछ किसान घर पर ही प्राकृतिक दवाइयाँ बनाते हैं और इन्हें देते हैं, जिससे लागत कम होती है।

गंभीर मामलों में क्या करें

यदि दस्त बहुत गंभीर है या दो-तीन दिन से ज्यादा बना रहता है, तो तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। कई बार घर पर दिए गए उपचार काम नहीं करते हैं और स्थिति बिगड़ सकती है। निर्जलीकरण की स्थिति में अंतःशिरा तरल पदार्थ देने की आवश्यकता हो सकती है, जो केवल पशु चिकित्सक ही दे सकते हैं। इस उपचार में तरल पदार्थ को सीधे शरीर की नसों में डाला जाता है ताकि शरीर में पानी और खनिजों की कमी तेजी से पूरी हो।

मल में रक्त या बलगम दिखाई दे, या बच्चा बहुत कमजोर हो जाए, तो यह गंभीर स्थिति है और तुरंत चिकित्सा सहायता लेनी चाहिए। इन लक्षणों का मतलब है कि आंत को गंभीर नुकसान हुआ है। बच्चे का तापमान यदि बहुत अधिक या बहुत कम हो गया है, तो भी चिंता का विषय है। कई बार दस्त के कारण सेप्सिस जैसी गंभीर स्थिति भी हो सकती है, इसलिए देरी नहीं करनी चाहिए।

लागत-प्रभावी समाधान

छोटे पशुपालकों के लिए दस्त की रोकथाम सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इलाज करवाना महंगा पड़ सकता है और बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है। अच्छी साफ-सफाई, सही पोषण, उचित टीकाकरण और नियमित स्वास्थ्य जाँच से दस्त को बहुत हद तक रोका जा सकता है। अच्छी साफ-सफाई के लिए अधिक खर्च नहीं होता है, बस नियमितता की जरूरत होती है। समुदायिक स्तर पर जानकारी साझा करना और समूह चिकित्सा सेवाओं का उपयोग करना भी लागत कम करने में मदद कर सकता है। जब कई किसान मिलकर पशु चिकित्सक को बुलाते हैं, तो एक-एक पशु चिकित्सक के खर्च पर कम आता है।

ओ.आर.एस. घोल घर पर बनाया जा सकता है, जिससे महंगी दवाइयों पर खर्च बचता है। प्राकृतिक उपचार भी लागत कम करने में मदद कर सकते हैं। सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं से भी छोटे पशुपालकों को मदद मिल सकती है। पशु चिकित्सा विभाग से मुफ्त सलाह और दवाइयाँ भी मिल सकती हैं।

बकरी के बच्चों में दस्त की समस्या गंभीर है, लेकिन सही देखभाल, समय पर उपचार और उचित रोकथाम से इसे नियंत्रित किया जा सकता है। पशुपालकों को अपनी बकरियों के स्वास्थ्य के प्रति हमेशा सचेत रहना चाहिए और नियमित रूप से पशु चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए। साफ-सफाई, अच्छे पोषण, सही तरीके से दूध देना और समय पर टीकाकरण करवाना दस्त को रोकने के मुख्य तरीके हैं। इन सभी उपायों को अपनाकर पशुपालक अपनी बकरियों की मृत्यु दर को काफी हद तक कम कर सकते हैं।

दस्त जैसी समस्याओं से बचने के लिए रोकथाम पर ध्यान देना उपचार से कहीं बेहतर है। पशुपालकों को स्वास्थ्य संबंधी नई जानकारी के बारे में जानना चाहिए और अपने अनुभवों को आपस में साझा करना चाहिए। बकरी पालन एक लाभदायक व्यवसाय है, लेकिन इसके लिए जानकारी, देखभाल और नियमितता की आवश्यकता होती है। स्वस्थ बकरियाँ अधिक दूध देती हैं, अच्छी संतानें देती

मवेशियों का शीतकालीन प्रबंधन

डॉ. सुष्मिता तिवारी, डॉ. नम्रता उपाध्याय
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

भारत में नवंबर के आगमन के बाद सर्दियों का मौसम शुरू हो गया है। डेयरी मवेशियों को खुद को स्वस्थ रखने के लिए आसपास के तापमान के साथ खुद को ढालना पड़ता है। ठंडे तापमान से निपटने के लिए, मवेशी सर्दियों में मोटे कोट पहनते हैं और अपने शरीर की गर्मी का उत्पादन बढ़ाते हैं। वे अपनी हृदय गति और श्वसन को बढ़ाकर इसे पूरा करते हैं, इस प्रकार हाथ-पैरों को जमने से बचाने के लिए रक्त प्रवाह को बढ़ाते हैं। यद्यपि यह शारीरिक प्रतिक्रिया गायों को अपेक्षाकृत आराम से बेहद कम तापमान का सामना करने में सक्षम बनाती है, लेकिन उन्हें अपने शरीर और उत्पादन को बनाए रखने के लिए अधिक चारे की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए ठंड के मौसम में गायों को 20 प्रतिशत तक अधिक चारे की आवश्यकता हो सकती है।

अत्यधिक ठंड होने पर पशु का उत्पादन प्रदर्शन भी प्रभावित होगा क्योंकि ऊर्जा का बढ़ा हुआ अनुपात शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए उपयोग किया जाएगा और उत्पादकता पशु के शरीर के तापमान को सामान्य और स्थिर बनाए रखने की क्षमता पर निर्भर करती है। लेकिन मवेशियों में पोषक तत्वों के उपयोग और पशु प्रदर्शन पर ठंड के तनाव के प्रभाव पर कम शोध ध्यान दिया गया है। डेयरी मवेशियों को गौशालाओं में रखा जाता है जिससे जानवरों पर पर्यावरणीय तापमान में उतार-चढ़ाव का प्रभाव कम हो जाता है। लेकिन ढीली आवास प्रणाली के तहत रखे गए जानवरों को ठंड के तनाव से बचाने के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। आरामदायक सूक्ष्म वातावरण प्रदान करके जानवरों को संरक्षित किया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में और वर्ष के विभिन्न भागों में तापमान 0 से 40C तक और आरामदायक तापमान 18 से 27C तक भिन्न-भिन्न होता है, इसलिए दोनों तरफ चरम सीमा से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इस मौसम के दौरान कई जानवर अक्सर खाने से इनकार कर देते हैं, बुखार और निमोनिया से पीड़ित हो जाते हैं। इससे पशु के दूध उत्पादन, स्वास्थ्य और प्रजनन पर असर पड़ता है। सामान्य गाय और भैंस के शरीर का तापमान 101-102 डिग्री फ़ारेनहाइट के बीच होता है और उपयुक्त परिवेश का तापमान 65-75 डिग्री फ़ारेनहाइट होता है। अत्यधिक ठंडे वातावरण के परिणामस्वरूप ऊर्जा हानि बढ़ जाती है, जिसकी भरपाई अतिरिक्त कैलोरी युक्त चारा और विशेष देखभाल देकर की जाती है। नस्ल, पोषण, आयु, स्तनपान की स्थिति, गर्भधारण प्रभाव और प्रबंधन एसएनएफ और वसा प्रतिशत को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं। पोषण, विशेष रूप से संतुलित राशन, साबुत कपास के बीज या केक जैसे प्रोटीन सामग्री के साथ मजबूत और पूरक, महत्वपूर्ण हो जाता है। पशु आहार में लगभग 17 प्रतिशत फाइबर युक्त आहार भी दूध में वसा प्रतिशत बढ़ाने में सहायक होता है। सांद्र मिश्रण में अनाज (40 प्रतिशत), खली (32 प्रतिशत), चोकर (25 प्रतिशत), खनिज मिश्रण (2 प्रतिशत) और साधारण नमक (1 प्रतिशत) शामिल होना चाहिए।

इसके अलावा सामान्य दूध उत्पादन और अन्य गतिविधियों को बनाए रखने के लिए ठंड के तनाव का मुकाबला करने के लिए शरीर के वजन का लगभग 0.8 प्रतिशत अतिरिक्त ऊर्जा युक्त अनाज खिलाया जाना चाहिए।

चयापचय और शारीरिक अनुकूलन पर ठंड के तनाव का प्रभाव: * ताप उत्पादन बढ़ाने के लिए शुष्क पदार्थ का सेवन बढ़ाएँ * चिंतन में वृद्धि * जठरांत्र संबंधी मार्ग की गतिशीलता में वृद्धि * रुमेन और पाचन तंत्र में फ़ीड और तरल पदार्थ के पारित होने की दर में वृद्धि * बेसल चयापचय दर और रखरखाव ऊर्जा आवश्यकताओं में वृद्धि। * शरीर का वजन कम होना। * ऊर्जा के स्तर को बनाए रखने के लिए शरीर के ऊतकों के उपयोग से प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर हो जाती है और चुनौतियों के प्रति कम प्रतिक्रियाशील हो जाती है।

शरीर में ऑक्सीजन की खपत में वृद्धि

* कार्डियक आउटपुट में वृद्धि * एड्रेनालाईन, कोर्टिसोल और वृद्धि हार्मोन के स्तर में वृद्धि * लिपोलिसिस, ग्लाइकोनोजेनेसिस, ग्लाइकोजेनोलिसिस में वृद्धि * हेपेटिक ग्लाइकोस आउटपुट में वृद्धि * रुमेन की मात्रा में कमी * शुष्क पदार्थ की पाचन क्षमता में कमी * ग्लूकोज़ डालने पर इंसुलिन प्रतिक्रिया में कमी * त्वचा, कान, पैरों का तापमान कम होना * डेयरी गायों के लिए ठंड को एक स्थानीय समस्या माना जाना चाहिए। थन का सीधा ठंडा होना तापमान के साथ-साथ फर्श के तापीय गुणों पर भी निर्भर करता है।

शीत तनाव के प्रभाव को रोकने के लिए सुरक्षात्मक उपाय:

* **खलिहान का तापमान बढ़ाएँ** - सर्दियों में हीटिंग की आपूर्ति बछड़े को स्वस्थ रखती है, बछड़े में निमोनिया, दस्त और मृत्यु की संभावना कम होती है। * बेहतर वेंटिलेशन सुनिश्चित करने के लिए आर्द्रता कम करें, शेड में अत्यधिक नमी, छत से टपकने और जमीन जमने की घटना को रोकें। * दोपहर के समय हवादार रहना चाहिए। * सर्दी के खलिहान में जमीन धोने के लिए कम पानी का प्रयोग करना चाहिए और ड्राई क्लीनिंग अपनानी चाहिए। * दोपहर की धूप में मवेशियों को खलिहान से बाहर रखना चाहिए। * उन्हें ठंडे फर्श से बचाने के लिए बिस्तर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। * वाटर या पानी की टंकियाँ जमी हुई नहीं होनी चाहिए। * पीने के लिए गुनगुना पानी उपलब्ध कराया जाना चाहिए * ठंड के मौसम में गायों की चारे की जरूरतें बढ़ जाती हैं। सांद्रित आहार की तुलना में घास पाचन के दौरान अधिक गर्मी प्रदान करती है।

ईव इनलेट्स को बंद नहीं किया जाना चाहिए। यह वेंटिलेशन दर को प्रतिबंधित करेगा और गीली, नम स्थितियाँ पैदा करेगा। * शीत ड्राफ्ट की रोकथाम। गायों को शुष्क, सूखा-मुक्त विश्राम क्षेत्र की आवश्यकता होती है। * जब गाय पार्लर से चली जाए तो उसके थनों का सूखना महत्वपूर्ण है। जोखिम को कम करने का एक तरीका यह है कि निपल्स को डुबाया जाए, लगभग 30 सेकंड तक डुबाया जाए और फिर कागज़ के तौलिये का उपयोग करके सुखा लिया जाए। * पशु को शीतदंश से बचाएं

बछड़ों पर ठंड के तनाव का प्रभाव: सर्दियों और शुरुआती वसंत में पैदा होने वाले बछड़ों के साथ-साथ गीले और ठंडे बछड़ों में ठंड के तनाव या हाइपोथर्मिया का खतरा अधिक होता है। तापमान गिरने पर वर्षा बछड़े के जीवित रहने पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, इसलिए नवजात बछड़ों में ठंड के तनाव (हाइपोथर्मिया) से निपटना महत्वपूर्ण है।

शीत तनाव के लक्षण: मलाशय का तापमान यह निर्धारित करने का सबसे सटीक तरीका है कि बछड़ा हाइपोथर्मिया का अनुभव कर रहा है या नहीं।

हल्का हाइपोथर्मिया- शरीर का तापमान 100F से नीचे चला जाता है।

गंभीर हाइपोथर्मिया- शरीर का तापमान 94F से नीचे चला जाता है। महत्वपूर्ण अंग ठंडे हो जाते हैं और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली ख़राब हो जाती है। * गर्मी के उत्पादन को बढ़ाने और शरीर के अंगों से रक्त को शरीर के मूल भाग तक पहुंचाने के लिए बछड़ा कांपता है। * यदि तापमान 86एफ से नीचे चला जाए तो जीवन के संकेतों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

सुरक्षात्मक उपाय: सुरक्षात्मक उपायों में गर्म पानी से स्नान, गर्म हवा या ताप लैंप और गर्म कंबल शामिल हैं।

* कंबल 3 सप्ताह से कम उम्र के बछड़ों के लिए सबसे उपयोगी हैं जो अभी तक अनाज नहीं खा रहे हैं। गर्म कंबल इतना गर्म नहीं होना चाहिए कि दिन के दौरान त्वचा जल जाए या पसीना आए। * तेज गर्मी के नुकसान की रोकथाम। * बेहतर इन्सुलेशन के लिए विश्राम स्थल पर मोटा, सूखा भूसा या बुरादा उपलब्ध कराया जाना चाहिए। * हवा के झोंकों से बचना चाहिए क्योंकि वे गर्मी के नुकसान को बढ़ावा देते हैं।

* युवा डेयरी बछड़ों में बहुत कम संग्रहित वसा होती है जिसका उपयोग वे गर्मी के लिए कर सकते हैं। ठंड के तनाव से निपटने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा वाला आहार उपलब्ध कराया जाना चाहिए। * ठंड के मौसम के दौरान गर्म रहने के लिए उपयोग की जाने वाली अतिरिक्त ऊर्जा की भरपाई के लिए एक बछड़े को खाने के लिए अतिरिक्त मात्रा में भोजन (स्टार्टर, दूध रिप्लेसर, या दूध) की आवश्यकता होगी।

* 3 सप्ताह से कम उम्र के बछड़ों को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करने के लिए दूध या दूध के विकल्प की मात्रा बढ़ा दी जाती है।

बछड़े के आहार में बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

* जो बछड़े स्टार्टर खा रहे हैं, खासकर 3 सप्ताह से अधिक उम्र के बछड़ों में एलसीटी कम होती है और वे स्वेच्छा से अधिक अनाज खाकर अपनी बढ़ी हुई ऊर्जा जरूरतों को आसानी से पूरा कर सकते हैं, जो गर्मी पैदा करने के मामले में फायदेमंद है।

* ठंड के मौसम में, बछड़ों को पीने का पर्याप्त अवसर सुनिश्चित करने के लिए प्रति दिन तीन बार कम से कम 30 मिनट के लिए गर्म पानी का प्रावधान।

* हवा के इनलेट्स को बंद करने से वेंटिलेशन की दर सीमित हो जाती है और शेड में नमी जमा हो जाती है। जैसे-जैसे नमी जमा होगी, यह ठंडी सतहों पर संघनित होने लगेगी, और यदि सतहें ठंड से नीचे हैं, तो पाला बनेगा।

* गंभीर ठंड के मौसम में और बर्फ़ीले तूफ़ान की स्थिति के दौरान, खलिहान में हवा के प्रवाह को कम करने के लिए हवा के प्रवेश द्वारों को आंशिक रूप से बंद किया जा सकता है। अत्यधिक ठंड के मौसम में न्यूनतम प्रवेश द्वार प्रत्येक 10 फीट की इमारत की चौड़ाई के लिए आधा इंच है। (इमारत के प्रत्येक लंबे किनारे पर एक इनलेट होना चाहिए।) जब सामान्य सर्दियों के मौसम की स्थिति वापस आती है, तो ईव इनलेट को इमारत के दोनों किनारों पर इमारत की चौड़ाई के मानक एक इंच प्रति 10 फीट पर फिर से खोला जाना चाहिए। बेशक, यदि इनलेट्स को समायोजित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है तो ईव इनलेट समायोजन बहुत आसान है। टिका पर लगे बोर्ड समायोज्य ईव इनलेट का सबसे आम प्रकार हैं।

सर्दियों में दुधारू पशुओं का रख-रखाव

डॉ. राखी गांगिल, डॉ. दलजीत छाबरा
डॉ. जोयसी जोगी, डॉ. रवि सिकरोडिया
डॉ. राकेश शारदा, डॉ. दीपक गांगिल

पशु सूक्ष्मजीव विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय महू- 453446 (म.प्र.)

सर्दी का मौसम आते ही दुधारू पशुओं जैसे गाय और भैंस को विशेष देखभाल की जरूरत पड़ती है, क्योंकि ठंड से उनकी सेहत प्रभावित होती है और दूध उत्पादन कम हो सकता है। ठंडक में पशुओं को ज्यादा ऊर्जा लगती है शरीर की गर्मी बनाए रखने के लिए, इसलिए सही आहार, आश्रय और पानी की व्यवस्था से उनकी उत्पादकता बनी रहती है। अतः पूर्ण उत्पादन प्राप्त करने के लिए ठंड के मौसम में पशुओं को शीत प्रकोप से सुरक्षित रखना अनिवार्य है। यदि पशुओं को ठंडी हवा, धुंध या कोहरे से बचाने के लिए उचित प्रबंध न किए जाएँ, तो वे बीमार पड़ सकते हैं। इससे न केवल उनकी उत्पादन क्षमता कम होती है, बल्कि न्यूमोनिया जैसे रोगों से उनकी मृत्यु भी हो सकती है। **इसलिए पशुपालकों को चाहिए कि वे सर्दी के मौसम में अपने पशुओं की विशेष देखभाल करें और उन्हें ठंड से बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाएँ-**

* पशुशाला की खिड़कियों, दरवाजों और अन्य खुले स्थानों पर रात में बोरी, त्रिपाल या टाट लगाकर ढकें, ताकि ठंडी हवा सीधे पशुओं तक न पहुँच सके।
* रात के समय फर्श पर पराली या भूसा बिछाएँ, जिससे फर्श की ठंडक पशुओं को न लगे।
* पशुशाला का फर्श ढलानयुक्त होना चाहिए, ताकि मूत्र आसानी से बहकर बाहर निकल जाए और बिछावन सूखा बना रहे।
* दिन में पशुओं को धूप में छोड़ें, इससे पशुशाला का फर्श या जमीन सूख जाएगी और पशुओं को गर्माहट भी मिलेगी।
* पशुओं को हमेशा ताज़ा और स्वच्छ पानी ही पिलाएँ, जो बहुत ठंडा न हो।
* नवजात बछड़ों और बीमार पशुओं को रात में बोरी या तिरपाल से ढककर रखें और सुबह धूप निकलने पर उन्हें हटा दें।
* पशुओं को हरा चारा, विशेषकर बरसीम, तूड़ी या भूसे के साथ मिलाकर खिलाएँ और रात में सूखा चारा आहार के रूप में अवश्य दें।

उचित आहार व्यवस्था

सर्दियों में ठंड के प्रभाव से बचाने के लिए दुधारू पशुओं की ऊर्जा आवश्यकता बढ़ जाती है। इस आवश्यकता को पूरा करने हेतु उनके सामान्य पोषण के अलावा प्रतिदिन लगभग एक किलोग्राम अतिरिक्त दाना मिश्रण देना चाहिए। अधिक दूध देने वाले पशुओं के राशन में सोयाबीन या बिनौले जैसी सामग्री मिलाकर आहार की उष्मा-सघनता बढ़ाई जा सकती है, जिससे उनका दुग्ध उत्पादन बना रहता है। अनाज जैसे मक्का, चना या दालें मिलाएं, साथ ही कैल्शियम, फॉस्फोरस, मिनरल मिक्स और नमक दें हड्डियों को मजबूत रखने के लिए। देसी नुस्खे जैसे मेथी, अजवाइन, सौंफ, हल्दी और हींग का पाउडर (50 ग्राम रोजाना दो बार) पाचन सुधारकर दूध बढ़ा सकता है।

पशुओं को हमेशा गुनगुना, साफ पानी उपलब्ध कराएं—50°F के आसपास–क्योंकि ठंडा पानी कम पीते हैं, जो पाचन बिगाड़ता है। सरसों का तेल थोड़ी मात्रा में पिलाने से आंतरिक गर्मी बनी रहती है और बीमारियां कम होती हैं। पशुओं को उनकी आवश्यकता अनुसार संतुलित आहार दें। हरा चारा उपलब्ध कराएँ तथा 25-50 ग्राम खनिज मिश्रण और नमक अवश्य मिलाएँ।

स्वास्थ्य सुरक्षा

पशुओं को समय-समय पर रोग-निरोधक टीके जरूर लगवाएँ। बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें और नजदीकी कुशल पशु-चिकित्सक से उपचार कराएँ। आंतरिक परजीवियों से सुरक्षा के लिए चिकित्सक की सलाह के अनुसार क्रिमिनाशक दवाएँ दें।

मच्छर, मक्खी, जुएँ, किलनी आदि बाहरी परजीवियों की रोकथाम के लिए पशुशाला की साफ-सफाई के साथ-साथ एंटीसेप्टिक, एंटीमाइक्रोबियल दवाएँ तथा डिसइन्फेक्टेंट का छिड़काव करें।

पशुशाला की सफाई व्यवस्था

पशुपालकों को पशु-आवास की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। गोबर एवं अन्य अपशिष्ट दिन में 2-3 बार हटाएँ। सप्ताह में कम से कम एक बार फिनाइल के घोल से फर्श और दीवारों की सफाई अवश्य करें।

उत्तम आवास प्रबंधन

धुंध और बारिश के कारण पशुशाला का फर्श अक्सर गीला रहता है, जिससे पशु ठंड में बैठने से बचते हैं। इसलिए सर्दियों में फर्श को सूखा रखना अत्यंत आवश्यक है। पशु-आवास में धूप का प्रवेश सुनिश्चित करें और पशुओं को भी पर्याप्त धूप में रहने का अवसर दें।पशुओं को हवा और ठंड से बचाने के लिए मजबूत आश्रय या विंडब्रेक बनाएं, जो ठंडी हवाओं को रोकें। साफ-सूखा बिस्तर जैसे भूसा, लकड़ी के चूरा या रेत का उपयोग करें, जिसे नियमित बदलें ताकि नमी न जमे और फ्रॉस्टबाइट न हो। इससे पशु आरामदायक रहते हैं और ऊर्जा बचाते हैं।

नवजात एवं बढ़ते पशुओं का स्वास्थ्य प्रबंधन

नवजात व बढ़ते पशुओं को विशेष रूप से ठंड और शीतलहर से बचाने की आवश्यकता होती है। रात में उन्हें बंद कमरे या शेड में रखें और प्रवेश द्वार पर पर्दा या दरवाज़ा आंशिक रूप से खुला रखें। तिरपाल, पॉलीथीन शीट या टाट के पर्दे से तेज हवा को रोका जा सकता है।

सर्दी में जन्मे बछड़ों को बोरी या पुआल से रगड़कर साफ करें ताकि शरीर गर्म रहे और रक्त संचार बढ़े। नवजातों को जाड़े में सफेद दस्त और निमोनिया से बचाना अत्यंत आवश्यक है।

ठंड से बचाव हेतु पशुपालन विभाग द्वारा जारी सलाह/दिशा-निर्देश

शीत ऋतु में गोवंश की देखभाल अत्यंत सावधानी और उचित तरीके से की जानी चाहिए। सर्दियों में पशुओं को आसानी से ठंड लग सकती है, जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और दुग्ध उत्पादन भी घट सकता है।

* सबसे पहले यह सुनिश्चित करें कि पशुशाला या गौशाला में जल निकासी की समुचित व्यवस्था मौजूद हो।
* गौशालाओं में संरक्षित गोवंश को ठंड से बचाने हेतु टाट की बोरी, त्रिपाल या ज्वार-बाजरा की कड़वी टाट का उपयोग करें, ताकि सर्द हवा का सीधा प्रभाव न पड़े।
* सर्दियों में पशुओं को धूप में अवश्य बांधे, लेकिन उन्हें ठंडी हवा से बचाना भी उतना ही आवश्यक है।
* पशुओं के बैठने के स्थान को सूखा रखें। इसके लिए पराली, पुआल या कोई भी नरम और पानी सोखने वाली सामग्री फर्श पर बिछाएँ, जिससे सफाई भी आसानी से हो सके।
* पशुओं को हमेशा स्वच्छ पानी ही पिलाएँ, जो न बहुत ठंडा हो और न बहुत गर्म।
* बरसीम या अन्य हरा चारा देने से पहले थोड़ी मात्रा में सूखा चारा अवश्य खिलाएँ, या हरे चारे को सूखे चारे के साथ मिलाकर दें, जिससे अफारे की समस्या न हो।
* सर्दियों की रात में सूखा चारा खिलाना विशेष रूप से लाभदायक होता है, क्योंकि इससे पशुओं के शरीर का तापमान संतुलित रहता है।
* यदि संभव हो तो अलाव की व्यवस्था करें, परंतु आग लगने की संभावना से पूरी तरह सावधान रहें।
* समय-समय पर डिसइनफेक्टेंट का छिड़काव करके गौ-आश्रय स्थलों और पशुशालाओं को विसंक्रमित करें।
* संबंधित पशु चिकित्सा अधिकारियों द्वारा नियमित रूप से आश्रय स्थलों का निरीक्षण कराया जाए और किसी भी पशु के बीमार होने पर तुरंत चिकित्सा उपलब्ध कराई जाए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

रोमा वर्मा शाक-सब्जी विभाग, महात्मा गाँधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय सांकरा, दुर्ग (छ.ग.)

स्वच्छ पर्यावरण के लिए बागवानी

विश्व में भारत जन संख्या के मामले में चीन को पीछे ढकेल कर प्रथम स्थान पर आ गया है। वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या एक अरब 40 करोड़ पार कर चुकी है। भारत का बढ़ता हुआ विशाल जनसमूह तथा उनकी अपार महत्वकांक्षाए देश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किसी न किसी रूप में करते ही जा रहे हैं, जिससे हमारा पर्यावरण दिन प्रतिदिन प्रदूषित हो रहा है, पर्यावरण प्रदूषण में वायु प्रदूषण का मुख्य स्थान है, जिसमें 80 प्रतिशत प्रदूषण केवल वाहनों द्वारा उत्सर्जित जहरीले धुएं से होता है, जिसका सीधा प्रभाव पृथ्वी पर रहने वाले जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर पड़ता है। कुछ वनस्पतियां ऐसी होती हैं जिनमें वायु प्रदूषकों को अवशोषित कर अपनी पादप कोशिकाओं द्वारा संचय करके आम आदमियों के जीवन में ताजगी बिखेरती है। इन वनस्पतियों में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण फलदार वृक्ष भी हैं, जिसकी बागवानी करके अपने आस-पास का वातावरण स्वच्छ रखा जा सकता है। साथ ही अतिरिक्त आय का स्त्रोत तथा कुपोषण के प्रभाव से भी बचा जा सकता है। वायु प्रदूषण के बढ़ते हुए खतरे को देखते हुए कुछ विशेष फलदार वृक्ष जैसे-आम, जामुन, बेर, इमली तथा आंवला की बागवानी की पर्यावरण मित्र के रूप में संस्तुति की जाती है।

आज के भाग-दौड़ के परिवेश में बढ़ती हुई जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण तथा नगरों व शहरों के विस्तारीकरण के फलस्वरूप रसायन, चमड़ा, कपड़ा, औषधि एवं रंग उद्योग में धातुओं का व्यापक प्रयोग हो रहा है, जिससे निकलने वाले जलीय, वाष्पीय तथा व्यर्थ अवशिष्ट ठोस पदार्थों की काफी मात्रा वायुमण्डल में विलीन होकर पर्यावरण की विषाक्तता में वृद्धि करती रहती है।

देश में विभिन्न स्थानों पर हुई शोध उपलब्धियों के अंतर्गत कुछ फल वृक्षों की पत्तियों की सतहों एवं आंतरिक जैव रासायनिक प्रक्रियाओं की जांच करके उनमें होने वाले परिवर्तन के आधार पर वायु प्रदूषण में प्रयुक्त मुख्य गैसों जैसे, सल्फर डाईआक्साइड एवं नाइट्रोजन डाई आक्साइड सहनशीलता संकेतक रूप में की गई।

ब्रिटिश रिसर्चः पर्यावरण सुरक्षा में हिन्दू सबसे आगे..

वजह, वे प्रकृति को संसाधन नहीं, पवित्र तत्व मानते हैं

पर्यावरण सुरक्षा के मुद्दे पर ब्रिटेन में हिंदू समुदाय बाकी समुदायों की तुलना में सबसे ज्यादा सक्रिय है। इसकी वजह यह है कि हिंदू धर्म में संपूर्ण अस्तित्व के परस्पर जुड़ाव की अवधारणा है, जो गहरीय पर्यावरणीय नैतिकता को जन्म देती है। प्रकृति को संसाधन नहीं, बल्कि पवित्र तत्व माना जाता है। ब्रिटेन के इंस्टीट्यूट फॉर द इम्पैक्ट ऑफ फेथ इन लाइफ

आम

आंवला

(आईआईएफएल) की स्टडी में यह तथ्य मजबूती से उभरकर आया है।

आईआईएफएल की शोधकर्ता अमांडा मुर्जान कहती हैं, हिंदू मान्यता के अनुसार ईश्वर हर चीज में है, जिससे सुरक्षा करने की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। स्टडी के मुताबिक 64 प्रतिशत हिंदू रीवाइल्डिंग यानी ईकोसिस्टम को नई जिन्दगी देने में शामिल हैं। 78 प्रतिशत हिंदू आदतें बदलते हैं, ताकि पर्यावरण को नुकसान कम हो। वहीं, 44 प्रतिशत हिंदू पर्यावरणीय संगठनों से जुड़े हैं। स्टडी में हिंदू, मुस्लिम और ईसाई समुदायों के पर्यावरण को लेकर नजरिए और गतिविधियों का विश्लेषण किया गया। स्टडी के मुताबिक 82 प्रतिशत ईसाई धर्म को पर्यावरण सुरक्षा से जोड़ते हैं, पर उनके सुरक्षा संबंधी काम सबसे कम हैं। 31 प्रतिशत ईसाई जलवायु परिवर्तन को ही नकारते हैं, जो किसी भी धार्मिक समूह में सबसे ज्यादा है।

विश्लेषण में कहा गया है हिंदू धर्म में पर्यावरण का विशेष महत्व है। आयुर्वेद भी पर्यावरण व शरीर का आपसी रिश्ता दर्शाता है। हिंदू परंपरा के अनुसार सूर्यास्त के बाद फूल-पत्तियां नहीं तोड़े जाते, क्योंकि तब वे विश्राम की अवस्था में होते हैं। फूल तोड़ते समय भी मन में अनुमति मांगते हैं। अधिकांश हिंदू पर्यावरण के लिए कुछ न कुछ कर रहे हैं। चाहे वह शाकाहारी बनना हो या पवित्र पशुओं का सम्मान। यहां तक की सांप भी पूज्यनीय माने जाते हैं। ब्रिटिश हिंदू बंसरी कहती हैं, मैंने भारत में देखा कि जब सड़क पर सांप आया, तो लोग कार से उतरकर उसके जाने का इंतजार करने लगे, कुछ ने प्रार्थना भी की।

ब्लैक क्वार्टर (Black Quarter)

कारण, लक्षण और बचाव के उपाय

डॉ प्रतीक सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

डॉ नरेंद्र रघुवंशी (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

डॉ अमित कुमार सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

परिचय- ब्लैक क्वार्टर (Black Quarter), जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में काला फोड़ा या लंगड़ा रोग भी कहा जाता है, मवेशियों–विशेषकर गाय और भैंस में पाया जाने वाला अत्यंत तीव्र, विनाशकारी और प्राणघातक संक्रमण है। यह रोग Clostridium chauvoei नामक स्पोर-निर्माण करने वाले अनएेरोबिक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है, जिसकी बीजाणुएँ प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मिट्टी में कई वर्षों तक जीवित रह सकती हैं। पशु के शरीर में किसी प्रकार की चोट, ऊतक-हानि या ऑक्सीजन की कमी होने पर ये निष्क्रिय स्पोर सक्रिय होकर तीव्र myonecrosis (मांसपेशियों का सड़ना) और गैस निर्माण उत्पन्न करते हैं, जो इस रोग की प्रमुख रोगोत्पत्तिगत विशेषता है। यह संक्रमण मुख्यतः 6-24 माह आयु वाले तेज़ी से बढ़ रहे, अधिक मांसल और शारीरिक रूप से सक्रिय मवेशियों में देखा जाता है। इस आयु वर्ग में मांसपेशियों की उच्च चयापचय गतिविधि तथा सूक्ष्म ऊतक-क्षति की संभावना रोगजनक के सक्रियण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है, जिसके परिणामस्वरूप यह रोग युवा और स्वस्थ पशुओं में अधिक गंभीरता से प्रकट होता है।

ब्लैक क्वार्टर का प्रकोप प्रायः वर्षा ऋतु में अधिक देखा जाता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ मिट्टी नम, जैविक पदार्थों से भरपूर और स्वच्छता प्रबंधन कमजोर होता है। रोग की peracute प्रकृति के कारण संक्रमण अनेक मामलों में अचानक प्रकट होता है, और कई बार लक्षण उभरने से पहले ही पशु की मृत्यु हो जाती है, जिससे यह पशुपालकों के लिए अत्यधिक भयावह रोग माना जाता है। इस रोग की विशिष्ट पहचान प्रभावित मांसपेशियों में तीव्र, दर्दयुक्त और गर्म सूजन है, जिसे स्पर्श करने पर crepitation—अर्थात गैस के बुलबुले फूटने जैसी चरमराहट–स्पष्ट महसूस होती है। प्रभावित ऊतकों का गहरे लाल से काले रंग में परिवर्तन और दुर्गंधयुक्त गैस का निर्माण इस रोग की पुष्टि करने वाले प्रमुख लक्षण हैं। यही रोगजनक परिवर्तनों के कारण इसे सामान्य भाषा में "काला फोड़ा" या "काला क्वार्टर" कहा जाता है।

किसानों के लिए महत्व: ब्लैक क्वार्टर केवल एकल पशु के स्वास्थ्य पर ही प्रभाव नहीं डालता, बल्कि प्रभावित पशु के झुंड के लिए भी गंभीर और अप्रत्याशित जोखिम उत्पन्न कर सकता है। इस रोग का तीव्र और अचानक प्रकोप झुंड में बड़े पैमाने पर मृत्यु दर का कारण बन सकता है, जिससे पशुपालन में आर्थिक नुकसान अत्यधिक बढ़ जाता है। इसलिए, किसानों के लिए यह अनिवार्य है कि वे इस रोग की प्रारंभिक पहचान, जैव-सुरक्षा उपायों, और समयोचित टीकाकरण के महत्व को पूर्ण रूप से समझें और अपने प्रबंधन प्रथाओं में इनका व्यवस्थित अनुप्रयोग सुनिश्चित करें। इस दृष्टिकोण से न केवल पशुओं की जीवन रक्षा होती है, बल्कि उत्पादन में स्थायित्व और आर्थिक सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है।

रोग का महत्व: ब्लैक क्वार्टर एक तीव्र और घातक रोग है, जो प्रभावित पशु में अचानक मृत्यु का कारण बनता है। इस रोग के प्रकोप से पशु का मांस और दुग्ध उत्पादन तत्काल प्रभावित होता है, जिससे कृषि एवं पशुपालन आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गंभीर आर्थिक दबाव उत्पन्न होता है। इसके कारण पशुपालकों के लिए व्यापक प्रबंधन एवं वित्तीय चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं, जो इस रोग को केवल पशु स्वास्थ्य का मुद्दा नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती हैं।

रोगजनक और संक्रमण: काला क्वार्टर का प्रमुख रोगजनक Clostridium chauvoei है, जो एक ग्राम-धनात्मक, स्पोरनिर्माण करने वाला और अत्यधिक प्रतिरोधी जीवाणु है, जिसकी बीजाणुएँ मिट्टी में वर्षों तक जीवित रह सकती हैं। संक्रमण सामान्यतः घाव, चोट या त्वचा की सूक्ष्म दरारों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करने वाले स्पोर्स से प्रारंभ होता है, हालांकि कई मामलों में इन बीजाणुओं का 'साइलेंट इन्जेशन' (silent ingestion) भी होता है, जहाँ यह मांसपेशियों में latent form में निष्क्रिय पड़े रहते हैं। जब पशु में किसी कारण–जैसे चोट, भारी व्यायाम, रक्तप्रवाह में कमी या ऊतक-क्षति–के कारण मांसपेशियों में अल्प-ऑक्सीजन (anaerobic) वातावरण बनता है, तब ये स्पोर तेजी से सक्रिय होकर विषाक्त वृद्धि (toxigenic proliferation) शुरू कर देते हैं। चूँकि Clostridium chauvoei एक strict anaerobe है, इसलिए यह केवल ऑक्सीजन-रहित, क्षतिग्रस्त मांसपेशियों में तीव्र गति से बढ़ता है और गैस, नेक्रोसिस तथा माइओनिकोसिस (Myonecrosis) उत्पन्न कर देता है। कुछ मामलों में लक्षण प्रकट होने से पहले ही बैक्टीरिया रक्तप्रवाह में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे रोग का तीव्र और प्राणघातक रूप विकसित होता है।

लक्षण (Symptoms): काला क्वार्टर अत्यंत तीव्र प्रकृति का रोग है, जो प्रायः बिना किसी पूर्व संकेत के अचानक प्रकट होता है और कुछ ही घंटों में पशु को गंभीर एवं जीवन-घातक अवस्था में पहुँचा देता है। संक्रमित पशु में प्रारंभिक रूप से 104-106°F तक का तीव्र ज्वर, भारी एवं कठिन श्वसन, बेचैनी तथा अचानक सुस्ती देखी जाती है। शीघ्र ही प्रभावित अंग–अक्सर पांव, जांघ या कंधे–में गर्म, अत्यधिक दर्दयुक्त, तेजी से फैलने वाली सूजन विकसित होती है, जिसकी सतह पर लाल से नीले-काले रंग का परिवर्तन दिखाई दे सकता है। सूजन वाली मांसपेशियों में गैस बनने के कारण क्रेपिटेशन (दबाने पर गैस-सी आवाज) महसूस होती है, तथा ऊतक धीरे-धीरे दुर्गंधयुक्त नेक्रोसिस की अवस्था में पहुँच जाते हैं। रोग की प्रगति इतनी तीव्र होती है कि अनेक मामलों में पशु स्पष्ट लक्षण विकसित होने से पहले ही अचानक मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, जिससे इसे पशुओं में सबसे विनाशकारी तीव्र संक्रमणों में से एक माना जाता है।

निदान (Diagnosis): काला क्वार्टर का निदान मुख्यतः इसकी विशिष्ट क्लिनिकल एवं पैथोलॉजिकल अभिव्यक्तियों पर आधारित होता है, जहाँ अचानक विकसित होने वाला तीव्र ज्वर, दर्दयुक्त एवं गैसयुक्त मांसपेशीय सूजन, तथा प्रभावित ऊतकों में तेजी से प्रगति करती नेक्रोसिस एक प्रमुख निदान संकेत माने जाते हैं। पोस्टमॉर्टम परीक्षा में मांसपेशियाँ सामान्यतः गहरे लाल से काले रंग की पाई जाती हैं, जिनमें गैस-भराव (crepitation), दुर्गंधयुक्त द्रव और तीव्र मायोनिकोसिस स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं–ये निष्कर्ष काला क्वार्टर की क्लासिकल पहचान माने जाते हैं। पुष्ट निदान के लिए प्रयोगशाला परीक्षण अनिवार्य हैं, जिनमें नेक्रोटिक मांसपेशियों या सीरम से Clostridium chauvoei का माइक्रोबायोलॉजिकल आइसोलेशन, फ्लोरोसेंट एंटीबॉडी टेस्ट, अथवा पीसीआर आधारित आणविक पुष्टि सबसे विश्वसनीय विधियाँ हैं। क्लिनिकल लक्षणों, पोस्टमॉर्टम विशेषताओं और लैब आधारित पुष्टि के संयोजन से ही इस रोग का सटीक और निर्णायक निदान स्थापित किया जा सकता है।

उपचार (Treatment): काला क्वार्टर का उपचार अत्यंत चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि रोग की प्रगति अत्यधिक तीव्र होती है और अधिकांश पशु लक्षण प्रकट होने के कुछ ही घंटों के भीतर गंभीर अवस्था में पहुँच जाते हैं। यदि संक्रमण को उसके प्रारंभिक चरण में पहचान लिया जाए, तो उच्च-प्रभावी एंटीबायोटिक्स–विशेष रूप से Penicillin, Oxytetracycline अथवा अन्य ब्रॉड-स्पेक्ट्रम एजेंट–शीघ्रता से प्रशासन करने पर सीमित लाभ प्राप्त हो सकता है, यद्यपि सफलताएँ अपेक्षाकृत कम देखी जाती हैं। उपचार के साथ-साथ anti-inflammatory औषधियाँ, तरल चिकित्सा (fluid therapy), analgesics तथा अन्य supportive care मांसपेशीय क्षति और systemic toxemia को कम करने में सहायक हो सकते हैं। तथापि, रोग की अति-तीव्र प्रकृति के कारण प्रायः पशु को प्रभावी उपचार शुरू होने से पहले ही मृत्यु हो जाती है, जिसके चलते यह स्थापित तथ्य है कि काला क्वार्टर के नियंत्रण में उपचार की तुलना में रोकथाम कहीं अधिक प्रभावी और व्यावहारिक विकल्प है।

नियंत्रण और रोकथाम (Prevention): काला क्वार्टर की रोकथाम मुख्यतः समग्र प्रबंधन, स्वच्छता तथा समयबद्ध टीकाकरण पर आधारित है, क्योंकि रोग की तीव्रता और उच्च मृत्यु-दर के कारण निवारक उपाय ही सबसे प्रभावी साधन माने जाते हैं। Clostridium chauvoei के विरुद्ध उपलब्ध वैक्सीन अत्यंत सुरक्षित और प्रभावी है, तथा सभी मवेशियों में वार्षिक टीकाकरण अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए; जबकि उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों या बार-बार प्रकोप वाले झुंडों में छह माह के अंतराल पर बूस्टर देना संक्रमण की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, चारागाह, गौशाला और मिट्टी की उचित स्वच्छता बनाए रखना, विशेषकर उन स्थानों पर जहाँ पहले संक्रमित पशुओं की उपस्थिति रही हो, अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि स्पोर-निर्माण करने वाला यह जीवाणु मिट्टी में वर्षों तक बना रह सकता है। पशुओं में होने वाले किसी भी घाव या चोट की तत्परता से सफाई और एंटीसेप्टिक प्रबंधन भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही स्थल जीवाणु के प्रवेश के प्रमुख मार्ग होते हैं। रोगग्रस्त पशुओं के शवों का सुरक्षित निपटान–जैसे गहरी खुदाई कर दफनाना या नियंत्रित दहन–स्पोर के पर्यावरणीय प्रसार को रोकने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इन सभी उपायों का संयुक्त रूप से पालन ही काला क्वार्टर के प्रभावी नियंत्रण और भविष्य के प्रकोपों की रोकथाम सुनिश्चित कर सकता है।

निष्कर्ष: काला क्वार्टर पशुओं में पाया जाने वाला अत्यंत तीव्र, विनाशकारी और लगभग हमेशा घातक संक्रमण है, जो मुख्यतः बढ़ते हुए और स्वस्थ युवावस्था के मवेशियों को प्रभावित करता है और कुछ ही घंटों में गंभीर मायोनिकोसिस, गैस-उत्पादन तथा व्यापक विषाक्तता उत्पन्न कर मृत्यु का कारण बन जाता है। रोग की peracute प्रकृति तथा त्वरित मृत्युदर के कारण उपचार अक्सर अप्रभावी सिद्ध होता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि काला क्वार्टर नियंत्रण का सबसे विश्वसनीय आधार रोकथाम-आधारित रणनीतियाँ ही हैं। समयबद्ध और व्यापक टीकाकरण, चारागाह और आवासीय क्षेत्रों की स्वच्छता, घावों का सावधानीपूर्वक प्रबंधन, तथा संक्रमित शवों का वैज्ञानिक निपटान, इस रोग के पर्यावरणीय प्रसार को रोकने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इन निवारक उपायों का नियमित और कठोर अनुपालन ही न केवल पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि ग्रामीण आर्थिक स्थिरता तथा पशुपालकों की आजीविका को भी संरक्षित रखने में निर्णायक योगदान देता है।

'हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया (गलघोंटू): एक घातक संक्रामक रोग और इसका प्रबंधन'

डॉ प्रतीक सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

डॉ अमित कुमार सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

डॉ नरेंद्र रघुवंशी (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष), कृषि विज्ञान केंद्र, चंदौली

परिचय (Introduction)- गलघोंटू या Hemorrhagic Septicemia (HS) एक तीव्र और प्राणघातक जीवाणुजनित रोग है, जो विशेषकर गाय और भैंसों में भारी विनाशकारी प्रभाव डालता है। यह रोग Pasteurella multocida नामक जीवाणु से होता है, जो सामान्यतः पशुओं के श्वसन तंत्र में हानिरहित रूप से विद्यमान रहता है। किन्तु जब पशु तनाव, अपर्याप्त पोषण या मौसम में अचानक बदलाव जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से गुजरते हैं, तब यही जीवाणु अत्यधिक विषाक्त हो उठता है और पशु में तीव्र सेप्टीसीमिया व टॉक्सेमिया उत्पन्न कर देता है।

इतिहास में देखा गया है कि यह रोग लंबे समय से एशिया और अफ्रीका के पशुपालकों के लिए चुनौती बना हुआ है। इसकी गंभीरता को देखते हुए विश्व पशु स्वास्थ्य संगठन (WOAH) ने इसे "सीमापार फैलने वाला रोग (trans-boundary animal disease)" घोषित किया है, क्योंकि यह देशों की सीमाओं को लांघते हुए अंतरराष्ट्रीय पशु व्यापार पर भी गहरा असर डाल सकता है। भारत जैसे देशों में यह रोग स्थानिक (endemic) स्वरूप में पाया जाता है और मुख्यतः मानसून तथा उसके बाद के महीनों में महामारी का रूप ले लेता है। भारत की दुग्ध अर्थव्यवस्था में रीढ़ की हड्डी मानी जाने वाली भैंसें इस रोग के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होती हैं। इस वजह से यह रोग दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता और कार्यशील पशुओं की उपलब्धता को घटाता है, जिससे न केवल किसान बल्कि पूरी ग्राम्य अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा (food security) प्रभावित होती है। रोग का प्रमुख कारण P. multocida के कैप्सुलर प्रकार B:2 (एशिया) और E:2 (अफ्रीका) हैं। यह ग्राम-नेगेटिव, गैर-गतिशील और द्विगुणीय धुंधकारी (bipolar staining) जीवाणु कई विषाणुता कारक जैसे कैप्सुलर पॉलीसैकेराइड, एंडोटॉक्सिन और बाह्य झिल्ली प्रोटीन उत्पन्न करता है। ये कारक जीवाणु को शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली से बचाते हैं और तेजी से रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया पैदा करते हैं।

रोकथाम हेतु उपलब्ध परंपरागत टीके (जैसे एलम-प्रेसिपिटेटेड एवं तेल-आधारित वैक्सीन) सीमित सुरक्षा प्रदान करते हैं, जिनकी प्रभावशीलता अल्पकालिक होती है और हर वर्ष पुनः टीकाकरण आवश्यक हो जाता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, तीव्र पशुपालन प्रणाली, पशुओं का लगातार आवागमन और एंटीबायोटिक प्रतिरोध (AMR) जैसे कारक इस रोग की महामारी विज्ञान को और जटिल बना रहे हैं। इसके अतिरिक्त, आणविक रोगोत्पत्ति (molecular pathogenesis), मेजबान-रोगजनक अंतःक्रियाएँ और अनुवांशिक विविधता (genetic diversity) जैसे पहलुओं पर अभी और व्यापक शोध की आवश्यकता है।

2. एटियोलॉजी (Etiology)

* कारक जीवाणु: Pasteurella multocida * कैप्सुलर प्रकार: * एशिया - Type B:w * अफ्रीका - T4pe E:2 * जीवाणु की विशेषताएं * ग्राम-नेगेटिव, कोक्कोबैसिली आकार * द्विगुणीय (bipolar) धब्बांकन (safety pin appearance with Giemsa stain) * non-motile, non-spore forming * विशेष कैप्सुलर पॉलीसैकेराइड, जो इसे फागोसाइटोसिस से बचाता है

3. महामारी विज्ञान (Epidemiology)- गलघोंटू, जिसे हिमोरेजिक सेप्टिसीमिया भी कहा जाता है, भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कई क्षेत्रों में एक सामान्य और गंभीर बीमारी है। यह रोग विशेषकर गाय और भैंस को प्रभावित करता है और इसकी घटनाएँ अधिकतर मानसून के दौरान या बारिश के बाद देखी जाती हैं, जब खेतों में पानी भर जाता है और वातावरण अत्यधिक आर्द्र हो जाता है। संक्रमण के जीवाणु प्रायः बीमार पशु की नाक, मुँह या मल के स्राव से निकलकर अन्य स्वस्थ पशुओं तक पहुँच जाते हैं, जिसके कारण रोग बहुत तेजी से फैलता है। कमजोर, कम उम्र के बछड़े या बहुत बूढ़े पशु इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील पाए जाते हैं। संक्रमण का प्रकोप इतना तीव्र होता है कि कई बार कुछ घंटों से लेकर 1-2 दिनों में ही पशु की मृत्यु हो जाती है, जिसके कारण किसान इसे सबसे खतरनाक बीमारियों में से एक मानते हैं। किसानों के लिए इस रोग का सबसे बड़ा संकट यह है कि यह एक साथ कई पशुओं को प्रभावित कर देता है, जिससे दूध उत्पादन में कमी आ जाती है और खेतों में काम करने वाले पशु भी नष्ट हो जाते हैं। यदि किसान चराई पर पशुओं को एकत्रित करते हैं या झुंड में नए पशु शामिल करते हैं, तो रोग और तेजी से फैल सकता है। इस प्रकार, छोटे और सीमांत किसानों को इस बीमारी से दुग्ध, गोबर और कृषि कार्य के पशुओं की हानि के कारण भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। यही कारण है कि किसान मानसून शुरू होने से पहले टीकाकरण और स्वच्छता प्रबंधन पर विशेष ध्यान देते हैं ताकि रोग की रोकथाम की जा सके।

रोगोत्पत्ति (Pathogenesis)- गलघोंटू उस समय उत्पन्न होता है जब Pasteurella multocida नामक जीवाणु किसी स्वस्थ गाय या भैंस के शरीर में नाक, मुँह अथवा दूषित चारा-पानी के माध्यम से प्रवेश कर जाता है। शरीर के भीतर पहुँचकर यह जीवाणु तेज़ी से रक्त प्रवाह में फैल जाता है और पशु की प्राकृतिक प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को दबा देता है। इसके परिणामस्वरूप पशु में अचानक तेज़ बुखार, सांस लेने में कठिनाई, गले और गर्दन में सूजन, तथा कई बार त्वचा पर नीलेपन या रक्तस्राव के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जीवाणु द्वारा निर्मित विषाक्त पदार्थ (टॉक्सिन्स) नसों और आंतरिक अंगों को नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे शरीर में सूजन, रक्तस्राव और अंगों की सामान्य क्रियाएँ बाधित हो जाती हैं। यदि रोग का समय पर उपचार न किया जाए, तो यह संक्रमण अत्यंत तीव्र गति से बढ़ता है और 1-2 दिनों के भीतर ही पशु की मृत्यु हो सकती है। यही कारण है कि किसान इस बीमारी को अचानक फैलने वाला मानते हैं और इसके बचाव के लिए नियमित टीकाकरण और सावधानी को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं।

लक्षण और शरीर में बदलाव (Clinical Signs & Pathological Lesions)- गलघोंटू से प्रभावित पशु में प्रारंभिक लक्षणों के रूप में तेज़ बुखार, भूख कम लगना और अत्यधिक सुस्ती दिखाई देती है। किसान अक्सर यह देखते हैं कि ऐसे पशु को सांस लेने में कठिनाई होती है, नाक से झाग या अधिक स्राव निकलता है और गर्दन तथा गले के हिस्से में सूजन आ जाती है। कई बार त्वचा के नीचे रक्तस्रावी बिंदु/नीलिमा भी नजर आने लगते हैं। चूँकि यह रोग अत्यंत तीव्र और अचानक फैलने वाला है, इसलिए कई बार संक्रमित पशु एक-दो दिन के भीतर ही मर जाते हैं, विशेषकर वे जो कमजोर, छोटे या वृद्ध होते हैं। यदि पशु की मृत्यु हो जाए तो शव परीक्षण (post-mortem) में गर्दन, गले और छाती के भाग में सूजन और तरल पदार्थ का जमाव, हृदय व फेफड़ों में रक्तस्राव, यकृत और प्लीहा में सूजन और रंग का बदलना, तथा लसीका ग्रंथियों का बढ़ना जैसे परिवर्तन पाए जाते हैं। ये आंतरिक बदलाव इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि जीवाणु पूरे शरीर में फैलकर विभिन्न अंगों को गंभीर क्षति पहुँचा चुका होता है।

रोग की पहचान (Diagnosis)- गलघोंटू की पहचान अक्सर इसके अचानक प्रकट होने वाले लक्षणों और तेज़ मृत्यु दर से होती है। किसान सामान्यतः तब सतर्क हो जाते हैं जब पशु में तेज़ बुखार आ जाए, गले व ग्रीवा में सूजन दिखे, सांस लेने में दिक्कत हो और नाक से झागयुक्त स्राव या कभी-कभी रक्तमिश्रित द्रव निकलने लगे। रक्त स्मीयर में बाइपोलर स्टेनिंग भी एक त्वरित निदान विधि है। यदि पशु की मृत्यु हो जाए, तो शव परीक्षण में गले और छाती के हिस्से में सूजन, फेफड़ों में खून का जमाव और लसीका ग्रंथियों में स्पष्ट बदलाव दिखाई देते हैं। रोग की सही पुष्टि के लिए पशु चिकित्सक रक्त या सूजे हुए हिस्से से नमूना लेकर प्रयोगशाला जांच, जैसे बैक्टीरियल कल्चर या पीसीआर, कराते हैं। इस प्रकार लक्षणों के अवलोकन और लैब परीक्षण दोनों से गलघोंटू की सटीक पहचान की जा सकती है।

रोकथाम और नियंत्रण (Prevention & Control)- गलघोंटू की रोकथाम का सबसे प्रभावी तरीका टीकाकरण है, विशेषकर मानसून शुरू होने से पहले। किसान आम तौर पर अपने भैंस और गाय को साल में कम से कम एक बार HS वैक्सीन लगवाते हैं। इसके साथ ही साफ-सफाई बनाए रखना, चराई के लिए स्वच्छ और सुरक्षित पानी देना, दूषित चारा न देना, और संक्रमित पशुओं को अन्य जानवरों से अलग रखना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यदि पशु इस रोग से संक्रमित हो जाए, तो पशु चिकित्सक की देखरेख में उचित एंटीबायोटिक उपचार तुरंत देना जीवन रक्षक साबित होता है। इसके अतिरिक्त, नए पशुओं को झुंड में शामिल करने से पहले कुछ दिनों के लिए अलग रखना (quarantine) जरूरी है, ताकि रोग का फैलाव रोका जा सके।

आर्थिक महत्व (Economic Importance)- गलघोंटू (हिमोरेजिक सेप्टीसीमिया) पशुपालकों के लिए एक अत्यंत नुकसानदायक रोग है। यह विशेष रूप से बरसात के मौसम में अचानक प्रकट होता है और प्रभावित झुंड में अप्रबंधित प्रकोप में मृत्यु दर 50-90% तक रिपोर्ट की गई है। जो पशु जीवित रहते हैं, वे लंबे समय तक कमजोर रहते हैं, उनका दूध उत्पादन कम हो जाता है, और वजन में कमी आ जाती है। बैल और भैंस जैसे कार्यशील पशु काम करने में असमर्थ हो जाते हैं, जिससे खेत और कृषि गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, उपचार और दवाओं का खर्च, मृत्युदर से होने वाला आर्थिक नुकसान, और दूध उत्पादन में कमी–सभी मिलकर किसानों और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था दोनों को प्रभावित करते हैं। इसी कारण गलघोंटू को पशुपालन क्षेत्र का अत्यधिक विनाशकारी रोग माना जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)- गलघोंटू एक अत्यंत तीव्र और उच्च मृत्यु-दर वाला रोग है, जो विशेष रूप से भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में भैंस और गाय को प्रभावित करता है। यह केवल पशु स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और भोजन की सुरक्षा (food security) पर भी गंभीर प्रभाव डालता है। जब यह रोग फैलता है, तो झुंड में कई पशु एक साथ प्रभावित हो जाते हैं, जिससे दूध का उत्पादन घट जाता है, काम करने वाले पशु कमजोर या अनुपयोगी हो जाते हैं और छोटे किसानों के लिए भारी आर्थिक नुकसान होता है। इस रोग से बचाव और नियंत्रण के लिए समय पर टीकाकरण सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, पशुओं का साफ-सुथरा आवास, स्वच्छ पानी और सुरक्षित चारा, संक्रमित पशुओं को अलग रखना और नए पशुओं को झुंड में शामिल करने से पहले कुछ दिनों के लिए अलग रखना (quarantine) आवश्यक है। किसान यह समझें कि गलघोंटू अचानक प्रकट होने वाला रोग है, इसलिए सतर्क रहना और तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना जीवन और आर्थिक नुकसान दोनों बचा सकता है।

चन्दन सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र,चन्दौली

अनिल पाल विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहावं, बलिया

नरेन्द्र रघुबंशी वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र,चन्दौली

गेहूँ में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एवं लाभ

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन ऐसी पद्धति है जिसमें पोषक तत्वो के सभी श्रोतो के जैविक, अकार्बनिक रासायनिक, उर्वरक एवं जैव उर्वरक को संयुक्त रूप से उपयोग करके मृदा स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है, जिससे अच्छी गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त होती है और पारिस्थितिकी और पर्यावरण को संतुलित बनाये रखा जा सकता है । गेहूँ की फसल के लिये एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (आई.एन.एम.) में रासायनिक उर्वरक और जैविक उर्वरको का संतुलित उपयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य बनी रहे जिससे गेहूँ की उपज अच्छी मिल सकें। इसमें मिट्टी परीक्षण के आधार पर नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश जैसे प्राथमिक पोषक तत्वो के साथ-साथ जिंक जैसे सुक्ष्म पोषक तत्वो का समुचित उपयोग शामिल है उर्वरको की सही समय पर सही मात्रा सही तरीके से खेत में डालना अति आवश्यक है, जैसे नाइट्रोजन की मात्रा को 03 बार में फसल में देना तथा फास्फोरस और पोटाश को बुवाई के समय में देना चाहिए । मिट्टी के स्वास्थ्य को जैविक खाद, हरी खाद और गोबर की सड़ी हुई खाद का प्रयोग करके मिट्टी की उर्वरता एवं गुणवत्ता को बढ़ाना चाहिए। पोषक तत्वो का सही तरीके से उपयोग करके पर्यावरण को संतुलित बनाये रखना ।

पोषक तत्वो का प्रबंधन

नाइट्रोजन - नाइट्रोजन की मात्रा का आधा भाग गेहूँ की बुवाई से पहले डालना चाहिए एवं नाइट्रोजन का एक तिहाई मात्रा दाना आने के समय देना चाहिए।

फास्फोरस

बुवाई के समय पर्याप्त मात्रा में फास्फोरस डालना चाहिए जो पौधो की जड़ो के लिये महत्वपूर्ण है। इसमें सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग किया जाता है एवं डाई अमोनियम फास्फेट का भी प्रयोग करते है।

पोटाश

गेहूँ की फसल में काली एवं भारी मिट्टी में इसकी सारी मात्रा बुवाई से पहले डालना चाहिए एवं हल्की मिट्टी में पहली मात्रा बुवाई से पहले और दूसरी मात्रा दाना आने के समय देना चाहिए ।

जैविक उर्वरक

जैविक खाद- गोबर की खाद (कम्पोस्ट) और हरी खाद का उपयोग मिट्टी की भौतिक स्थिति सुधारता है और पोषक तत्वो की उपलब्धता बढ़ाता है ।

जैव उर्वरक

अजोस्पाइरिलम, एजेटोबैक्टर, पी.एस.बी. और एजोला जैसे जैव उर्वरक मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वो को पौधो के लिये सुलभ बनाते है जिससे रासायनिक उर्वरको की आवश्यकता कम होती है ।

सूक्ष्म पोषक तत्व

जिंक, आयरन, सल्फर और बोरान जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व कम मात्रा में आवश्यक होते है लेकिन उपज और गुणवत्ता के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से लाभ

1- जैव पदार्थो के उपयोग से मिट्टी की उर्वरता और जल धारण क्षमता बढ़ती है ।
2- रासायनिक उर्वरको पर निर्भरता कम करके पर्यावरण में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है ।
3- जैविक और जैव उर्वरको के प्रयोग से रासायनिक उर्वरको का कार्य कम किया जा सकता है ।
4- संतुलित पोषण से फसल की वृद्धि और उपज बढ़ाने में सहायक होती है।
5- रासायनिक उर्वरको के साथ जैविक खादो का संतुलन फसल की पैदावार और दानो की गुणवत्ता दोनो को बढ़ाता है ।
6- यह सुनिश्चित कर ले कि फसल को सभी आवश्यक प्राथमिक, द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्व सही समय पर मिले जिससे उपज पर हानिकारक प्रभाव कम पड़े ।
7. इसके लगातार प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है तथा लम्बे समय तक उत्पादन में वृद्धि होती है।
8. अपवाह और निक्षालन के कारण उर्वरको की होने वाली हानि को कम करता है इसमें भूजल और साथ ही जल प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण है ।
9. फसल अवशेषो और जैविक कचरो का पुर्नचक्रण करने में मदद करता है, जिससे पर्यावरण का संतुलन बना रहता है ।
10. जैविक और अकार्बनिक श्रोतो को मिलाकर पोषक तत्वो की दक्षता को अधिकतम किया जा सकता है ।
11. जैविक उर्वरक नाइट्रोजन को कार्बनिक रूप में परिवर्तित करते है, जिससे उनकी हानि कम होती है और पोषक तत्वो का बेहतर उपयोग होता है ।

गेहूँ में विभिन्न पोषक तत्वो का विवरण-

गेहूँ की फसल में विभिन्न पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है, जिसमें कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा 55% और भोजन कैलोरी का 20% गेहूँ के दाने मे मौजूद होता है। कार्बोहाइड्रेट्स 78%, प्रोटीन 14%, वसा 2%,खनिज 2.5% एवं विटामिन जैसे थायमिन और विटामिन बी साथ ही जस्ता, लोहा, सेलेनियम और मैग्नीशियम जैसे खनिज आहार का एक छोटा प्रतिशत बनाते है।

रबी फसलों में पोषक तत्वों के कार्य एवं उनके कमी के लक्षण

✍ चन्दन सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र,चन्दौली

✍ अनिल पाल विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहावं, बलिया

✍ नरेन्द्र रघुबंशी वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र,चन्दौली

पौधो को अपनी वृद्धि एवं विकास के लिये पोषक तत्वो की आवश्यकता होती है। पौधे जड़ो द्वारा भूमि से पानी एवं पोषक तत्व, वायु से कार्बन डाई आक्साइड तथा सूर्य से उर्जा लेकर अपने विभिन्न भागों का निर्माण करते है। पौधो को अपने सामान्य वृद्धि के लिये 17 आवश्यक पोषक तत्वो की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कोई भी पोषक तत्व की कमी होने पर पौधो के वृद्धि विकास और उत्पादन पर विपरित प्रभाव पड़ता है। पौधो के लिये आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध नही होने पर यह कमी के लक्षण प्रकट करते है। हमारा मुख्य उद्देश्य है कि किसानों को ऐसे लक्षण नवीनतम तकनीको एवं समाधान उपायों से अवगत कराना जिससे कि अपनी फसल और फल फसल उत्पादन का अधिकतम लाभ ले सकें। फसलो में पोषक तत्वो की कमी का प्रभाव निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा अग्रनिम्नवत दर्शाया जा रहा है ।

1. नाइट्रोजन (N)

पौधों में नाइट्रोजन की कमी से हल्के हरे रंग के या हल्के पीले रंग के होकर बौने रह जाते है पुरानी पत्तियाँ पहले पीली (हरितमाहिन) हो जाती है मोटे अनाज वाली फसलो में पत्तियो का पीलापन अग्रभाग से शुरू होकर मध्य शिराओं तक फैल जाता है।

2. फास्फोरस (P)

इसकी कमी से पौधो की पत्तियाँ छोटी रह जाती है तथा पौधो का रंग गुलाबी होकर गहरा हरा हो जाता है, जिससे पौधे छोटे रह जाते है और उनका विकास पूर्णतया नही हो पाता है ।

3. पौटैशियम (K)

पौधो में पौटैशियम के कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों के रंग पीला/भूरा हो जाता है तथा बाहरी किनारे कट-फट जाते है। मोटे अनाज जैसे मक्का एवं ज्वार में ये लक्षण पत्तियों के अग्रभाग से प्रारंभ होते है ।

4. गंधक (S)

इसकी कमी से पत्तियाँ शिराये सहित गहरे भूरे से पीले रंग में बदल जाती है तथा बाद में सफेद हो जाती है। इसकी कमी से सबसे पहले नयी पत्तियाँ प्रभावित होती है ।

5. मैग्नीशियम (Mg)

मैग्नीशियम की कमी से पत्तियों के अग्रभाग का रंग गहरा हरा होकर शिराओं का मध्य भाग सुनहरा पीला हो जाता है। अन्त में किनारे से अंदर की ओर लाल-बैगनी रंग के धब्बे बन जाते है ।

6. कैल्शियम (Ca)

इस तत्व की कमी से पौधो की प्राथमिक पत्तियाँ पहले प्रभावित होती है तथा देर से निकलती है तथा शीर्ष कलियाँ खराब हो जाती है एवं मक्के की नोकें चिपक जाती है ।

7. जिंक (Zn)

पौधो में जिंक की कमी से सामान्य तौर पर पत्तियों के शिराओं के मध्य हरितिमाहिन के लक्षण दिखाई देते है, तथा पत्तियों का रंग कॉसा की तरह हो जाता है ।

8. आयरन (Fe)

इसकी कमी से नई पत्तियों में तने के उपरी भाग पर सबसे पहले हरितिमाहिन के लक्षण दिखाई देते है, शिराओं को छोड़कर पत्तियों का रंग एक साथ पीला हो जाता है। उक्त पोषक पत्व की कमी होने से भूरे रंग का धब्बा या मृतक ऊतक के लक्षण प्रकट होते है।

9. बोरान (B)

पौधो में बोरान की कली से वर्धनशील भाग के पास की पत्तियों का रंग पीला हो जाता है, कलिया सफेद या हल्के भूरे मृतक ऊतक की तरह दिखाई देती है ।

10. मैगनीज (Mn)

इसकी कमी से पत्तियों का रंग पीला धूसर या लाल हो जाता है तथा शिरायें हरी हो जाती है एवं पत्तियों का किनारा और शिराओं का मध्य भाग हरितिमाहिन हो जाता है। हरितिमाहीन पत्तियाँ अपने सामान्य आकार में रहती है ।

11. तांबा (Cu)

पौधो में तांबे की कमी के लक्षण नई पत्तियाँ एक साथ गहरी पीले रंग की हो जाती है तथा सूखकर गिरने लगती है तथा खाद्यान्न वाली फसलो में गुणों मे वृद्धि होती है तथा शीर्ष में दाने नही होते है।

12. मालिब्डेनम (Mo)

पौधो के उपर इस पोषक तत्व की कमी से इनकी नई पत्तियाँ सूख जाती है हल्के हरे रंग की हो जाती है। तथा मध्य शिराओं को छोड़कर पूरी पत्तियों पर सूखे धब्बे दिखाई देते है। नाइट्रोजन के उचित ढंग से उपयोग न होने के कारण पुरानी पत्तियाँ हरितिमाहिन होने लगती है ।

13. सोडियम (Na)

इसकी कमी से मिट्टी में सोडियम की कमी होना बहुत ही दुर्लभ माना जाता है और कृषि में इसकी अलग से पूर्ति की आवश्यकता नही होती है ।

14. कोवाल्ट (Co)

कोवाल्ट की कमी से भी पौधो में पोषक तत्वो की कमी के सामान्य लक्षण दिखते है जैसे धीमी वृद्धि होती है।

15. निकिल (Ni)

निकिल की कमी से पौधों का सामान्य विकास रूक जाता है और पौधे छोटे रह जाते है तथा नई पत्तियों का रंग फीका पड़ जाता है या उसमें धब्बे पड़ जाते है ।

16. क्लोराइट (CL)

इसकी कमी से प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है, जिससे पौधो की उर्जा उत्पादन और विकास में कमी आती है। तथा इसकी कमी से पत्तियों का रंग पीला पड़ सकता है या मुरझा जाती है।

17. सिलिकान (Si)

सामान्य तथा मनुष्य के आहार में सिलिकान के कमी के लक्षण आमतौर पर स्पष्ट रूप से दिखाई नही पड़ते है लेकिन ये पौधों मे भी दिख सकते है।

निश्चित रूप से पहचान के लिये मिट्टी और पौधो के ऊतक का परीक्षण कराना सबसे अच्छा तरीका है, इससे पता चलता है कि फसलो/पौधो में किस पोषक तत्व की कमी है जिससे उसका सही समय पर उपचार किया जा सकता है ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

प्रकृति, संस्कृति और कृषि: आदिवासी समाज की सतत परंपराएं

जयश्री, लक्ष्मन (पीएचडी शोधार्थी) सस्य विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

डॉ. नौशाद खान (प्राध्यापक) सस्य विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

"भारत की राष्ट्रपति, द्रौपदी मुर्मू ने पारंपरिक जनजातीय ज्ञान की महत्ता को जोर देते हुए कहा कि यह केवल पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि टिकाऊ कृषि, जल प्रबंधन और पारंपरिक चिकित्सा में भी अत्यधिक मूल्यवान है। उन्होंने आदिवासी किसानों के जैविक खेती और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीली फसल पद्धतियों को आधुनिक समय में अधिक प्रासंगिक बताया। राष्ट्रपति ने आदिवासी संस्कृति को भारतीय समाज की समृद्ध विविधता का प्रतीक मानते हुए, इसे संरक्षित करने और बढ़ावा देने की आवश्यकता को रेखांकित किया।"

सारांश

आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति, संस्कृति और कृषि के त्रिकोण पर आधारित है। उनकी परंपराएँ पर्यावरणीय संतुलन, जैव विविधता संरक्षण और सतत जीवनशैली का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। आदिवासी खेती और प्राकृतिक खेती में गहरा सामंजस्य है, जहाँ दोनों प्रणालियाँ रासायनिक इनपुट से दूरी बनाकर जैविक उर्वरक, बीज संरक्षण, जल प्रबंधन और मिश्रित खेती जैसी विधियों पर जोर देती हैं। आदिवासी समुदाय वृक्षों और पवित्र उपवनों की रक्षा करते हैं, औषधीय पौधों का उपयोग करते हैं और मौसम का पूर्वानुमान प्राकृतिक संकेतों से करते हैं। इन सतत परंपराओं ने न केवल उनकी आजीविका को सुरक्षित रखा है, बल्कि जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकटों से निपटने की क्षमता भी विकसित की है। वर्तमान समय में जब वैश्विक स्तर पर सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण सबसे बड़ी चुनौती है, आदिवासी समाज का यह पारंपरिक ज्ञान और अनुभव आधुनिक कृषि और नीतिगत पहलों के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध हो सकता है।

परिचय

आदिवासी जीवनशैली का आधार तीन स्तंभों पर टिका है - प्रकृति, संस्कृति और कृषि। आदिवासी लोग प्रकृति को केवल संसाधन के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे अपनी संस्कृति और जीवन का अभिन्न हिस्सा मानते हैं। उनका मानना है कि जंगल, नदियाँ, पर्वत और वन्य जीव-जंतु उनके जीवनसाथी हैं और इनके बिना जीवन अधूरा है। यही कारण है कि आदिवासी समाज वृक्षों की रक्षा करता है, पवित्र उपवनों को संरक्षित रखता है और औषधीय पौधों का उपयोग न केवल उपचार के लिए, बल्कि अपने धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों में भी करता है।

कृषि आदिवासी समाज के जीवन का मूल आधार है, और इसमें वे पारंपरिक ज्ञान और तकनीकों का उपयोग करते हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती आई हैं। उनकी खेती मिश्रित फसलों, जैविक उर्वरकों, जल संरक्षण तकनीकों और बीजों के सामुदायिक आदान-प्रदान पर आधारित होती है। यह न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन को भी बनाए रखती है। आदिवासी खेती और प्राकृतिक खेती के बीच गहरा सामंजस्य देखा जा सकता है, क्योंकि दोनों ही प्रणालियाँ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से दूरी बनाकर, स्थानीय संसाधनों और जैव विविधता के संरक्षण पर जोर देती हैं। आज जब वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी और खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ बढ़ रही हैं, तब आदिवासी समाज की सतत परंपराएँ आधुनिक दुनिया के लिए मार्गदर्शन का कार्य कर सकती हैं। भारत की राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने भी पारंपरिक जनजातीय ज्ञान की महत्ता पर जोर दिया है और इसे पर्यावरण संरक्षण तथा टिकाऊ कृषि के लिए अत्यंत आवश्यक बताया है। इसलिए यह समय की आवश्यकता है कि आदिवासी समाज की इस अमूल्य धरोहर को संरक्षित कर, आधुनिक नीतियों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जोड़ा जाए, ताकि यह केवल अतीत का हिस्सा न रहकर भविष्य के लिए स्थायी समाधान प्रस्तुत कर सके।

जैव विविधता और पवित्र उपवन

आदिवासी समाज जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनकी परंपरा में वृक्षों और पवित्र उपवनों की रक्षा का विशेष महत्व है। महुआ, साल, करंज और जामुन जैसे वृक्षों को न केवल खाद्य और आर्थिक दृष्टि से उपयोगी माना जाता है, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी पवित्र समझा जाता है। आदिवासी समुदाय ऐसे वृक्षों को काटने से बचते हैं और इन्हें आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखते हैं। इसके अतिरिक्त, औषधीय पौधों जैसे नीम, तुलसी, आंवला, हल्दी और बहेड़ा का प्रयोग घरेलू उपचार और पारंपरिक चिकित्सा में किया जाता है, जो उनकी जीवनशैली में प्रकृति की अहमियत को दर्शाता है।

जलवायु परिवर्तन और अनुकूलन

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए आदिवासी समाज के पारंपरिक उपाय बेहद प्रभावी सिद्ध होते हैं। वे मौसम का अनुमान लगाने के लिए प्राकृतिक संकेतों का सहारा लेते हैं, जैसे आकाश की स्थिति, पक्षियों का व्यवहार और वृक्षों के फूलने का समय। वर्षा आधारित खेती में वे विविध फसलें लगाते हैं, जिससे सूखा और आपदा की स्थिति में भी कुछ न कुछ उत्पादन अवश्य मिलता है। इसके अलावा, वर्षा जल संचयन, तालाबों और कुओं का संरक्षण तथा खेतों में बांस या मिट्टी के पाइप से सिंचाई जैसी तकनीकें जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद करती हैं।

सांस्कृतिक और सामुदायिक पहलू

आदिवासी समाज में कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं है, बल्कि यह उनके सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का भी हिस्सा है। फसल बोने से पहले बीजों की पूजा करना, फसल कटाई के बाद उत्सव मनाना और मौसमी त्यौहारों में कृषि कार्यों को शामिल करना उनकी संस्कृति की विशिष्टता को दर्शाता है। इसके साथ ही, आदिवासी समुदाय सामूहिक श्रम (Community Labour) की परंपरा को निभाते हैं, जिसमें पूरा गाँव मिलकर बुवाई, कटाई और अन्य कृषि कार्य करता है। यह सामुदायिकता सामाजिक एकता के साथ-साथ श्रम और संसाधनों के बेहतर प्रबंधन का भी उदाहरण है।

नीतिगत दृष्टिकोण और आधुनिक संदर्भ

आधुनिक समय में आदिवासी समाज का यह पारंपरिक ज्ञान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कर रहा है। भारत की राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने भी आदिवासी ज्ञान को पर्यावरण संरक्षण और सतत कृषि के लिए आवश्यक बताया है। इसी प्रकार, FAO (Food and Agriculture Organization) और IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change) ने अपनी रिपोर्टों में Indigenous Knowledge को जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा के समाधान में अहम बताया है। आवश्यकता है कि इन परंपराओं का दस्तावेजीकरण कर, वैज्ञानिक अनुसंधान से प्रमाणित किया जाए और इन्हें राष्ट्रीय कृषि नीति तथा जलवायु अनुकूलन योजनाओं में सम्मिलित किया जाए। इससे न केवल आदिवासी समुदाय का सशक्तिकरण होगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी सहायता मिलेगी।

निष्कर्ष

आदिवासी समाज की परंपराएँ यह सिद्ध करती हैं कि प्रकृति, संस्कृति और कृषि का संतुलन ही जीवन की स्थिरता और विकास का आधार है। आदिवासी खेती और जीवनशैली हमें सिखाती है कि सीमित संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करके भी पर्यावरणीय संतुलन और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। वृक्षों और पवित्र उपवनों की रक्षा, औषधीय पौधों का प्रयोग, प्राकृतिक संकेतों से मौसम का पूर्वानुमान, मिश्रित खेती और सामुदायिक श्रम जैसी परंपराएँ आज भी प्रासंगिक और उपयोगी हैं।जब आधुनिक समाज जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की कमी और खाद्य असुरक्षा जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, तब आदिवासी समाज का यह पारंपरिक ज्ञान न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक स्तर पर भी सतत विकास का मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। आवश्यकता है कि इस ज्ञान को केवल सांस्कृतिक धरोहर मानकर संरक्षित न रखा जाए, बल्कि इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नीतिगत समर्थन के साथ मुख्यधारा कृषि और पर्यावरणीय कार्यक्रमों में एकीकृत किया जाए। यही रास्ता हमें आने वाली पीढ़ियों के लिए टिकाऊ, संतुलित और सुरक्षित भविष्य की ओर ले जाएगा।

अरुण झा (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

अंकित शर्मा (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

राहुल यादव (शोध छात्र) कृषि प्रसार शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय

इन किस्म का चयन कर किसान गेहूँ की अच्छी पैदावार कर सकता है

अक्सर कहा जाता है कि किसान अगर गेहूं की पछेती बुवाई करते हैं, तो इसे उन्हें कुछ खास पैदावार प्राप्त नहीं होती है. लेकिन वहीं इस दौरान गेहूं की सही किस्मों का चयन, हिम पालम गेहूं 3, यूपी 2338 और एचडी 2888 है किया जाए, तो किसान अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं. ऐसी ही गेहूं पांच उन्नत किस्मों की जानकारी आज हम आपके लिए लेकर आए हैं, जिनके नाम नरेन्द्र गेहूं 1076, राज 3765।

हमारे देश में ऐसे कई सारे किसान हैं, जो खेत खाली नहीं होने की वजह से गेहूं की अगेती बुवाई नहीं कर पाते हैं, जिससे उन्हें डर लगता है, कहीं अगर वह बाद में इसकी बुवाई करते हैं,तो गेहूं की पैदावार पर तो असर नहीं पड़ेगा. बता दें कि गेहूं की अगेती बुवाई करने का सही समय 1 से 25 नवंबर के बीच तक होता है. अगर इस दौरान आप इसकी बुवाई नहीं कर पाते हैं, तो घबराए नहीं आज हम आपके लिए गेहूं की ऐसी पांच उन्नत किस्में लेकर आए हैं, जिनकी मदद से आप गेहूं की पछेती बुवाई से भी अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते हैं और साथ भी मुनाफा भी आपको डबल मिलेगा. गेहूं की जिन पांच किस्मों की हम बात कर रहे हैं, वह नरेन्द्र गेहूं 1076, राज 3765, हिम पालम गेहूं 3, यूपी 2338 और एचडी 2888 है। **किसान अगर अपने खेत में गेहूं की पछेती बुवाई के समय इन पांच गेहूं की उन्नत किस्मों का चयन करते हैं, तो वह नुकसान से बच सकते हैं. तो आइए गेहूं की इन किस्मों के बारे में विस्तार से जानते हैं-**

गेहूं की पांच उन्नत किस्में

नरेन्द्र गेहूं 1076: पछेती बुवाई के लिए नरेन्द्र गेहूं 1076 किस्म सबसे अच्छी मानी जाती है. इस किस्म के पौधे करीब तीन फीट तक लंबे होते हैं और यह खेत में 110 से 115 दिनों के अंदर पककर तैयार हो जाती है. वहीं, अगर इसके उत्पादन क्षमता की बात करें, तो इस किस्म से किसान प्रति हेक्टेयर 40-45 क्विंटल तक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं. गेहूं की यह किस्म रतुआ और झुलसा रोग अवरोधी होती है।

राज 3765- किसान गेहूं की राज 3765 किस्म को दिसंबर के तीसरे सप्ताह तक आसानी से अपने खेत में लगा सकते हैं. इस किस्म की खासियत यह है कि इसके तने बेहद मजबूत होते हैं. इस किस्म की फसल 110 से 115 दिन के अंदर पक जाती है.

हिम पालम गेहूं 3-गेहूं की यह किस्म सबसे अधिक उत्पादन देने वाली मानी जाती है. यह किस्म कई तरह के रोगों से खुद को बचाने में सक्षम है. जैसे कि- पीला एवं भूरा रतुआ फ्यूजेरियम हेडब्लाइट और ध्वज कंड आदि. भारत के ज्यादातर घरों में इस किस्म के गेहूं के आटे की रोटी बनती है. हिम पालम गेहूं 3 से किसान प्रति हे. 25 से 30 क्विं. तक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं.

यूपी 2338: गेहूं की इस किस्मों को उ.प्र., उत्तराखंड और हरियाणा के किसानों के द्वारा सबसे अधिक उगाया जाता है. क्योंकि यूपी 2338 की पछेती किस्म इन स्थानों की मिट्टी में अधिक पैदावार देती है. यह किस्म खेत में 130 से 135 दिनों में पक जाती है.

एचडी 2888 : गेहूं की एचडी 2888 किस्म को उन स्थानों के लिए खास तौर पर तैयार किया गया है, जहां गेहूं की बुवाई देरी से की जाती है. इसके पौधे करीब तीन फीट तक लंबे होते है और वहीं इसे किसान प्रति हेक्टेयर लगभग 30 से 40 क्विंटल तक उपज प्राप्त कर सकते हैं.

जलवायु और तापमान : गेहूँ एक रबी की फसल है, जो अक्टूबर-नवंबर में बोई जाती है और अप्रैल के अंत में कटाई होती है। इसके लिए मध्यम जलवायु की आवश्यकता होती है। फसल को विकसित करने के लिए 20-25 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। 27 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर फसल की बढ़वार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। फूल आने के समय कम या ज्यादा तापमान फसल को हानि पहुंचा सकता है।

मिट्टी : गेहूँ की खेती के लिए बलुई दोमट या चिकनी मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। मिट्टी का पीएच मान 6 से 7 के बीच होना चाहिए। कम पीएच वाले क्षेत्रों में चूने का और अधिक पीएच वाले क्षेत्रों में जिप्सम का उपयोग किया जा सकता है।

पानी की मांग : गेहूँ की फसल को 350-600 मिलीमीटर जल की आवश्यकता होती है। फसल को 120 दिनों के दौरान लगभग 55 सेंमी पानी चाहिए। प्रारंभिक अवस्था में नमी युक्त जलवायु की जरूरत होती है, जबकि कटाई के समय गर्म मौसम फसल के लिए फायदेमंद होता है।

बुवाई का समय: उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में गेहूं की बुवाई का उचित समय नवंबर का पहला पखवाड़ा है। उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में मध्य नवंबर तक बुवाई की जा सकती है। देरी से बुवाई करने पर उपज में कमी आती है।

क्षेत्र की तैयारी और बुवाई : खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए और मिट्टी पलट हल का उपयोग किया जाना चाहिए। बुवाई से पहले बीजों को उपचारित करें और बुवाई की गहराई 5 सेमी होनी चाहिए। बुवाई के बाद पाटा न लगाएं, ताकि बीज गहराई में न जाएं।

फसल चक्र: गेहूँ की फसल के साथ अन्य चारा फसलों का चक्र जैसे शलजम, जौ, और तिपतिया अपनाया जा सकता है, जिससे भूमि की उर्वरकता बनी रहती है।

पानी प्रबंधन: फसल की सिंचाई 4-6 बार करनी चाहिए। बालियों के निकलने के समय सिंचाई सबसे महत्वपूर्ण होती है। सिंचाई खेत के ढाल के अनुसार करें और अंतिम सिंचाई हल्की करें।

फसल की कटाई: बुवाई के 110-120 दिन बाद जब फसल पक जाए, तब उसकी कटाई की जानी चाहिए।

रोग और रोकथाम

रतुआ रोग: यह रोग तनों और पत्तियों को प्रभावित करता है। रोकथाम के लिए समय पर बुवाई करें और अधिक पोटाश युक्त उर्वरक का प्रयोग न करें।

लूज स्मट: बालियों पर काले पाउडर जैसा दिखने वाला रोग, जिसका रोकथाम संक्रमित पौधों को नष्ट कर किया जा सकता है।

पाउडरी मिल्ड्यू: पत्तियों पर सफेद फफूंदी के लक्षण होते हैं। रोकथाम के लिए गंधक चूर्ण या कार्बेंडाजिम का उपयोग करें।

दीमक: फसल को जड़ से खा जाती है। रोकथाम के लिए खेत में नमी बनाए रखें और क्लोरोप्यरीफास का छिड़काव करें।

सैनिक सुंडी: यह कीट फसल को बाली अंकुरण के समय नुकसान पहुंचाती है। रोकथाम के लिए कीटों को एकत्रित कर नष्ट करें।

चैंपा (एफिड): यह कीट पत्तियों और बालियों का रस चूसता है, जिससे पत्तियाँ पीली हो जाती हैं। इमिडाक्लोराप्रिड का छिड़काव करके इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

01/2025-26

डॉ. अरूण कुमार राजभर विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)
डॉ. के.एम. सिंह वरिष्ठ प्रसार अधिकारी
डॉ. नन्दन सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच-प्रथम, प्रसार निदेशालय,
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

इंटरनेट ऑफ थिंग्स द्वारा कृषि के क्षेत्र में बदलाव

आईओटी- इंटरनेट ऑफ थिंग्स कनेक्टेड ऑब्जेक्ट्स के तेजी से बढ़ते नेटवर्क को संदर्भित करता है जो एम्बेडेड सेंसर का उपयोग करके वास्तविक समय में डेटा एकत्र करने और विनिमय करने में सक्षम होते हैं। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पादक देश है, और देश की लगभग आधी आबादी कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। अर्थव्यवस्था पर इतना बड़ा प्रभाव डालने वाला एक ऐसा क्षेत्र, जो केवल जलवायु परिस्थितियों और हाथ से की जाने वाली कृषि पद्धतियों पर निर्भर है, अब थोड़ा अप्रचलित सा लगता है, और बढ़ती वैश्विक जनसंख्या के साथ, इस व्यवस्था में बदलाव पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि हमारा मानना है कि स्मार्ट कृषि क्षेत्र के आगमन के साथ, कृषि में इंटरनेट ऑफ थिंग्स सेंसर प्रणालियों का अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकेगा। स्वास्थ्य और फ़िटनेस, घरेलू सुरक्षा, ऑटोमोटिव और स्मार्ट शहरों के ज़रिए, इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स (आईओटी) तेज़ी से हमारे जीवन में प्रवेश कर रहा है। नतीजतन, यह स्पष्ट है कि इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स, या कनेक्टेड डिवाइस, कृषि में व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जा सकते हैं, जिससे इसके संचालन में किसी भी तरह से सुधार हो सकता है। चूँकि स्वचालित वाहन और संवर्धित वास्तविकता अब विज्ञान कथा नहीं रहे, इसलिए उद्योग अब जानवरों या हाथ से कटाई करने वाले औज़ारों पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकता।

पिछले एक-दो दशकों में खेती में कई तकनीकी बदलाव हुए हैं, जिसकी वजह से यह और भी विकसित और तकनीक-आधारित हो गई है। स्मार्ट कृषि उपकरणों के इस्तेमाल से किसानों को बीज बोने और फसल उगाने के तरीकों पर ज्यादा नियंत्रण मिला है। इस पद्धति का इस्तेमाल करके हम स्थिरता और पूर्वानुमानशीलता में सुधार कर पाए हैं।

कृषि उत्पादों की बढ़ती माँग के परिणामस्वरूप दुनिया भर में स्मार्ट कृषि तकनीक के उपयोग में वृद्धि हुई है। 2021 में कृषि का आईओटी बाज़ार हिस्सा 5.6 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया, और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) एप्लिकेशन उत्पादन तेज़ी से मुख्यधारा बन रहा है।

स्मार्ट एग्रीकल्चर: स्मार्ट कृषि का उपयोग ज्यादातर कृषि में आई ओ टी समाधानों के अनुप्रयोग को दर्शाने के लिए किया जाता है। तो आई ओ टी का उपयोग करके पर्यावरण और मशीन मीट्रिक एकत्र करने के लिए आई ओ टी सेंसर का उपयोग करके, किसान सूचित निर्णय ले सकते हैं, और अपने काम के हर पहलू में सुधार कर सकते हैं - पशुधन से फसल की खेती तक। आधुनिक कृषि क्षेत्र को कई तरह से परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एग्रीटेक, सामान्य रूप से कृषि में प्रौद्योगिकी के उपयोग को संदर्भित करता है। दूसरी ओर, स्मार्ट कृषि का तात्पर्य कृषि में इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) समाधानों के उपयोग से है। तो, आईओटी सक्षम स्मार्ट कृषि एवं पर्यावरण और मशीन मापों को रिकॉर्ड करने के लिए आईओटी सेंसर का उपयोग करके, किसान मवेशियों से लेकर फसल की खेती तक, अपने काम के लगभग किसी भी क्षेत्र में बेहतर निर्णय ले सकते हैं और विकास कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसान अपनी फसलों की स्थिति पर नज़र रखने के लिए स्मार्ट कृषि सेंसर का उपयोग करके सटीक रूप से यह निर्धारित कर सकते हैं कि उन्हें कितने कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग करना है। स्मार्ट खेती की अवधारणा भी यही है।

आईओटी का कृषि में उपयोग

जलवायु परिस्थितियों की निगरानी: संभवतः सबसे लोकप्रिय स्मार्ट कृषि गैजेट मौसम स्टेशन हैं, जो विभिन्न स्मार्ट खेती सेंसरों को जोड़ते हैं। मैदान के उस पार स्थित वे पर्यावरण से विभिन्न आंकड़े एकत्र कर बादलों को भेजते हैं।

ग्रीनहाउस ऑटोमेशन: आई ओ टी सेंसर का उपयोग उन्हें प्रकाश, तापमान, मिट्टी की स्थिति और आर्द्रता जैसी ग्रीनहाउस स्थितियों पर सटीक वास्तविक समय की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। पर्यावरण डेटा सोर्सिंग के अलावा, मौसम स्टेशन दिए गए मापदंडों से मेल खाने हेतु स्वचालित रूप से स्थितियों को समायोजित कर सकते हैं। विशेष रूप से, ग्रीनहाउस स्वचालन प्रणाली एक समान सिद्धांत का उपयोग करती है।

फसल प्रबंधन: मौसम स्टेशनों की तरह, उन्हें फसल की खेती के लिए विशिष्ट डेटा एकत्र करने के लिए खेत में रखा जाना चाहिए; तापमान और वर्षा से पत्ती जल क्षमता और समग्र फसल स्वास्थ्य। आप किसी भी बीमारी या संक्रमण को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए अपनी फसल की वृद्धि और किसी भी विसंगतियों की निगरानी कर सकते हैं जो आपकी उपज को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

मवेशी निगरानी और प्रबंधन: फसल की निगरानी की तरह, आईओटी कृषि सेंसर हैं जिन्हें एक खेत पर जानवरों से जोड़ा जा सकता है जो उनके स्वास्थ्य और दूरी की निगरानी कर सकते हैं। पशुधन ट्रैकिंग और निगरानी स्टॉक स्वास्थ्य, कल्याण और भौतिक स्थान पर डेटा एकत्र करने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, इस तरह के सेंसर बीमार जानवरों की पहचान कर सकते हैं ताकि किसान उन्हें झुंड से अलग कर सकें और प्रदूषण से बच सकें।

सटीक खेती: सटीक कृषि के रूप में भी जाना जाता है, सटीक खेती दक्षता और सटीक डेटा-संचालित निर्णय लेने के बारे में है। यह कृषि में आईओटी के सबसे व्यापक और प्रभावी अनुप्रयोगों में से एक भी है।

आईओटी: सेंसर का उपयोग करके, किसान फील्ड माइक्रोक्लाइमेट और इकोसिस्टम के हर पहलू पर मीट्रिक की एक विशाल सारणी एकत्र कर सकते हैं। प्रकाश, तापमान, मिट्टी की स्थिति, आर्द्रता, सीओ 2 स्तर, और कीट संक्रमण। यह डेटा किसानों को पानी, उर्वरकों और कीटनाशकों की इष्टतम मात्रा का अनुमान लगाने में सक्षम बनाता है, जिनकी उनकी फसलों को आवश्यकता होती है, खर्चों को कम करता है, और बेहतर और स्वस्थ फसलों को बढ़ाता है।

कृषि ड्रोन: शायद सबसे आशाजनक एग्रीटेक प्रगति में से एक स्मार्ट खेती में कृषि ड्रोन का उपयोग है। इसके अलावा नटे (मानव रहित हवाई वाहन) के रूप में जाना जाता है, ड्रोन कृषि डेटा एकत्र करने के लिए हवाई जहाज और उपग्रहों की तुलना में बेहतर सुसज्जित हैं।

स्मार्ट खेती के लिए पूर्वानुमान विश्लेषण: सटीक कृषि और पूर्वानुमानित डेटा विश्लेषण साथ-साथ चलते हैं। जबकि आईओटी और स्मार्ट सेंसर तकनीक बेहद प्रासंगिक रियल-टाइम डेटा के लिए एक गोल्डमाइन हैं, डेटा एनालिटिक्स के इस्तेमाल से किसानों को इसका अहसास कराने और महत्वपूर्ण भविष्यवाणियां करने में मदद मिलती है। फसल कटाई का समय, बीमारियों और संक्रमणों के जोखिम, उत्पादन, डेटा एनालिटिक्स टूल खेती करने में मदद करते हैं, जो स्वाभाविक रूप से मौसम की स्थिति पर अत्यधिक निर्भर है, अधिक प्रबंधनीय, और प्रेडिक्टेबल।

मिट्टी के गुणों को मापने के लिए सेंसर

ऑप्टिकल सेंसर- ये सेंसर मिट्टी के गुणों को मापने के लिए प्रकाश का उपयोग करते हैं और यह पता लगाने के लिए बनाए गए थे कि मिट्टी में कितनी मिट्टी, कार्बनिक पदार्थ और नमी है।

इलेक्ट्रोकेमिकल सेंसर- ये सेंसर ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य आवश्यक गैसों की उपस्थिति, साथ ही चभ् और मिट्टी के पोषक तत्वों के स्तर का पता लगा सकते हैं। मिट्टी में मौजूद आयनों का पता सेंसर इलेक्ट्रोड द्वारा लगाया जाता है जो मिट्टी में प्रवेश करते हैं। आवश्यक पोषक तत्वों का निर्धारण फसलों को सर्वोत्तम परिस्थितियों में पनपने में मदद कर सकता है।

डाइइलेक्ट्रिक सेंसर- इन सेंसरों से मिट्टी की नमी मापी जाती है। मिट्टी की नमी जानने के बाद, हम फसलों की सिंचाई में मदद कर सकते हैं। इससे जल उपचार बेहतर होता है। डाइइलेक्ट्रिक सेंसरों का उपयोग करके मिट्टी का पीएच भी निर्धारित किया जा सकता है।

कृषि प्रबंधन प्रणाली: कृषि में आईओटी उत्पादों के लिए एक अधिक जटिल दृष्टिकोण तथाकथित कृषि उत्पादकता प्रबंधन प्रणालियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया जा सकता है। इनमें आमतौर पर कई तरह की कृषि शामिल होती है आईओटी डिवाइस और सेंसर, परिसर में स्थापित और साथ ही विश्लेषणात्मक क्षमताओं और इन-बिल्ट अकाउंटिंग / रिपोर्टिंग सुविधाओं के साथ एक शक्तिशाली डैशबोर्ड।

यह दूरस्थ खेत निगरानी क्षमता प्रदान करता है और व्यापार के संचालन के सबसे कारगर बनाने के लिए अनुमति देता है। आईओटी कृषि उपयोग के मामलों के अलावा, कुछ प्रमुख अवसरों में वाहन ट्रैकिंग (या यहां तक कि स्वचालन), भंडारण प्रबंधन, रसद आदि शामिल हैं।

स्मार्ट खेती के लाभ: कृषि क्षेत्र के कई पहलुओं को नई तकनीकों और इंटरनेट ऑफ थिंग्स से लाभ होगा। हम उन पाँच पहलुओं पर नज़र डालेंगे जिनमें आईओटी आपकी मदद कर सकता है- * जलवायु परिस्थितियाँ, मिट्टी की गुणवत्ता, फसल वृद्धि और मवेशियों का स्वास्थ्य इसके कुछ उदाहरण हैं। डेटा विश्लेषण आपको अपने व्यवसाय की स्थिति, साथ ही कर्मचारियों के प्रदर्शन, उपकरणों की गुणवत्ता और अन्य कारकों की निगरानी करने में मदद करेगा। * एक बार जब आपको अपने उत्पादन का पता चल जाएगा, तो आप अपने उत्पादों की बिक्री की योजना बनाने में मदद कर पाएँगे। फसल के स्थान की सटीक जानकारी होने से आप यह सुनिश्चित कर पाएँगे कि फसल खराब न हो या बिना बिके न रहे। * यह प्रौद्योगिकी प्रक्रिया के प्रारम्भ में ही बीज की क्षति का पता लगा लेगी, जिससे उपज की विफलता की संभावना कम हो जाएगी। * स्मार्ट डिवाइस आपके विकास चक्र में सिंचाई, उर्वरक और कीट नियंत्रण जैसी प्रक्रियाओं को स्वचालित कर सकते हैं। * स्वचालन से कंपनी को उत्पादन प्रक्रिया पर नज़र रखने, फसल की उच्च गुणवत्ता प्राप्त करने तथा अपनी लाभदायक क्षमता का विस्तार करने में सहायता मिलती है।

आईओटी का उपयोग एवं स्मार्ट कृषि प्रणाली: आई ओ टी डिवाइस में हर उस ऑब्जेक्ट को शामिल किया गया है जिसे इंटरनेट के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है। कृषि में इंटरनेट ऑफ थिंग्स के अनुप्रयोग बढ़ती मांगों को पूरा करने और उत्पादन कम करने के लिए पारंपरिक कृषि कार्यों को लक्षित करते हैं। कृषि में आईओटी रोबोट का इस्तेमाल होता है, ड्रोन, रिमोट सेंसर, और फसलों की निगरानी के लिए लगातार प्रगति कर रहे मशीन लर्निंग और विश्लेषणात्मक उपकरणों के साथ संयुक्त कंप्यूटर इमेजिंग, सर्वे करना, और खेतों की मैपिंग, और किसानों को समय और पैसा दोनों बचाने के लिए तर्कसंगत कृषि प्रबंधन योजनाओं के लिए डेटा प्रदान करना है। कृषि रोबोट के उपयोग के माध्यम से आईओटी लागू करता है, ड्रोन, सेंसर, और कंप्यूटर इमेजिंग विश्लेषणात्मक उपकरणों के साथ एकीकृत अंतर्दृष्टि प्राप्त करने और खेतों की निगरानी के लिए। खेतों पर भौतिक उपकरणों का प्लेसमेंट मॉनिटर और रिकॉर्ड डेटा, जो तब मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए उपयोग किया जाता है।

पोटाश का फसलोत्पादन में महत्व

डॉ. हनुमान प्रसाद पांडे (मृदा वैज्ञानिक)
डॉ. राम लखन सिंह यादव (सस्य वैज्ञानिक)
डॉ. डीके श्रीवास्तव (पशुपालन वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केंद्र, मनकापुर, गोंडा
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के बाद पोटेशियम तीसरा प्रमुख आवश्यक पोषक तत्व है। लगभग एक सौ साठ वर्ष पूर्व इस तत्व के कृषि में महत्व का पता चला था। पौधों एवं पशुओं दोनों के विकास हेतु यह आवश्यक है। धनायन के रूप में पौधों की जड़ों द्वारा यह अवशोषित होता है तथा स्वतन्त्र रूप से पौधों के अन्दर चलता रहता है। इसलिए इसे घोड़े वाला तत्व भी कहते हैं। पोटेशियम का रासायनिक प्रतीक (ज्ञ) जर्मन नाम कैलियम से लिया गया है।

प्रायः सभी फसलों को पोटेशियम की आवश्यकता नत्रजन के बराबर होती है। यदि पोटेशियम की मृदा में कमी हो तो किसानों को पोटेशियम उर्वरक जैसे पोटेशियम सल्फेट एवं पोटेशियम क्लोराइड के द्वारा आपूर्ति करना चाहिए। फसल की जितनी अधिक उपज होगी उतनी ही अधिक पोटेशियम की आवश्यकता होगी। अवशोषित पोटेशियम का लगभग 70-75% पौधों के भूसे में एवं शेष भाग दानों में पाया जाता है।

उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई। उत्पादन में उर्वरकों का लगभग 50 प्रतिशत योगदान है। फसलों द्वारा निष्कासित पोषक तत्वों की मात्रा को उर्वरकों द्वारा आपूर्ति की जाती है। परन्तु निष्कासित पोषक तत्वों की मात्रायें उर्वरकों द्वारा प्रदान की गई मात्रा से लगातार बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता स्तर में लगातार गिरावट आती रही। टिकाऊ एवं अधिक उपज प्राप्त करने हेतु उर्वरकों का प्रयोग निष्कासित पोषक तत्वों के समतुल्य किया जाना चाहिए। हमारे देश की मृदा में पोटेशियम की मात्रा 1-1 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त करने में ही समर्थ है। अधिक उपज (5-10 टन) प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त करने वाली फसलों के लिए मृदा में उपस्थित पोटेशियम असमर्थ है।

पोटेशियम के मुख्य कार्यः पोटेशियम के बिना कोई भी फसल अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकता है, यह साठ से अधिक एन्जाइम को सक्रिय बनाता है। पौधों के भीतर पोटेशियम का अधिकतर अंश स्वतन्त्र धनायन के रूप में चलता-फिरता रहता है पोटेशियम के मुख्य कार्य निम्न है-

* प्रकाश संश्लेषण को प्रोत्साहित करता है। इस तरह यह कार्बोहाइड्रेट, वसा, तेल एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक होता है।

* बीज, जड़, फल, कन्द आदि पौधों के भण्डारण अंगों तक पोटेशियम को प्रकाश संश्लेषण द्वारा पहुँचाने में मदद करता है।

* पौधों में शर्कराओं के निर्माण एवं स्थानान्तरण के लिए आवश्यक है, अतः गन्ना चुकन्दर एवं सकरकन्द में इसका विशेष महत्व है।

* प्रोटीन की मात्रा पौधों में बढाता है परिणामस्वरूप नाइट्रोजन की क्षमता में वृद्धि करने में सहायक होता है।

* कीड़े-मकोड़े, रोगों, सूखा एवं कोहरा आदि से बचाने में सहायक होता है।

* पौधों को गिरने से बचता है।?

* पौधों के जड़ों द्वारा जल अवशोषण को बढ़ाता है, परिणामस्वरू पानी की मात्रा में बचत होती है।

* पौधों की गुणवत्ता को बढ़ाता जिससे उसे अधिक दिनों तक बिना खराब हुए भण्डारित किया जा सकता है।

* आलू एवं टमाटर की कीपिंग गुण को बढ़ाता है।

* तम्बाकू, फल एवं रेशेदार वाली फसलों में पोटेशियम का विशेष महत्व है।

* तेल वाली फसलों में तेल वृद्धि में सहायक है।

* दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाता है।

* प्रमुख पोषक तत्व नत्रजन एवं फास्फोरस की उपयोग क्षमता को बढाता है।

पोटेशियम का पौधों में कमी के लक्षणः

* पत्तियों का रंग गहरा हो जाना।

* पौधों के विकास एवं वृद्धि में कमी।

* पुरानी पत्तियों पर सफेद, पीला या नारंगी हरिमाहीन धब्बों या धारियों का दिखाई देना।

* हरिमाहीन क्षेत्रों में उत्तकों का क्षय हो जाना।

* पत्तियाँ सूख जाती हैं एवं उतक मर जाते हैं।

* यह सारे लक्षण नई पत्तियों तक पहुँच जाते हैं। अतः अन्त में पौधे मर जाते हैं।

* सूखा सहन करने की क्षमता में कमी आ जाती है।

* जड़ों का उचित विकास नहीं हो पाता है।

* यह लक्षण देखकर पौधों में पोटेशियम की कमी को पहचाना जा सकता है। परन्तु उचित होगा कि मृदा का परीक्षण कराकर बुआई से पूर्व ही परीक्षण के आधार पर पोटेशियम का उपयोग करें।

पोटेशियम का दूसरों पोषक तत्वों के साथ पारस्परिक क्रियाः

* पोटेशियम एवं नाईट्रोजनः नाइट्रोजन पोटेशियम की पारस्परिक क्रिया धनात्मक है। अतः नाइट्रोजन के साथ पोटेशियम के प्रयोग करने पर नत्रजन की उपयोग क्षमता बढ़ती है। तथा अधिक नत्रजन की कुप्रभावों को पोटेशियम द्वारा कम करने में विशेष भूमिका है।

* पोटेशियम एवं जिंकः दोनों में धनात्मक पारस्परिक क्रिया है, जिंक के साथ पोटेशियम के प्रयोग से 5-10 कुंटल आलू की उपज में वृद्धि प्राप्त हुई।

* पोटेशियम एवं बोरानः धनात्मक पारस्परिक क्र्रिया है अतः दोनों के एक साथ प्रयोग करने पर दोनों की उपयोग क्षमता एवं फसल उत्पादन में वृद्धि हुई।

* पोटेशियम एवं मैग्नीशियमः पोटेशियम का मैग्नीशियम के साथ ऋृणात्मक (विरोधी) प्रतिक्रिया होती है। जब मृदा में पौटेशियम एवं मैग्नीशियम दोनों की माँग होती है परन्तु केवल पोटेशियम ही दिया जाता है तब पोटेशियम प्रेरित मैग्नीशियम की कमी उत्पन्न हो जाती है। गेहूँ, सरसों रोपी फसलों एवं सामान्यतः औद्योगिक फसलों में पोटेशियम एवं मैग्नीशियम के बीच ऋृणात्मक (विरोधी) पारस्परिक क्रिया में अनुभव की गई है।

प्रमुख पोटाशधारी उर्वरक एवं उनके गुणः यह बात हमें जान लानी चाहिए कि पोटाशवाले सम्पूर्ण उर्वरक भारत सरकार आयात करती है हमारे देश में पोटेशियम उर्वरक का उत्पादन नहीं होता। प्रमुख पोटाशधारी उर्वरकों में म्यूरेट आफ पोटाश (पोटेशियम क्लोराइड) है। इसमें 60~ ज्ञ्ब्स पाया जाता है। पोटेशियम की कुल खपत का 99 प्रतिशत अंश म्यूरेट आफ पोटाश द्वारा पूरा होता है। अन्य पोटाशधारी उर्वरकों में पोटेशियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, पोटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट है।

उर्वरक	रासायनिक सूत्र	पोटाश प्रतिशत
पोटेशियम क्लोराइड	KCl	60-62%
पोटेशियम सल्फेट	K_2SO_4	50-53%
पोटेशियम नाइट्रेट	KNO_3	44-46%
पोटेशियम मैग्नीशियम सल्फेट	$K_2SO_4.MgSO_4$	22%

पोटाश उर्वरक प्रयोग करने की विधियाँः

* ऐसी जगह प्रयोग करें जहाँ से पौधों की जड़ें आसानी से अवशोषित कर सकें। जल वृद्धि एवं सिंचाई हो जाने पर सतह पर डाला गया पोटाश आसानी से पानी के साथ नीचे मूल क्षेत्र तक पहुँच सकता है और पौधों के उपयोग में आ जाता है।

* सान्द्र उर्वरक को मिट्टी के साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

* मृदा सतह पर शुष्क पोटाष उर्वरक को एक साथ बिखेर देना चाहिए यह कार्य भूमि तैयारी के समय करना अधिक प्रभावकारी होता है। क्योंकि पोटाश उतनी गहराई तक पहुँच जाता है। जहाँ पौधों की जड़ें फैली होती हैं और इसे आसानी से अवशोषित कर सकती हैं।

* उर्वरक को कतारों के ऊपर पट्टियों में बीज के साथ कतारों में बीज के नीचे एवं बगल में दिया जा सकता है।

* फसल उगाने के कई सप्ताह बाद पट्टियों में प्रयोग करके गुडाई कर दें।

* मिट्टी की सतह के नीचे पट्टियों में इसका प्रयोग सर्वोत्तम है क्योंकि इससे उर्वरक मूल क्षेत्रों में पहुँचता है।

* सिंचाई जल के साथ भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

अतः अधिक एवं गुणवत्तायुक्त कृषि उपज प्राप्त करने हेतु पोटाश का प्रयोग आवश्यक है तथा किसान भाई अपनी मृदा की जाँच कराकर वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई पोटाश की मात्रा का अपनी फसलों में प्रयोग कर अपनी आमदनी बढ़ायें। यदि किसी कारण वश मृदा जाँच नहीं हो पाई है तो उपर बताये गए लक्षण के आधार पर बाद में भी पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग कर लाभ कमायें।

सर्दियों में उचित देखभाल से पाएँ अमरूद की गुणवत्तायुक्त फसल

शिवम दीक्षित शोध छात्र, (उद्यानिकी), सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर (उ.प्र.)

डॉ. अंकित सिंह भदौरिया विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यानिकी), कृषि विज्ञान केंद्र, कासगंज, (उ.प्र.)

डॉ. अशोक कुमार पाण्डेय प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (उद्यानिकी), जनता कालेज बकेवर, इटावा (उ.प्र.)

डॉ. आनंद सिंह सहायक प्राध्यापक (उद्यानिकी), जनता कालेज बकेवर, इटावा (उ.प्र.)

भारत के उष्णकटिबंधीय फलों में अमरूद का एक प्रमुख स्थान है, जिसे 'गरीबों का सेब' एवं 'सुपर फ्रूट' भी कहा जाता है। अमरूद अपनी पौष्टिकता, स्वाद, औषधीय गुणों एवं बाजार में उच्च मांग के कारण किसानों के लिए अत्यंत लाभदायक फसल है। अमरूद की खेती वर्षभर की जा सकती है, किंतु सर्दियों का मौसम (अक्तूबर-फरवरी) विशेष रूप से अमरूद के फलों की गुणवत्ता, मिठास और बाजार मूल्य के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम माना जाता है। सर्दियों में ठंड, पाला, रोगों की संवेदनशीलता और जल प्रबंधन की चुनौतियाँ सामने आती हैं, जो फलों की उपज और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित कर सकती हैं। अतः सर्दियों में अमरूद की वैज्ञानिक देखभाल और प्रबंधन दोनों ही अत्यंत आवश्यक है। निम्न महत्वपूर्ण बिंदुओं का अनुसरण करते हुए किसान अपनी उपज और आय दोनों में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

1. उचित प्रजातियों का चयन

अमरूद की ऐसी प्रजातियों का चयन करें जो कम तापमान के प्रति सहनशील हों। उत्तर भारत में प्रमुख रूप से 'लखनऊ-49', 'इलाहाबाद सफ़ेदा', 'सरदार', 'ललित' और 'श्वेता' आदि प्रचलित हैं। इन प्रजातियों में न केवल कम तापमान को सहन करने की क्षमता है, बल्कि ये अधिक मीठे और बड़े आकार के फल देती हैं। ठंड प्रतिरोधी प्रजातियों के चयन से पौधों की वृद्धि, रोग प्रतिरोधक क्षमता और कुल उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

2. मृदा प्रबंधन और पोषण सुधार

मिट्टी का स्वास्थ्य सीधे उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित करता है। सर्दियों के पूर्व मिट्टी की जाँच कर पीएच और पोषक तत्वों का विश्लेषण अवश्य करें। मिट्टी को सड़ी हुई गोबर की खाद, कम्पोस्ट या वर्मी कम्पोस्ट से समृद्ध करें। ये कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की संरचना सुधारते हैं और जैविक क्रियाशीलता बढ़ाते हैं।

3. पौधों की समय पर कटाई-छंटाई

अमरूद की फसल में कटाई-छंटाई का अत्यंत ही महत्वपूर्ण योगदान है। सर्दियों के प्रारंभ में हल्की कटाई-छंटाई कर सूखी, मृत, रोगग्रस्त या आपस में उलझी हुई शाखाओं को हटा देना चाहिए। इससे पौधों में वायु परिसंचरण और सूर्य के प्रकाश का प्रवेश बेहतर होता है, जिससे नई टहनियों का विकास होता है जो फलधारण में अधिक सक्षम होती हैं।

संतुलित और सुव्यवस्थित छत्राकार (Canopy) वाला पौधा न केवल अधिक फल देता है बल्कि उन फलों का रंग, आकार और स्वाद भी बेहतर होता है।

4. सिंचाई प्रबंधन

सर्दियों में वाष्पीकरण दर कम होने के कारण पौधों को सीमित जल की आवश्यकता होती है। परंतु, अधिक दिनों तक मिट्टी में नमी की कमी फलों के आकार और स्वाद दोनों को प्रभावित कर सकती है। ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली सबसे उपयुक्त रहती है क्योंकि इससे पानी सीधे जड़ क्षेत्र तक पहुँचता है और जल की बर्बादी नहीं होती। यह ध्यान रखें कि जलभराव न हो क्योंकि ठंडे मौसम में अधिक नमी से जड़ में सड़न हो सकती है अतः यह सुनिश्चित करें कि मिट्टी में पर्याप्त में नमी हो।

5. खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

सर्दियों में पौधों की वृद्धि धीमी रहती है, इसलिए पोषक तत्वों की आपूर्ति संतुलित रूप में करनी चाहिए। प्रति वर्ष 10 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन, 200 ग्राम फास्फोरस और 200 ग्राम पोटाश प्रति पौधा देना उचित रहता है। इन उर्वरकों को दो भागों में दें (आधा भाग सर्दियों की शुरुआत से पहले और शेष भाग फूल आने के समय)। इसके अतिरिक्त जैविक विकल्प जैसे बोनमील, नीमखली और वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में अत्यंत सहायक हैं।

6. कीट एवं रोग प्रबंधन

सर्दियों में अमरूद पर फल मक्खी, माहूं तथा मीलीबग आदि का आक्रमण होता है तथा पत्ती धब्बा और एन्थ्रेक्नोज जैसी बीमारियाँ फलों की गुणवत्ता को घटा सकती हैं।

प्रबंधन

* गिरे हुए फलों और सूखी पत्तियों को एकत्र कर नष्ट करें।
* फेरोमोन ट्रैप और यलो स्टिकी ट्रैप लगाएँ।
* नीम आधारित जैव-कीटनाशकों या ट्राइकोडर्मा युक्त जैव-फफूंदनाशकों का प्रयोग करें।
* एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) तकनीकों का प्रयोग करें जिससे रासायनिक दवाओं पर निर्भरता कम हो।

7. ठंड और पाला से सुरक्षा

उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में दिसंबर-जनवरी में तापमान 4°C से नीचे चला जाता है जिससे पौधों को ठंढ से क्षति हो सकती है।

सुरक्षा उपाय

* युवा पौधों को घास, बोरी या पॉलीथिन शीट से ढकें।
* पौधों के चारों ओर 20-25 सेमी ऊँचा मिट्टी का मेड़ बनाएं ताकि जड़ें सुरक्षित रहें।
* खेत के चारों ओर वायुरोधी पौधे (Windbreak) जैसे अरहर, बबूल या शिरीष लगाएँ।
* ठंड के समय शाम को सिंचाई करने से मिट्टी का तापमान स्थिर रहता है और पाला कम लगता है।

8. कटाई और कटाई के बाद प्रबंधन

अमरूद की कटाइ तब करें जब फल परिपक्व हो जाए परंतु अत्यधिक मुलायम न हो। कठोर फलों को सावधानीपूर्वक तोड़ें ताकि डंठल का भाग सुरक्षित रहे। कटाई के बाद फलों को साफ पानी से धोकर ग्रेडिंग करें। अच्छे फलों को वेंटिलेटेड प्लास्टिक क्रेट या बाँस की टोकरियों में रखें। भंडारण के लिए 8-10°C तापमान और 85-90% आर्द्रता आदर्श रहती है, जिससे फलों की शेल्फ लाइफ 10-12 दिन तक बढ़ाई जा सकती है।

9. पौध संरक्षण हेतु स्वच्छता उपाय

खेत की स्वच्छता सर्दियों में विशेष रूप से आवश्यक है। गिरे हुए पत्ते, खराब फल या संक्रमित टहनियाँ कीटों और रोगजनकों के लिए आश्रय स्थल बन जाती हैं। इसलिए समय-समय पर सफाई करें, गड्ढों में जैविक अपघटन कराएँ या उन्हें जला दें। स्वच्छ खेत स्वस्थ पौधों और बेहतर उत्पादन की कुंजी है। भारत में सर्दियों का मौसम अमरूद की गुणवत्ता और मिठास को बढ़ाने के लिए सर्वोत्तम अवसर प्रदान करता है। किंतु इस समय फसल का वैज्ञानिक और समन्वित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। उचित किस्म का चयन, मृदा पोषण, संतुलित सिंचाई, जैविक खाद, कीट-रोग नियंत्रण, ठंढ से सुरक्षा और कटाई के बाद का समुचित प्रबंधन अपनाकर किसान न केवल अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं बल्कि बाजार में उच्च मूल्य भी अर्जित कर सकते हैं। अतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने से अमरूद की सर्दियों की फसल किसानों के लिए एक आर्थिक वरदान सिद्ध हो सकती है ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

आंचल दुबे (शोध छात्रा) वानिकी विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

धन्य कुमार (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

डॉ. आस्था गुप्ता (सहायक प्राध्यापक) वानिकी विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

बुंदेलखण्ड क्षेत्र में इमारती लकड़ी के पेड़ों के साथ फसलों को उगाना

परिचय : बुंदेलखंड क्षेत्र में इमारती लकड़ी के पेड़ों के साथ फसलों को उगाना (जिसे कृषि वानिकी या एग्रोफोरेस्ट्री कहा जाता है) एक टिकाऊ और लाभदायक तरीका है, खासकर इस क्षेत्र की अर्ध-शुष्क जलवायु और पानी की कमी को देखते हुए। यह प्रणाली किसानों को अतिरिक्त आय, चारा, ईंधन और लकड़ी प्रदान करती है, साथ ही मिट्टी और पर्यावरण को बेहतर बनाने में भी मदद करती है।

उपयुक्त इमारती लकड़ी के पेड़ : बुंदेलखंड की जलवायु परिस्थितियों के लिए कुछ उपयुक्त इमारती लकड़ी के पेड़ निम्नलिखित हैं:

चन्दन : सफेद और लाल चंदन दोनों की खेती किसानों के लिए बहुत फायदेमंद साबित हो रही है, क्योंकि इनकी लकड़ी की बाजार में काफी ऊंची कीमत है।

सागोन : यह अपनी मजबूत और टिकाऊ लकड़ी के लिए जाना जाता है और इसकी अच्छी मांग है।

नीम : नीम के पेड़ बहुउद्देशीय होते हैं। इनकी लकड़ी के साथ-साथ पत्तियों और निंबोली का उपयोग कीटनाशकों और औषधीय उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

बांस : बांस एक बहुमुखी पौधा है जो तेजी से बढ़ता है और इसे छोटे लकड़ी जे उत्पादों के लिए प्रति वर्ष काटा जा सकता है, जिससे नियमित आय होती है।

साथ उगाई जाने वाली उपयुक्त फसलें : इन पेड़ों के साथ ऐसी फसलें उगाई जा सकती हैं जिन्हें कम पानी की आवश्यकता होती है और जो पेड़ों की छाया या जमीन की नमी से प्रभावित नहीं होतीं।

दलहनी फसलें: चना, मटर और उड़द जैसी दलहनी फसलें इस प्रणाली के लिए बहुत उपयुक्त हैं। ये मिट्टी की उर्वरता में भी मदद करती हैं।

औषधीय और सुगंधित पौधे : लेमनग्रास, अश्वगंधा, सातवेर, और खस (अमजपअमत) जैसी फसलें कम पानी में भी अच्छी पैदावार देती हैं और क्षेत्र के गर्म मौसम को सहन कर सकती हैं।

सब्जियां: कुछ किसान टमाटर, खीरा, और अन्य सब्जियों की खेती भी सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

पेड़ों के साथ खेती की तकनीक : पेड़ों के साथ फसलों की खेती (कृषि वानिकी) को किसी प्रकार से किया जा सकता है, **इसके लिए कुछ प्रमुख तरीके और फसलों के चयन का वर्णन निम्न रूप से है-**

खेत की मेड़ों पर पेड़ लगाना : यह एक सामान्य तरीका है, जहाँ मुख्य खेत में फसले उगाई जाती हैं और मेड़ों पर इमारती लकड़ी के पेड़ लगाए जाते हैं। इससे फसल की पैदावार पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है।

निश्चित दूरी पर पेड़ लगाना : पेड़ों को खेत में एक निश्चित दूरी (जैसे 5×5 मीटर या 10×12 मीटर) पर लगाया जाता है जिससे बीच की खाली जगह में फसलों को उगाया जा सके।

फसलों का चयन

दलहनी फसलें : चना, मसूर, मूँग और उड़द जैसी दलहनी फसले मिट्टी में नाइट्रोजन बढ़ातीहैं और पेड़ों के साथ अच्छी तरह से उगती हैं।

अन्य फसलें: गेहूं, सरसों, मूंगफली, ज्वार और बाजरा जैसी भी फसले उगाई जा सकती हैं।

मुख्य लाभ: बुंदेलखंड क्षेत्र में इमारती लकड़ी के पेड़ों के साथ खेती (कृषि वानिकी) करने से किसानों को आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ मिलते हैं, एवं यह एक टिकाऊ और लाभदायक विकल्प है जो किसानों की आय बढ़ाता है और क्षेत्र के पर्यावरण को बेहतर बनाता है।

बाजार की माँग : इमारती लकड़ी की बाजार में हमेशा उच्च मांग रहती है, जिससे किसानों को उपज बेचने में आसानी होती है।

जोखिम प्रबंधन : आय की स्त्रोतो में विविधता लाकर, यह प्रथा फसल खराब होने या बाजार की अनिश्चिताओं के कारण होने वाले नुकसान के जोखिम को कम करती है।

विविधकरण : यह प्रणाली केवल एक फसल पर निर्भरता कम करती है, जिससे फसल खराब होने का जोखिम कम होता है।

पर्यावरणीय और कृषि लाभ

सूखे से बचाव : पानी की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों में यह प्रणाली उपयोगी है, क्योंकि कई उपयुक्त फसलें और पेड़ कम पानी में जीवित रह सकते हैं।

मृदा संरक्षण : पेड़ों की जड़ें मिट्टी को बांधे रखती हैं, जिससे भारी बारिश और तेज हवाओं के दौरान मिट्टी का कटाव को रुकती है,और उसकी उर्वरता बनाए रखने में मदद करती है।

मिट्टी की उर्वरता में सुधार : पेड़ आधारित प्रणालियां मिट्टी के स्वास्थ्य और उर्वरता को बढ़ाती है, जिससे फसल की पैदावार में 10-20% की वृद्धि होती है।

जल संरक्षण : पेड़ मिट्टी की नमी बनाए रखने में मदद करते हैं और भूजल स्तर को बेहतर बनाने में भी सहायक होते हैं जो पानी की कमी वाले बुंदेलखंड के लिए महत्वपूर्ण है।

जलवायु नियंत्रण : पेड़ छाया प्रदान करते हैं, जिससे वातावरण ठंडा होता है और पशुओं व फसलों को गर्मी के तनाव से बचाया जा सकता है।

कीट और रोग नियंत्रण : मिश्रित खेती से कीटों और रोगों को पूरे खेत में फैलने से रोकने में मदद मिलती है।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com

प्राकृतिक कृषि: टिकाऊ खेती की ओर एक कदम

✍हर्षित सिंह (सस्य विज्ञान विभाग)
✍अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
✍हर्षित कटियार कीट विज्ञान विभाग
✍जया गुप्ता मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

भूमिका: भारतीय कृषि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। हरित क्रांति के बाद खेती की उपज तो बढ़ी, लेकिन उसके दुष्परिणाम जैसे मृदा क्षरण, जल प्रदूषण, कीटनाशक अवशेष और किसानों की बढ़ती लागत ने टिकाऊ खेती पर सवाल खड़े कर दिए। ऐसे समय में प्राकृतिक कृषि एक वैकल्पिक और सुरक्षित रास्ता बनकर उभर रही है, जो न केवल पर्यावरण के अनुकूल है बल्कि किसानों की आय और भूमि की उर्वरता को भी बढ़ावा देती है।

प्राकृतिक कृषि की परिभाषा: प्राकृतिक कृषि एक ऐसी कृषि प्रणाली है जो रसायन रहित होती है तथा जिसमें पशुपालन आधारित विधियों और विविध फसल प्रणाली का समावेश होता है। यह पद्धति भारत के पारंपरिक कृषि ज्ञान पर आधारित है और स्थानीय कृषि जलवायु परिस्थितियों तथा स्थान-विशिष्ट तकनीकों के अनुसार विकसित की गई है। प्राकृतिक कृषि के प्रमुख लाभों में बहुफसली प्रणाली के माध्यम से फसल तीव्रता में वृद्धि, मृदा जैविक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि, मृदा उर्वरता में सुधार, किसानों के आहार में विविधता, उत्पादन लागत में कमी आदि शामिल हैं। इस प्रणाली की समझ भारत भर में प्रचलित पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर आधारित है। प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, मल्चिंग (आवरण), हरित आवरण जैसे उपाय मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा और जल रिसाव को बढ़ाते हैं, मृदा की संरचना में सुधार करते हैं और पोषक तत्व चक्र व मृदा संरचना को सशक्त बनाते हैं।

विविध प्रकार की फसलें उगाने से लाभदायक: बनता है जो परागण, प्राकृतिक कीट नियंत्रण और खाद्य श्रृंखला के संतुलन जैसे पारिस्थितिकी सेवाएं प्रदान करते हैं। इससे कीट प्रकोप की संभावना कम होती हैं तथा खरपतवार पर भी नियंत्रण होता है। प्राकृतिक कृषि एक ऐसी पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और बाहरी संसाधनों का प्रयोग न के बराबर होता है। इसमें देशी गाय के गोबर और गौमूत्र, जैविक पदार्थों और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर मिट्टी की उर्वरता और फसल की पैदावार बनाए रखी जाती है। डॉ. सुभाष पालेकर द्वारा विकसित यह पद्धति "शून्य बजट प्राकृतिक कृषि" (ZBNF) के नाम से भी जानी जाती है।

प्राकृतिक कृषि के चार मुख्य स्तंभ (डॉ. सुभाष पालेकर के अनुसार)

1. **जीवामृत-** देशी गाय के गोबर, गौमूत्र, गुड़, बेसन और मिट्टी से बना एक जैविक घोल जो मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाता है।
2. **बीजामृत –** यह बीजों को अंकुरण के पहले रोगों से बचाने के लिए देशी विधि है।
3. **अच्छादान (मल्चिंग)** मिट्टी की सतह को पत्तियों, फसल अवशेषों से ढंक कर जल संरक्षण और खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी है।
4. वापसा मृदा में नमी और हवा का संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया।

प्राकृतिक कृषि और टिकाऊ विकास के बीच संबंध

मृदा की रक्षा: रासायनिक उर्वरकों से दूर रहकर प्राकृतिक कृषि मिट्टी की जैविक गुणवत्ता को बढ़ाती है।

जल संरक्षण: सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में वृद्धि के कारण जल धारण क्षमता बढ़ती है।

पर्यावरणीय लाभ: ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम होता है व कीटनाशकों का उपयोग न होने से प्रदूषण नहीं होता है।

कृषि लागत में कमी: खाद, कीटनाशक, सिंचाई जैसे बाहरी इनपुट पर खर्च घटता है।

सुरक्षित खाद्य उत्पादन: जैविक व प्राकृतिक तरीके से उगाई गई फसलें स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।

प्राकृतिक खेती की चुनौतियाँ

1. **आरंभिक उपज में गिरावट:** रासायनिक आदानों से हटने पर शुरुआत में उपज में कमी हो सकती है।
2. **तकनीकी जानकारी की कमी:** अधिकांश किसान प्राकृतिक कृषि की विधियों से परिचित नहीं हैं।
3. **बाजार और ब्रांडिंग:** जैविक प्राकृतिक उत्पादों को उचित मूल्य दिलाने हेतु बाजार व्यवस्था कमजोर है।
4. **नीतिगत समर्थन की कमी:** सब्सिडी और प्रशिक्षण की सीमित उपलब्धता।

प्राकृतिक खेती की विशेषताएं

1. प्राकृतिक खेती का मानना है कि पौधे अपने कुल पोषक तत्वों का लगभग 98% भाग वायु, जल और सूर्य के प्रकाश से प्राप्त करते हैं, जबकि शेष 2% पोषक तत्व मृदा में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीवों के माध्यम से मिलते हैं। 2. मिट्टी को सदैव जैविक मल्च (जैविक अच्छादन) से ढका रहना चाहिए जिससे ह्यूमस का निर्माण होता है और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि होती है। 3. रासायनिक खादों के स्थान पर खेत में निर्मित जैविक घोल जैसे जीवामृत, बीजामृत आदि का प्रयोग मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। ये घोल देशी नस्ल की गाय के गोबर और गौमूत्र से बहुत ही कम मात्रा में बनाए जाते हैं। 4. यह प्रणाली किसानों की आय बढ़ाने की क्षमता रखती है तथा कई लाभ देती है जैसे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी, मृदा की उर्वरता की पुनर्स्थापना और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार। 5. इस प्रणाली के लिए देशी गाय का गोबर और गौमूत्र आवश्यक होता है, क्योंकि देशी गाय के गोबर और गौमूत्र में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की जैविक संरचना सबसे शुद्ध और प्रभावी मानी जाती है। 6. प्राकृतिक खेती में न तो रासायनिक और न ही जैविक खादों का उपयोग किया जाता है। मृदा और पौधों को कोई भी बाहरी उर्वरक नहीं दिया जाता। 7. प्राकृतिक खेती में केंचुए और बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा दिया जाता है, जो सतही जैविक पदार्थों को धीरे-धीरे विघटित कर मृदा में पोषक तत्व जोड़ते हैं। 8. निराई-गुड़ाई (Weeding) प्रकृति की तरह बिना खाद, जुताई या मिट्टी पलटने के की जाती है, जैसे कि प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में होता है। 9. कीट और रोगों से बचाव के लिए प्राकृतिक कीटनाशकों जैसे दशपर्णी अर्क, नीमास्त्र आदि का प्रयोग किया जाता है। 10. एकल फसल (Single Crop) के स्थान पर बहुफसली प्रणाली (Multiple Cropping) को बढ़ावा दिया जाता है जिससे मृदा की उर्वरता, कीट नियंत्रण, और उत्पादन में विविधता बनी रहती है।

बीजामृत: बीजामृत एक जैविक सूक्ष्मजीव घोल होता है जिसे देशी गाय के ताजे गोबर और गौमूत्र से बनाया जाता है। यह बीज उपचार और पौधों की जड़ों को डुबोने के लिए उपयोग किया जाता है।

सामग्री: देशी गाय का ताजा गोबर 5 किलोग्राम, देशी गाय का गौमूत्र - 5 लीटर, कुमारी मिट्टी (जैसे जंगल या वटवृक्ष की जड़ से) 50-100 ग्राम, कैल्शियम क्लोराइड - 50 ग्राम, पानी - 20 लीटर

बनाने की विधि: 1. सभी सामग्री को एक साफ बर्तन में मिलाएं। 2. मिश्रण को अच्छी तरह घंटों तक हिलाकर मिलाएं। 3. इसे 24 घंटे तक ढककर किण्वित होने दें। 4. फिर इसका प्रयोग बीज उपचार के लिए करें।

उपयोग: बीजों को इस घोल में डुबोकर छाया में सुखाया जाता है। यह प्रक्रिया बीजों को मृदा जनित व बीज जनित रोगों से बचाती है। अंकुरण समय को कम करती है और पौधों की शुरुआती वृद्धि को तेज करती है। इसमें उपस्थित सूक्ष्मजीव बीजों के साथ मृदा में पहुँचते हैं और पौधों की जड़ों को रोगों व कीटों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह जड़ों का सूखा भार, जड़ प्रसार, तथा नाइट्रोजन, पोषक तत्व व जल ग्रहण करने की क्षमता को सशक्त बनाता है।

घनजीवामृत: घनजीवामृत को एक ठोस रूप में तैयार किया जाने वाला जैविक उर्वरक है। यह मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने और पोषण सुधारने में सहायक है।

सामग्री, देशी गाय का गोबर - 150 किलोग्राम, गुड़ - । किलोग्राम, दालों का आटा (चना, मूंग आदि)-2 किलोग्राम, कुमारी उर्वर मिट्टी-50-100 ग्राम, देशी गाय का गौमूत्र आवश्यकता अनुसार

बनाने की विधि : 1. गोबर, गुड़, दाल का आटा और मिट्टी को अच्छे से मिलाएं 2. जरूरत के अनुसार थोड़ा सा गौमूत्र मिलाएं। 3. इस मिश्रण को छाया में 2-4 दिन तक सुखाएं। 4. पूरी तरह सूखने के बाद इसे पीसकर छोटे-छोटे दानों के रूप में बना 5. इसे 6 महीनों तक संग्रहित कर उपयोग किया जा सकता है।

जीवामृत: जीवामृत एक किण्वित जैविक सूक्ष्मजीव घोल है जो खेत पर ही उपलब्ध सामग्री से तैयार किया जाता है। यह घोल मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाकर पौधों की वृद्धि और पोषण को बेहतर बनाता है।

सामग्री: देशी गाय का ताजा गोबर 10 किलोग्राम, देशी गाय का गौमूत्र 10 लीटर, गन्ने का गुड़ या किसी मीठे फल का गूदा 1.5 किलोग्राम, किसी दलहन (चना/अरहर/मूंग) का आटा 1.5 किलोग्राम, पानी- 180 लीटर, कुमारी मिट्टी (जैसे वटवृक्ष या जंगल की मिट्टी) 50-100 ग्राम

बनाने की विधि: 1. सभी सामग्री को एक बड़े साफ प्लास्टिक ड्रम या बरतन में डालें। 2. मिश्रण को अच्छी तरह घंटे भर हिलाएं और छाया में रखें। 3. घोल को दिन में कम से कम एक बार हिलाना जरूरी है ताकि सूक्ष्मजीव सक्रिय रहें। 4. गर्मी में 3-4 दिन, जबकि सर्दी में 6-7 दिन में यह घोल तैयार हो जाता है।

प्रयोग की विधियाँ: तैयार जीवामृत को प्रति एकड़ 200 से 600 लीटर की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसे महीने में दो बार खेत में दिया जाता है।

उपयोग के तरीके: सिंचाई जल के साथ मिलाकर देना (फव्वारा, ड्रिप या नाली सिंचाई)। फोलियर स्प्रे (पत्तियों पर छिड़काव) के रूप में। मिट्टी पर सीधे डालना।

जीवामृत के लाभ: मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को प्रोत्साहित करता है (जैसे केंचुए, बैक्टीरिया आदि)। पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है, मृदा की जीवंतता व उर्वरता को पुनर्स्थापित करता है। लगातार उपयोग से खेत में जैविक संतुलन और पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। देशी गाय के गोबर व गौमूत्र से तैयार जीवामृत में अधिक लाभकारी सूक्ष्मजीव होते हैं इसलिए यही सर्वोत्तम माना जाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

हरित क्रांति का पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभाव

डॉ. रश्मि सिंह, स्वपनिल सिंह, एलेना खाद्य एवं पोषण विज्ञान विभाग, पारिवारिक संसाधन प्रबंधन उपभोक्ता विज्ञान विभाग, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर

हरित क्रांति भारतीय कृषि के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। 1960 के दशक में शुरू हुई इस क्रांति ने देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया और भुखमरी से लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उच्च उपज देने वाली किस्मों (HYV) के बीज, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और आधुनिक सिंचाई तकनीकों के उपयोग ने कृषि उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि की। हालांकि, इन उपलब्धियों के साथ-साथ पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर गंभीर प्रभाव भी पड़े हैं। हरित क्रांति की सफलता मुख्य रूप से गेहूं और धान की फसलों में देखी गई, विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में। परंतु समय के साथ यह स्पष्ट हो गया कि यह विकास मॉडल पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ नहीं था। आज, हम उन पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहे हैं जो हरित क्रांति की गहनता के कारण उत्पन्न हुई हैं।

जल संसाधनों पर प्रभाव

भूजल का अत्यधिक दोहन: हरित क्रांति का सबसे गंभीर प्रभाव भूजल संसाधनों पर पड़ा है। उच्च उपज देने वाली फसल किस्मों को अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जिसके कारण किसानों ने भूजल का व्यापक दोहन शुरू किया। पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में जहां धान की खेती बड़े पैमाने पर होती है, भूजल स्तर खतरनाक दर से गिर रहा है। पंजाब के कई जिलों में भूजल स्तर प्रति वर्ष 0.5 से 1 मीटर तक गिर रहा है।

?सिंचाई का असमान वितरण

हरित क्रांति से सिंचाई सुविधाओं का विकास हुआ, लेकिन यह विकास असमान रहा। जो क्षेत्र पहले से ही सिंचाई सुविधाओं से संपन्न थे, उन्होंने अधिक लाभ उठाया, जबकि वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र पिछड़ गए। इससे क्षेत्रीय असमानता बढ़ी और जल संसाधनों का असंतुलित उपयोग हुआ।

रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग

हरित क्रांति में रासायनिक उर्वरकों, विशेष रूप से नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम (NPK) उर्वरकों का व्यापक उपयोग हुआ। प्रारंभ में इनसे उत्पादकता में वृद्धि हुई, लेकिन लंबे समय तक एकतरफा उर्वरक उपयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो गई और जैविक कार्बन की मात्रा घट गई। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता कम हुई है। मिट्टी में रहने वाले लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्या घटी है, जो मिट्टी की संरचना और पोषक तत्वों के चक्र के लिए आवश्यक हैं। मिट्टी की जल धारण क्षमता भी प्रभावित हुई है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता और बढ़ गई है।

मृदा क्षरण और अम्लीयता

गहन कृषि पद्धतियों और मोनोकल्चर (एक ही फसल की निरंतर खेती) के कारण मिट्टी का क्षरण बढ़ा है। पारंपरिक फसल चक्र की उपेक्षा ने मिट्टी को कमजोर बनाया है। कई क्षेत्रों में मिट्टी अम्लीय हो गई है, विशेष रूप से जहां अमोनिया आधारित उर्वरकों का अधिक उपयोग हुआ है।मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की कमी से उसकी संरचना प्रभावित हुई है। मिट्टी कठोर और कम उपजाऊ हो गई है, जिससे किसानों को समान उत्पादन के लिए अधिक उर्वरक और जल का उपयोग करना पड़ता है। यह एक दुष्चक्र बन गया है जो मिट्टी के स्वास्थ्य को और खराब कर रहा है।

जैव विविधता पर प्रभाव

फसल विविधता में कमी: हरित क्रांति ने कुछ चुनिंदा फसलों, मुख्यतः गेहूं और धान, पर ध्यान केंद्रित किया। इसके परिणाम स्वरूप पारंपरिक फसलों जैसे बाजरा, ज्वार, दलहन और तिलहन की खेती में कमी आई। यह फसल विविधता की हानि न केवल पोषण सुरक्षा हेतु खतरा है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन के लिए भी हानिकारक है।देशी और पारंपरिक बीज किस्में धीरे-धीरे विलुप्त हो रही हैं। ये किस्में स्थानीय जलवायु और मिट्टी के अनुकूल थीं और कम पानी तथा उर्वरक में भी अच्छी उपज देती थीं। उनकी जगह पर आधुनिक संकर और आनुवंशिक रूप से संशोधित किस्मों ने ले ली है, जो अधिक संसाधनों पर निर्भर हैं।

कीटनाशकों का प्रभाव

रासायनिक कीटनाशकों और शाकनाशियों के व्यापक उपयोग ने न केवल हानिकारक कीटों को बल्कि लाभदायक कीटों, परागणकों और मिट्टी के जीवों को भी नष्ट किया है। मधुमक्खियों, तितलियों और अन्य परागणकों की संख्या में कमी आई है, जो फसल उत्पादन के लिए आवश्यक हैं।पक्षियों और जलीय जीवों पर भी कीटनाशकों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। खेतों से बहकर आने वाले रसायन नदियों और तालाबों में पहुंचते हैं, जिससे जलीय जीवन प्रभावित होता है। खाद्य श्रृंखला में इन रसायनों का जैव-संचय होता है, जो अंततः मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरनाक है।

प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश

कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग से कीटों के प्राकृतिक शत्रु जैसे परभक्षी कीट, मकड़ियां और पक्षी भी नष्ट हुए हैं। इससे कीटों का प्राकृतिक नियंत्रण समाप्त हो गया और किसान पूरी तरह से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भर हो गए। समय के साथ कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई, जिससे अधिक मात्रा और शक्तिशाली कीटनाशकों की आवश्यकता पड़ने लगी।

वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन

पराली जलाना

धान-गेहूं की गहन कृषि प्रणाली में पराली जलाने की समस्या गंभीर हो गई है। धान की कटाई के बाद किसानों के पास गेहूं की बुवाई के लिए बहुत कम समय होता है, इसलिए वे खेतों में बची फसल अवशेषों को जला देते हैं। इससे भारी वायु प्रदूषण होता है और दिल्ली-एनसीआर क्षेत्र में स्मॉग की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है।पराली जलाने से न केवल वायु प्रदूषण होता है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता भी नष्ट होती है। आग से मिट्टी के जैविक तत्व और सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा, यह कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करता है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है।

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन

धान की खेती मीथेन गैस के प्रमुख स्रोतों में से एक है। धान के खेतों में जलभराव की स्थिति में अवायवीय अपघटन होता है, जिससे मीथेन गैस उत्पन्न होती है। यह गैस कार्बन डाइऑक्साइड से 25 गुना अधिक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस है। रासायनिक उर्वरकों, विशेष रूप से नाइट्रोजन उर्वरकों के उपयोग से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है, जो एक अन्य शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस है। कृषि यंत्रों और सिंचाई पंपों के संचालन में जीवाश्म ईंधन का उपयोग भी कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि करता है।

उर्वरक

रासायनिक उर्वरकों का एक बड़ा भाग पौधों द्वारा अवशोषित नहीं होता और वर्षा या सिंचाई के पानी के साथ बहकर जल स्रोतों में पहुंच जाता है। नाइट्रेट और फॉस्फेट की अधिकता से नदियों, तालाबों और झीलों में सुपोषण (eutrophication) की समस्या उत्पन्न होती है। सुपोषण के कारण जल में शैवालों की अत्यधिक वृद्धि होती है, जो जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम कर देते हैं। इससे मछलियां और अन्य जलीय जीव मर जाते हैं। पेयजल स्रोतों में नाइट्रेट की अधिकता मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है, विशेष रूप से शिशुओं के लिए।

कीटनाशक प्रदूषण

कीटनाशक भी जल स्रोतों को प्रदूषित करते हैं। कई कीटनाशक लंबे समय तक पर्यावरण में बने रहते हैं और जल में घुलकर भूजल और सतही जल को दूषित करते हैं। पंजाब और हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में भूजल में कीटनाशक अवशेषों की मात्रा चिंताजनक स्तर पर पाई गई है।

निष्कर्ष

हरित क्रांति ने भारत को खाद्य सुरक्षा प्रदान की और लाखों लोगों को भुखमरी से बचाया। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जिसने देश के आर्थिक विकास में योगदान दिया। हालांकि, इसके पर्यावरणीय और सामाजिक लागत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। भूजल का ह्रास, मिट्टी का क्षरण, जैव विविधता की हानि, प्रदूषण और स्वास्थ्य समस्याएं गंभीर चिंता के विषय हैं।अब समय आ गया है कि हम "दूसरी हरित क्रांति" की ओर बढ़ें जो पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ हो। यह क्रांति पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय करते हुए, जैविक खेती, फसल विविधीकरण, जल संरक्षण और समेकित कीट प्रबंधन पर आधारित होनी चाहिए। हमें ऐसी कृषि प्रणाली विकसित करनी होगी जो न केवल वर्तमान पीढ़ी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करे, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को भी संरक्षित रखे।किसानों, वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और नागरिक समाज को मिलकर काम करना होगा। प्रौद्योगिकी, नीति और जन जागरूकता के माध्यम से हम हरित क्रांति के नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं और एक स्वस्थ, समृद्ध और टिकाऊ कृषि भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं। पर्यावरण और विकास के बीच संतुलन बनाना ही भारतीय कृषि की सबसे बड़ी चुनौती और आवश्यकता है।

विकल्पों की उपलब्धता से घटेगी रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता

डॉ. प्रवेश कुमार, डॉ. शेष नारायण सिंह
डॉ. प्रवीण कुमार मिश्र विषय वस्तु विशेषज्ञ,
मृदा विज्ञान, कृषि प्रसार, एवं उद्यान, कृषि विज्ञान केन्द्र,
सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश-272193

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कुमारगंज, अयोध्या-उत्तर प्रदेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसके लगभग 140 मिलियन हेक्टर क्षेत्रफल में कृषि होती है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 42त्न है जिसमें विभिन्न प्रकार की दलहनी, तिलहनी, खाद्यान्न, श्रीअन्न, सब्जियों, फलों, मसालों एवं औषधीय फसलों की खेती होती है प्रत्येक फसल को पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग-अलग होती है अध्ययन के अनुसार पौधे के वृद्धि एवं विकास के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिसमें से कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन पौधे पानी एवं हवा से प्राप्त करते हैं इसके अलावा अन्य पोषक तत्व पौधे मिट्टी से लेते हैं। पौधों के लिए आवश्यक लगभग सभी पोषक तत्व मिट्टी में उपस्थित होते हैं, लेकिन फसल अवशेष का मिट्टी में न मिलाना, असंतुलित रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, जैविक खादों का घटना प्रयोग, फसल चक्र से दलहनी फसलों का गायब होना, सघन कृषि जैसी अवैज्ञानिक कृषि प्रथाओं से मिट्टी से जिस अनुपात में पोषक तत्वों का दोहन हुआ, उस अनुपात में मिट्टी में पोषक तत्वों की पूर्ति न होने से मिट्टी में बहु-पोषक तत्वों की कमी हो गई है। 1950 के दशक में भारतीय मृदाओं में केवल नाइट्रोजन तत्व की कमी थी लेकिन अब नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, सल्फर, लोहा, जिंक, मैंगनीज, बोरोन एवं मोलिब्डेनम तत्वों की कमी हो गई है जिनकी पूर्ति के लिए किसान रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर हैं।

भारतीय कृषि में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग हरित क्रांति के दौरान से बड़े स्तर पर शुरू हुआ। देश को भूखमरी के कुचक्र से निकालने के लिए अधिक उपज देने वाली किस्मों पर जोर दिया गया, जिन्हें अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती थी इसलिए सरकार ने रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा दिया और किसानों ने रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया, जिसके परिणामस्वरूप देश के खाद्यान्न उत्पादन में चमत्कारिक वृद्धि हुई। हरित क्रांति के आने से ही देश आज खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर होने के साथ कृषि उपज का बड़े पैमाने पर निर्यात भी करता है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में भी वृद्धि हुई, 1966-67 में रासायनिक उर्वरकों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश) का प्रयोग प्रति हैक्टर 7 किग्रा था जो 2022-23 में 141 किग्रा प्रति हैक्टर हो गया है। रासायनिक उर्वरकों में यूरिया, डी ए पी, म्यूरेट ऑफ पोटाश और सिंगलसुपरफास्फेट का प्रयोग अधिक किया जाता है। जिनसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश और सल्फर तत्वों की पूर्ति होती है। इन उर्वरकों की पूर्ति के लिए आयात पर निर्भरता होने के कारण अंतराष्ट्रीय भू राजनैतिक कारणों, अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आपूर्ति एवं मूल्य में उतार चढाव से आपूर्ति प्रभावित होती है जिसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित मात्रा में देने की सिफारिश की जाती हैं। लेकिन मृदा परीक्षण की सीमित सुविधा होने और फसलों में पोषक तत्व प्रबन्धन के अन्य विकल्पों की सीमित उपलब्धता से किसानों ने असंतुलित और अंधाधुंध रसायनों का प्रयोग किया, जिसके कारण मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट, फ़सल उत्पादन लागत में वृद्धि और रसायनिक उर्वरकों पर दी जानें वाली सब्सिडी से सरकार पर आर्थिक बोझ बड़ा, तो सरकार ने मिट्टी के बिगड़ते स्वास्थ्य को सुधारने एवं उर्वरकों के संतुलित मात्रा में प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा 2015 में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना शुरू की गई। जिसके तहत वर्ष 2023-24 तक सरकारी आंकड़ों के अनुसार लगभग 23 करोड़ से अधिक मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसानों को वितरित किए जा चुके हैं लेकिन जागरूकता की कमी, समय से जांच रिपोर्ट न मिलने एवं विश्वसनीय जांच रिपोर्ट के अभाव में किसान फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन के लिए मृदास्वास्थ्य कार्ड का सीमित अपयोग कर रहे हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के वितरण से ज्यादा किसानों द्वारा उसके प्रयोग पर जोर देने की जरूरत है। इसके लिए किसानों में मृदा स्वास्थ्य कार्ड को विश्वसनीय बनाने लिए मृदा परीक्षण व्यवस्था को सुदृढ़ कर समय से और सही जांच रिपोर्ट किसानों को उपलब्ध कराकर रासायनिक उर्वरकों के संतुलित प्रयोग को बढ़ावा दिया जा सकता है। रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग में पशुपालन का कम होना भी एक प्रमुख कारण है किसान पशुओं का गोबर और मूत्र खेत में प्रयोग करते थे जिससे मिट्टी उपजाऊ बनी रहती थी तो कम मात्रा में रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती थी या बिल्कुल भी रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती थी। लेकिन पशुपालन के कम होने से किसान पूरी तरह से फसल उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर हो गए हैं। रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करने के लिए पशुपालन को प्रोत्साहित करने की जरूरत है। फसल उत्पादन के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरकों के अलावा फ़सल अवशेष का खेत में सड़ाना, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश, हरी खाद, जैव उर्वरक एवं जैविक खादें विकल्प हैं जिनका प्रयोग कर फ़सल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है लेकिन इन विकल्पों की सीमित उपलब्धता होने से किसान रासायनिक उर्वरकों का ही प्रयोग करते हैं। फसल अवशेष में औसतन 40 से 50 प्रतिशत कार्बन, 0.6 से 1 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.45 से 2 प्रतिशतफॉस्फोरस, 14 से 23 प्रतिशत पोटाश और आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व पाए जाते हैं। जो फसल अवशेष जलाने या खेत के बाहर खपाने से नष्ट हो जाते हैं। किसानों को वित्तीय एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराकर फसल अवशेष को खेत में ही सड़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, जिससे फसल अवशेष में मौजूद पोषक तत्व मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करेंगे, तो रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता होगी। क्योंकि एक टन फ़सल अवशेष खेत में सड़ाने से लगभग 11 किग्रा यूरिया, 10 किग्रा सिंगल सुपर फास्फेट और 25 किग्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश की कम आवश्यकता होगी। दलहनी फसलें वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन को पैधों की जड़ों में स्थिर करने एवं मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने, मिट्टी में जैविक पदार्थ को बढ़ाने, मिट्टी की संरचना में सुधार, मिट्टी की जैव विविधता में वृद्धि करती हैं जो मिट्टी के अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। एक अध्ययन के अनुसार दलहनी फसलें अपनी आवश्यकता का लगभग 12त्न नाइट्रोजन वायुमंडल की नाइट्रोजन स्थिरीकरण से पूरा कर लेती है। दलहनी फसलें लगभग 20 किलोग्राम से लेकर 450 किलोग्राम तक नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर स्थिर करती हैं। इसलिए दलहनी फसलों को फसल चक्र में समावेश करने से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होगी। किसानों को गुणवत्तायुक्त समय से दलहनी फसलों के उन्नतशील बीज उचित मूल्य पर उपलब्ध कराकर एवं दलहनी फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि करके किसानों को फसल चक्र में दलहनी फसलों को समावेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है जिससे रासायनिक उर्वरकों की खपत घटेगी और दालों के उत्पादन में वृद्धि भी होगी, तो देश दालों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ेगा।मिट्टी की उर्वरकता तथा फसल उत्पादकता को कम किए बिना रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को सीमित करने में हरी खाद वाली फसलें एक व्यवहारिक विकल्प हो सकती हैं हरी खाद वाली फसलों की जड़ों में ग्रंथियां होती है जो वायुमंडल की नाइट्रोजन को पौधे की जड़ों में स्थित करती हैं एक अनुमान के अनुसार ढैंचा की फसल को हरी खाद के लिए प्रयोग करने से प्रति हैक्टर लगभग 60 किग्रा नाईट्रोजन की बचत होती है। जो लगभग 130 किग्रा यूरिया के बराबर है, इसके अलावा मिट्टी में जैविक पदार्थ की वृद्धि और मिट्टी के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।

।। श्री गणेशाय नमः ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335

01/2025-26

धन्य कुमार (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

टमाटर के कटाई के बाद उत्पाद

'Post&Harvest Products of Tomato'

टमाटर विश्व भर में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है, जिसका उपयोग ताजे रूप में तो किया ही जाता है, साथ ही इसके अनेक प्रसंस्कृत 'processed' उत्पाद भी तैयार किए जाते हैं। कटाई के बाद प्रसंस्करण न केवल टमाटर के शेल्फ-लाइफ को बढ़ाता है, बल्कि किसानों को अतिरिक्त आय, खाद्य उद्योग को विविध उत्पाद तथा उपभोक्ताओं को सुविधाजनक खाद्य विकल्प प्रदान करता है। नीचे टमाटर से बनने वाले प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पादों तथा उनकी महत्ता का विस्तृत वर्णन किया गया है।

1. टमाटर प्यूरी 'Tomato Puree'

टमाटरों को धोकर, उबालकर और छानकर गाढ़े रूप में तैयार किया गया उत्पाद टमाटर प्यूरी कहलाता है।

महत्व

* सूप, सब्जी, पास्ता, पिज्जा आदि में उपयोग
* लंबे समय तक भंडारण योग्य
* घरेलू और औद्योगिक दोनों स्तरों पर लोकप्रिय

2. टमाटर पेस्ट 'Tomato Paste'

यह प्यूरी से भी अधिक गाढ़ा और सांद्र उत्पाद होता है। पेस्ट को कई घंटों तक गर्म कर पानी निकाला जाता है।

फायदे

* कम जगह में भंडारण
* तीव्र रंग और स्वाद
* होटल, रेस्तरां और प्रोसेसिंग यूनिट में अधिक उपयोग

3. टमाटर सॉस 'Tomato Sauce'

टमाटर, मसाले, चीनी, सिरका आदि को मिलाकर तैयार किया जाने वाला एक लोकप्रिय खाद्य उत्पाद है।

उपयोग

* फास्ट फूड उद्योग (समोसा, फ्रेंच फ्राइज, सैंडविच, पिज्जा, बर्गर)
* घरों और स्कूलों में आम उपयोग

4. कैचअप 'Tomato Ketchup'

टमाटर सॉस का अधिक परिष्कृत और गाढ़ा रूप है। इसमें चीनी, नमक, सिरका तथा मसालों का सही संतुलन होता है।

महत्व

* विश्व स्तर पर सबसे ज्यादा मांग वाला टमाटर उत्पाद
* बच्चों में अत्यधिक लोकप्रिय
* शेल्फ लाइफ अधिक

5. टोमेटो जूस 'Tomato Juice'

टमाटर को छानकर तरल रूप में तैयार किया गया पेय।

फायदे

* विटामिन और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर
* स्वास्थ्यवर्धक पेय
* डायट फूड के रूप में लोकप्रिय

6. सूखे टमाटर

टमाटर को धूप या मशीन (डिहाइड्रेटर) में सुखाकर तैयार किए जाते हैं।

उपयोग

* पिज्जा और पास्ता में
पुरानी रेसिपीज और पारंपरिक व्यंजन
* लंबे समय तक सुरक्षित

7. टोमैटो पाउडर

सुखाए गए टमाटरों को पीसकर तैयार किया जाता है।

फायदे

* हल्का और लंबे समय तक टिकाऊ
* रेडी-टू-ईट फूड, मसाला मिश्रण और सूप पाउडर में उपयोग
* परिवहन और भंडारण में आसान

8. टमाटर चटनी

घरेलू और औद्योगिक दोनों स्तरों पर बनने वाला उत्पाद। इसमें नमक, मसाले, जैगिरी/चीनी आदि मिलाए जाते हैं।

उपयोग

* दक्षिण भारतीय व्यंजनों का प्रमुख हिस्सा
* भोजन के साथ परोसी जाने वाली

9. टमाटर अचार

टमाटर को मसालों, तेल और नमक के साथ मिलाकर अचार रूप में तैयार किया जाता है।

महत्व

* लंबे समय तक उपयोग योग्य
* दक्षिण और मध्य भारत में विशेष रूप से लोकप्रिय

10. कैन्ड टमाटर

पूरे या कटे हुए टमाटरों को टिन केन में भरकर संरक्षित किया जाता है।

उपयोग

* बड़े रेस्तरां और फूड प्रोसेसिंग यूनिट
* ऑफ-सीजन में उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं

01/2025-26

बटन मशरूम कैसे उगाएं

डॉ. रिंकी कुमारी चौहान विषय वस्तु विशेषज्ञ (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केंद्र, हैदरगढ़ (बाराबंकी) 225124, (उ.प्र.)

परिचय

भारत जैसे देश में जहॉ की अधिकांश आबादी शाकाहारी है मशरूम का महत्व पोषण की दृष्टी से बहुत अधिक हो गया है । यहां मशरूम का प्रयोग सब्जी के रूप में होने लगा है। भारत में मशरूम उत्पादकों के दो समुह हैं एक जो केवल मौसम में ही इसकी खेती करते हैं तथा दूसरे जो पुरे साल मशरूम उगाते हैं। मौसमी खेती मुख्यतः हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कशमीर, उत्तर प्रदेश की पहाडीयों, उत्तर-पश्चिमी पहाडी क्षेत्रों , तमिलनाडु के पहाडी भागों में 2-3 फसलों के लिए तथा उत्तर पश्चिमी समतल क्षेत्रो में केवल जाडे की फसल के रूप में की जाती है। पूरे साल मशरूम की खेती सारे देश में की जाती है। व्यवसायिक रूप से चार प्रकार के मशरूम उगाए जाते है। बटन (Button) मशरूम, ढींगरी (Oyster) मशरूम तथा धानपुआल या पैडीस्ट्रा (Paddy straw) मशरूम, दूधिया (मिल्की) मशरूम। इनमे बटन मशरूम सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। चारो प्रकार के मशरूम को किसी भी हवादार कमरे या सेड में आसानी से उगाया जा सकता है।

भारत में बटन मशरूम उगाने का सही समय

भारत में बटन मशरूम उगाने का उपयुक्त समय अक्तुबर से मार्च के महीने हैं। इन छः महीनो में दो फसलें उगाई जाती हैं। बटन खुम्बी की फसल के लिए आरम्भ में 22 से 26 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की आवशयकता होती है इस तापमान पर कवक जाल बहुत तेजी से बढता है। बाद मे इसके लिए 14 से 18 डिग्री तापमान ही उपयुक्त रहता है। इससें कम तापमान पर फलनकाय की बढवार बहुत धीमी हो जाती है। 18 डिग्री से अधिक तापमान भी खुम्बी के लिए हानिकारक होता है।

बटन मशरूम उगाने के लिए कम्पोस्ट बनाना तथा उसे पेटीयों या थैलियों में भरना।

बटन मशरूम की खेती के लिए विशेष विधि से तैयार की गई कम्पोस्ट खाद की आवश्यकता होती है। कम्पोस्ट साधारण विधि (Simple method) अथवा निर्जीविकरण विधि (Pasturization method) से बनाया जाता है। कम्पोस्ट तैयार होने के बाद लकडी की पेटी या रैक में इसकी 6 से 8 इंच मोटी परत या तह बिछा देते हैं। यदि बटन खुम्बी की खेती पोलिथिन की थैलियों में करनी हो तो कम्पोस्ट खाद को बीजाई या स्पानिंग के बाद ही थैलियों मे भरें। थैलियों में 2 मिलीमीटर व्यास के छेद थोडी-थोडी दूरी पर कर दें।

बटन मशरूम बीजाई या स्पानिंग

मशरूम के बीज को स्पान कहतें हैं। बीज की गुणवत्ता का उत्पादन पर बहुत असर होता है अतः

खुम्बी का बीज या स्पान अच्छी भरोसेमदं दुकान से ही लेना चाहिए। बीज एक माह से अधिक पुराना भी नही होना चाहिए। बीज की मात्रा कम्पोस्ट खाद के वजन के 2-2.5 प्रतिशत के बराबर लें।

बीज को पेटी में भरी कम्पोस्ट पर बिखेर दें तथा उस पर 2 से 3 सेमी मोटी कम्पोस्ट की एक परत और चढा दे। अथवा पहले पेटी में कम्पोस्ट की 3 इचं मोटी परत लगाऐं और उसपर बीज की आधी मात्रा बिखेर दे। तत्पश्चात उस पर फिर से 3 इंच मोटी कम्पोस्ट की परत बिछा दें और बाकी बचे बीज उस पर बिखेर दें । इस पर कम्पोस्ट की एक पतली परत और बिछा दें।

बीजाई के बाद मशरूम की देखभाल

कवक जाल का बनना

बीजाई के पश्चाज पेटी अथवा थैलियों को खुम्बी कक्ष में रख दें तथा इन पर पुराने अखबार बिछाकर पानी से भिगो दें। कमरे मे पर्याप्त नमी बनाने के लिए कमरे के फर्स्ट व दीवारों पर भी पानी छिडकें। इस समय कमरे का तापमान 22 से 26 डिग्री सेंन्टीग्रेड तथा नमी 80 से 85 प्रतिशत के बीच होनी चाहिए। अगले 15 से 20 दिनों में खुम्बी का कवक जाल पूरी तरह से कम्पोस्ट में फैल जाएगा। इन दिनों खुम्बी को ताजा हवा नही चाहिए अतः कमरे को बंद ही रखें।

परत चढाना या केसिंग करना

गोबर की सडी हुई खाद एवं बाग की मिट्टी की बराबर मात्राा को छानकर अच्छी तरह से मिला लें। इस मिश्रण का 5 प्रतिशत फार्मलीन या भाप से निर्जीवीकरण कर लें। इस मिट्टी को परत चढाने के लिए प्रयोग करें। कम्पोस्ट में जब कवक जाल पूरी तरह फैल जाए तो इसके उपर उपरोक्त विधि से तैयार की गई मिट्टी की 4-5 सेमी मोटी परत विछा दें। परत चढानें के 3 दिन बाद से कमरे का तापमान 14-18 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच व आद्रता 80-85 प्रतिशत के बीच स्थिर रखें। यह समय फलनकाय बनने का होता है । इस समय बढवार के लिए ताजी हवा और प्रकाश की जरूरत होती है। इसलिए अब कमरे की खिडकीयां व रोशनदान खोलकर रखें।

खुम्बी फलनकाय का बनना तथा उनकी तुडवाई

खुम्बी की बीजाई के 35-40 दिन बाद या मिट्टी चढानें के 15-20 दिन बाद कम्पोस्ट के उपर मशरूम के सफेद फलनकाय दिखाई देने लगते हैं जो अगले चार पॉच दिनों में बटन के आकार में बढ जाते हैं। जब खुम्बी की टोपी कसी हुई अवस्था में हो तथा उसके नीचे की झिल्ली साबुत हो तब खुम्बी को हाथ की उंगलियों से हल्का दबाकर और घुमाकर तोड लेते हैं। कम्पोस्ट की सतह से खुम्बी को चाकू से काटकर भी निकाला जा सकता है। सामान्यतः एक फसलचक्र (6 से 8 सप्ताह) में खुम्बी के 5-6 फ्लस आते हैं।

मशरूम की पैदावार तथा भंडारण

सामान्यत: 8 से 9 किलोग्राम खुम्बी प्रतिवर्ग मीटर में पैदा होती है। 100 किलोग्राम कम्पोस्ट से लगभग 12 किलोग्राम खुम्बी आसानी से प्राप्त होती है। खुम्बी तोडने के बाद साफ पानी में अच्छी तरह से धोयें तथा बाद मे 25 से 30 मिनट के लिए उनको ठंडे पानी में भीगो दें। स्थानीय बिक्री के लिए पोलिथिन की थैलियों का प्रयोग किया जाता है। बटन खुम्बी का खुदरा मुल्य 100-125 रूपये प्रति किलोग्राम रहता है। शादी-ब्याह के मौसम में कुछ समय के लिए तो यह 150 रूपये किलो तक भी आसानी से बिक जाती है।

मशरूम की खेती में सावधानी

मशरूम का उत्पादन अच्छी कम्पोस्ट खाद तथा अच्छे बीज पर निर्भर करता है अतः कम्पोस्ट बनाते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए । कुछ भुल चूक होने पर अथवा कीडा या बीमारी होने पर खुम्बी की फसल पूर्णतया या आंशिक रूप से खराब हो सकती है।

यश कुमार गुप्ता, डॉ. अनिल कुमार सिंह
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, नवाबगंज, कानपुर नगर (उ.प्र.)

खरीफ मौसम में उत्तर भारत में जैविक धान की खेती: तकनीक, लाभ और प्रबंधन

1.प्रस्तावना : भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ धान (Oryza sativa L.) प्रमुख खाद्यान्न फसल के रूप में किसानों की आजीविका की रीढ़ मानी जाती है। विशेष रूप से उत्तर भारत के राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, उत्तराखंड और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में खरीफ मौसम (जून से अक्टूबर) के दौरान धान की खेती व्यापक रूप से की जाती है।जैविक धान उत्पादन पर यह लेख केंद्रित है। इसमें भूमि तैयारी, बीज, पोषण, कीट एवं रोग नियंत्रण,लाभ,चुनौतियाँ, सरकार योजनाएं और आर्थिक पहलुओं की समग्र विवेचना की गई है।

2. खरीफ मौसमी जैविक धान का महत्व: ज्जैविक धान उत्पादन में गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, अजोटोबेक्टर, पीएसबी (फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) आदि का प्रयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की संरचना सुधरती है ?इससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 20-25% तक कमी देखी गई है। जैविक धान की कीमत बाजार में सामान्य धान से 20-40% अधिक मिलती है।भारत में वर्ष 2023-24 में लगभग 3.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक धान की खेती की गई (APEDA डेटा, 2024)।निर्यात के स्तर पर, जैविक बासमती धान से भारत को ?4500 करोड़ से अधिक की विदेशी आय प्राप्त हुई।रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटने से उत्पादन लागत 15-20% तक कम होती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता और सूक्ष्मजीव क्रियाशीलता बढ़ने से दीर्घकालिक उत्पादकता स्थिर रहती है। जैविक धान की खेती से स्वास्थ्य जोखिम और जल प्रदूषण में कमी आती है।

3. उत्तर भारत में धान की खेती की परिस्थितियां: उत्तर भारत में धान की खेती मुख्य रूप से खरीफ मौसम (जून से नवंबर) के दौरान की जाती है। इस अवधि में तापमान और वर्षा की परिस्थितियाँ धान की वृद्धि के लिए अत्यंत अनुकूल रहती हैं। अंकुरण के लिए 25 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है, जबकि पौधे की वृद्धि और विकास के लिए 20 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान आदर्श माना जाता है। धान एक अधिक जल की आवश्यकता वाली फसल है, इसलिए इसके लिए 100 से 150 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा आवश्यक होती है। ऐसी जलवायु धान की सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार की खेती के लिए अनुकूल मानी जाती है। मिट्टी के प्रकार की बात करें तो दोमट, चिकनी दोमट या बलुई दोमट मिट्टी, जिनमें जल धारण करने की क्षमता अधिक हो, धान की खेती के लिए सर्वोत्तम होती हैं। इसके साथ ही मिट्टी का श्च्च मान 5.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए, ताकि पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में मिल सके। इन उपयुक्त परिस्थितियों के कारण उत्तर भारत के राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब और उत्तराखंड धान उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.प्रमुख जैविक धान की किस्में (राज्यवार)

उत्तर प्रदेश – NDR-359, पूसा बासमती-1, नरेंद्र उसर धान -3,पुसा बासमती-1509, CSR-30,पंतधान-4

बिहार–सीता, राजेंद्र कस्तूरी धन, पूसा सुगंधा-5,सहभागी धान,वीरेंद्र धान-82,आर-पी-बायो-226,सरजू-52,

पंजाब –पूसा बासमती-1121,PR-118, PR-121

हरियाणा– PR-126, CSR-36, HKR-47

उत्तराखंड– नरेंद्र धान-97, पंत धान-10

5. भूमि तैयारी एवं बीज चयन: धान की सफल खेती के लिए खेत की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सबसे पहले एक बार गहरी जुताई करनी चाहिए, जिससे पिछली फसल के अवशेष नष्ट हो जाएँ और मिट्टी की ऊपरी सतह ढीली हो सके। इसके बाद दो से तीन हल्की जुताइयाँ करके मिट्टी को भुरभुरी और समान बना लेना चाहिए, ताकि रोपाई के समय पौधों की जड़ें आसानी से फैल सकें। जुताई के पश्चात खेत में पानी भरकर पडलिंग करना आवश्यक होता है, जिससे खरपतवारों का नियंत्रण होता है और मिट्टी में नमी का संरक्षण बना रहता है। इसके अतिरिक्त, धान की रोपाई से लगभग 45 दिन पहले हरित खाद के रूप में ढैंचा, सनहेम्प या मूँग जैसी फसलों की बुवाई करके उन्हें मिट्टी में पलट देना चाहिए। इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

बीज उपचार एवं नर्सरी प्रबंधन: बीज उपचार के लिए ट्राइकोडर्मा विराइड का प्रयोग 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एज़ोस्पिरिलम और फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया कल्चर से बीजों का उपचार करने पर अंकुरण की क्षमता में वृद्धि होती है तथा पौधों की जड़ वृद्धि भी बेहतर होती है। नर्सरी की तैयारी के लिए लगभग 10×1 मीटर आकार के बेड तैयार किए जाने चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए लगभग 25 से 30 किलोग्राम बीज पर्याप्त मात्रा होती है। जैविक नर्सरी तैयार करते समय गोमूत्र, नीमखली और जैविक कम्पोस्ट का उपयोग करना अत्यंत लाभकारी होता है, क्योंकि ये तत्व पौधों को आवश्यक पोषण प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी की उर्वरता को भी बनाए रखते हैं। इस प्रकार के जैविक उपायों से स्वस्थ एवं सशक्त पौध तैयार किए जा सकते हैं जो आगे चलकर अधिक उत्पादन देने में सक्षम होते हैं।

6. प्रत्यारोपण: लगभग 20 से 25 दिन की आयु में पौधें प्रत्यारोपण के लिए उपयुक्त हो जाती हैं। प्रत्यारोपण के समय प्रत्येक स्थान पर 2 से 3 स्वस्थ पौधे लगाने चाहिए ताकि पौधों का विकास संतुलित रूप से हो सके। पौधों की कतारों के बीच लगभग 20 से 25 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे के बीच 15 से 20 सेंटीमीटर की दूरी बनाए रखना उचित रहता है। इससे पौधों को पर्याप्त पोषण, धूप और हवा मिलती है, जिससे उनकी वृद्धि और उपज बेहतर होती है।

7. जैविक पोषण प्रबंधन: धान की जैविक खेती में पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक और देशज स्रोतों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। भूमि की तैयारी के समय प्रति हेक्टेयर 10 से 15 टन गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाना लाभकारी रहता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता और संरचना में सुधार होता है। इसके अतिरिक्त, रोपाई से पहले 2 से 3 टन प्रति हेक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग करने से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में प्राप्त होते हैं। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए ढैंचा या सनहेम्प जैसी हरी खाद की फसल बोकर लगभग 45 दिन बाद उसे मिट्टी में पलट देना चाहिए, जिससे जैविक नाइट्रोजन का अच्छा स्रोत प्राप्त होता है। फसल की वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए नीम की पत्ती का घोल या गोमूत्र अर्क का 3 से 4 बार छिड़काव करना भी अत्यंत लाभदायक होता है। इन सभी उपायों के समन्वित प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता, फसल की वृद्धि तथा उत्पादन दोनों में सुधार देखा जाता है।

जैव उर्वरक: जैव उर्वरक प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली सूक्ष्म जीवों की ऐसी उपयोगी प्रजातियाँ हैं जो पौधों की वृद्धि और मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राइज़ोबियम एक प्रभावी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला जीवाणु है, जो दलहनी फसलों की जड़ों में गाँठें बनाकर वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर रूप में परिवर्तित करता है, जिससे पौधों को आवश्यक नाइट्रोजन की आपूर्ति होती है। एजोस्पिरिलम) भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होता है और साथ ही पौधों की जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है। फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु मृदा में उपस्थित अनुपलब्ध फॉस्फोरस को घुलनशील रूप में बदलकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं, जिससे उनकी वृद्धि और उत्पादन में वृद्धि होती है। वहीं, एज़ोटोबैक्टर न केवल नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है, बल्कि यह पौधों की जड़ वृद्धि में सुधार लाता है और रोगों के प्रति पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। इस प्रकार, जैव उर्वरकों का प्रयोग मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटाने तथा सतत कृषि विकास को प्रोत्साहित करने का एक पर्यावरण-अनुकूल उपाय है।

8. कीट एवं रोग प्रबंधन:जैविक कीटनाशकों के उपयोग से फसलों को हानिकारक कीटों से सुरक्षित रखते हुए पर्यावरण को भी स्वच्छ रखा जा सकता है। इसके लिए नीम तेल 5त्न या नीम अर्क 3त्न का छिड़काव प्रभावी रहता है। साथ ही, ट्राइकोग्राम्मा चिलोनिस कार्ड (प्रति एकड़ 50 कार्ड) का उपयोग कीटों के अंड चरण को नष्ट करने में सहायक होता है। बैक्टीरिया आधारित क्च्ह्ल (बैसिलस थुरिंजिएंसिस)का स्प्रे भी एक उत्तम जैविक उपाय है। इसके अतिरिक्त, पानी में गोमूत्र, छाछ और लहसुन अर्क मिलाकर छिड़काव करने से फसलों पर प्राकृतिक रूप से कीट नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख रोगों का नियंत्रण —धान की फसल में कई प्रमुख रोग और कीट दिखाई देते हैं। झुलसा रोग में पत्तियों पर छोटे-छोटे भूरे धब्बे बन जाते हैं, जिससे पत्तियाँ सूखने लगती हैं। इसके नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा हार्जियानम या नीम पत्ती का घोल छिड़कना लाभकारी होता है। शीथ ब्लाइट रोग में तनों पर सड़न दिखाई देती है, जिससे पौधा कमजोर होकर गिरने लगता है। इसके नियंत्रण हेतु गोमूत्र में तुलसी अर्क मिलाकर छिड़काव करना प्रभावी उपाय है। तना छेदक कीट के प्रकोप में पौधा बीच से मुड़ जाता है या सूख जाता है। इसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप या ट्राइकोग्रामा कार्ड का उपयोग करना उचित होता है।

9. जल प्रबंधन: जैविक खेती में "ऑल्टरनेट वेटिंग एंड ड्राइंग" तकनीक अपनाना अत्यंत लाभदायक होता है। इस पद्धति में खेत में लगातार जलभराव नहीं किया जाता, जिससे मिट्टी में वायु संचार बना रहता है और मिथेन गैस का उत्सर्जन कम होता है। खेत में हल्की नमी बनाए रखना पर्याप्त होता है, ताकि फसल को आवश्यक जल मिलता रहे, लेकिन जलजमाव न होने पाए। यह तरीका न केवल जल की बचत करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और फसल की बेहतर वृद्धि में भी सहायक होता है।

10. खरपतवार प्रबंधन: रोपाई के लगभग 20 और 40 दिन बाद हाथ से निराई-गुड़ाई करना आवश्यक होता है, जिससे खेत में उगने वाले खरपतवारों पर नियंत्रण रखा जा सके। साथ ही, कोनो वीडर का उपयोग करने से न केवल खरपतवार नियंत्रण में मदद मिलती है, बल्कि मिट्टी की जड़ वायुसंचार क्षमता भी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, खेत में धान के भूसे जैसे जैविक मल्च का उपयोग करने से खरपतवारों की वृद्धि रुकती है और नमी का संरक्षण भी बेहतर होता है।

आलू के रोग और उनके प्रबंधन

प्रशांत श्रीवास्तव, डॉ. अनिल कुमार सचान
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

परिचय: संपूर्ण विश्व में आलू की फसल सबसे महत्पूर्ण सब्जी है। यह विश्व की शाकाहारी आबादी की सब्जी संबंधी जरूरतों को सबसे ज्यादा पूरा करता है। यह एक सस्ती और आर्थिक फसल है। आलू एक अर्द्धसडनशील सब्जी वाली फसल है। इसकी खेती रबी मौसम या शरदऋतु में की जाती है। इसकी उपज क्षमता समय के अनुसार सभी फसलों से ज्यादा है इसलिए इसको अकाल नाशक फसल भी कहते हैं। इसका प्रत्येक कंद पोषक तत्वों का भण्डार है, बढ़ती आबादी के कुपोषण एवं भुखमरी से बचाने में एक मात्र यही फसल मददगार है। आलू में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्टार्च, विटामिन सी के अलावा अमीनो अम्ल जैसे ट्रिप्टोफेन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन आदि काफी मात्रा में पाये जाते हैं। भारत में आलू लगभग सभी राज्यों में उगाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, कर्नाटक, आसाम और मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा आलू उगाए जाते हैं। मूल रूप से यह यह फसल दक्षिणी अमरीका की है और यह फसल सब्जी के लिए और चिपस बनाने के लिए प्रयोग की जाती है। यह फसल स्टार्च और शराब बनाने के लिए भी प्रयोग की जाती है ।

जलवायु: आलू एक समशीतोष्ण फसल है जो ठंडे और समशीतोष्ण जलवायु में सबसे अच्छी उगती है, इसलिए इसे आमतौर पर सर्दी और ठंडे मौसम में उगाया जाता है। आलू की रोपाई के लिए उचित तापमान (20-25) डिग्री सेंटीग्रेट होता है। इसमें कम तापमान होने पर इसके अंकुरण में विलम्ब हो जाता है ओर उपज भी कम मिलती है। जहाँ पर दिन के समय तापमान 35 डिग्री सेंटीग्रेट से अधिक न हो, तथा रात का तापमान 21 डिग्री सेंटीग्रेट से अधिक न हो, कंद बनने के समय (18-20) तापमान सबसे अच्छा होता है।

मिट्टी: आलू को लवणीय और क्षारीय मिट्टी को छोड़कर लगभग किसी भी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। प्राकृतिक रूप से ढीली मिट्टी, जो कंदों के बढ़ने में कम से कम प्रतिरोध करती है, को प्राथमिकता दी जाती है। अच्छी जल निकासी और वायु संचार वाली, कार्बनिक पदार्थों से भरपूर दोमट और बलुई दोमट मिट्टी आलू की फसल के लिए सबसे उपयुक्त होती है। आलू के लिए आदर्श पीएच मान 5.5 होना चाहिए। लेकिन नम्री बनाए रखने में सक्षम होनी चाहिए। यह कीटों और रोगों जैसे जीवाणु विल्ट, सूत्रकृमि और झुलसा से भी मुक्त होनी चाहिए, क्योंकि ये आलू की फसल के सबसे विनाशकारी मिट्टी जनित कीट और रोग हैं, जिनसे बहुत अधिक नुकसान होता है।

आलू में लगने वाले विभिन्न रोग

अगेती झुलसा

परिचय: आलू का अगेती झुलसा रोग (अल्टरनेरिया सोलानी) अधिकांश आलू उत्पादक क्षेत्रों में प्रतिवर्ष पाया जाता है। यह रोग पत्तियों, तनों और कंदों को प्रभावित करता है और उपज, कंद के आकार, कंदों की भंडारण क्षमता, ताज़ा बाज़ार और प्रसंस्करण योग्य कंदों की गुणवत्ता, और फसल की बाज़ार क्षमता को कम कर सकता है। पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में पत्तियों का संक्रमण इस रोग का सबसे महत्वपूर्ण चरण है, जबकि देश के पश्चिमी भाग में, कंद संक्रमण अधिक हानिकारक हो सकता है। यह रोग टमाटर पर भी गंभीर हो सकता है और अन्य सोलेनेसी फसलों और खरपतवारों पर भी हो सकता है।

लक्षण: यह एक मृदाजनित रोग है तथा अल्टरनेरिया सोलानी नामक फफूंद से होता है। फसल पर अगेती झुलसा रोग 3-4 सप्ताह बाद प्रकट होने लगता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की निचली पत्तियों पर पीले भूरे रंग के छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं। कुछ समय बाद ये धब्बे काले-भूरे रंग के तथा गोलाकार व अण्डाकार हो जाते हैं। धीरे-धीरे ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं तथा पूरी पत्ती सूखी दिखाई देती है। अधिक प्रकोप

में तनों, शाखाओं व कन्दों पर भी काले रंग के धब्बे बनते हैं। इस रोग की तीव्रता 20-26 डिग्री सेल्सियस तापमान पर अधिक होती है। एक ही पत्ती पर कई घाव आपस में मिलकर या एक साथ बढ़कर एक पिंड भी बना सकते हैं। संक्रमित पौधों के तनों और डंठलों पर लंबे, भूरे से काले रंग के घाव भी विकसित हो सकते हैं। तने पर घाव खेत में प्रारंभिक झुलसा रोग के गंभीर प्रकोप का संकेत हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियाँ अंततः मुरझाकर मर जाती हैं, लेकिन पौधे से जुड़ी रह सकती हैं।

रोग चक्र: फसलों के बीच, अर्ली ब्लाइट फंगस खेत में आलू के अवशेषों पर, मिट्टी में, कंदों पर, और अन्य संवेदनशील सोलेनेसी फसलों और खरपतवारों पर, जिनमें नाइटशेड प्रजातियाँ भी शामिल हैं, शीतकाल तक जीवित रह सकता है। शीतकाल तक जीवित रहने वाले बीजाणु कई प्रकार की पर्यावरणीय परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं। वसंत ऋतु में, कोनिडिया बीजाणु रोग आरंभ करने के लिए प्राथमिक संरोपण का काम करते हैं। संक्रमण तब होता है जब कवक के बीजाणु संवेदनशील पत्तियों के संपर्क में आते हैं और पर्याप्त मुक्त नमी मौजूद होती है। 41एफ़ और 86एफ़ (सर्वोत्तम 68एफ़ है) के बीच के तापमान के साथ बारी-बारी से आने वाली गीली और सूखी अवधि, बीजाणुओं के विकास के लिए अनुकूल होती है। संवेदनशील पौधों की पत्तियों पर उतरने वाले बीजाणु अंकुरित होते हैं और सीधे मेज़बान की बाह्यत्वचा कोशिकाओं में प्रवेश कर सकते हैं या स्टोमाटा या घावों के माध्यम से प्रवेश कर सकते हैं। अर्ली ब्लाइट बीजाणु उत्पादन और घाव निर्माण के कई चक्र एक ही बढ़ते मौसम में होते हैं। शुरुआती मौसम में संक्रमण की दर आम तौर पर कम होती है, लेकिन फूल आने के बाद बढ़ जाती है और मौसम के अंत में कंदों के स्थूलन के दौरान सबसे तेज़ होती है।

रोकथामः रोग दिखाई पड़ते ही ब्लाइटॉक्स-50 या मैंकोजेब में से किसी एक दवा की 600-800 ग्राम मात्रा का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की। दर से छिड़काव करें। छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर दोहराए

पछेती झुलसा: यह रोग फाइटोप्थोरा इन्फेस्टेन्स नामक फफूंद जैसे जीव के कारण होता है। इसका सबसे विनाशकारी ऐतिहासिक उदाहरण 1840 के दशक का आयरलैंड का अकाल है, जिसके कारण लाखों लोगों की मृत्यु हुई और लाखों को देश छोड़ना पड़ा। इस अकाल को ग्रेट आयरिश पोटैटो फेमिन (The Great Irish Potato Famine) के नाम से जाना जाता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के शोध के अनुसार, इस अकाल का कारण फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टेन्स का एक ही क्लोनल वंश, जिसे HERB-1 कहा जाता है

लक्षण : पछेती झुलसा के लक्षण पौधे के सभी भागों पर जैसे-पत्तियों, तना और कंद पर दिखाई पड़ते हैं। रोग का शुरू में प्रकोप। पत्तियों पर जलीय धब्बे के रूप में दिखता है. जो बाद में गहरे भूरे तथा बैंगनी रंग में बदल जाता है। प्रभावित भाग के चारों तरफ हल्के पीले रंग का घेरा बनता है तथा धब्बे : पानी से भीगे हुए लगते हैं। अधिक नमी (80-100 प्रतिशत) तथा बादल छाये रहने। की स्थिति में धब्बे बड़े हो जाते हैं। पत्तियों 7 की निचली सतह फफूंदी की परत जम जाती है। रोग का प्रकोप बढ़ने से पौधे के अन्य भाग जैसे-डंठल तथा तना भी प्रभावितहो जाते हैं। इन पर छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं, जो बाद में काले पड़ जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पूरा पौधा गिर जाता है।

रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियां: इस रोग की फफूंद वृद्धि (16-20 डिग्री सेल्सियस), बीजाणु अंकुरण के लिए (10-20 डिग्री सेल्सियस), बीजाणु उत्पादन। के लिए (18-22 डिग्री सेल्सियस), ग्रसन र तथा रोग (10-22 डिग्री सेल्सियस), विकास । के लिए (18+1 डिग्री सेल्सियस), तापमान तथा 100% आर्द्रता हो, तो रोग के। बीजाणु रात्रि के दौरान पैदा होते हैं। ये प्रकाश से संवेदनशील होते हैं।

नियंत्रण: आलू में पछेती झुलसा को नियंत्रित करने के लिए, किसान रोग प्रतिरोधी किस्में उगा सकते हैं, खेत के आसपास आग जलाकर पाले को कम कर सकते हैं, और मैन्कोज़ेब प्लस कार्बेंडाजिम (35-40 ग्राम प्रति 20 लीटर पानी), एज़ोक्सिस्ट्रोबिन 23% SC (200 मिली प्रति एकड़), या फैमोक्सैडोन 16.6% + सिमोक्सानिल 22.1% SC (200 मिली प्रति एकड़) जैसे फफूंदनाशकों का छिड़काव कर सकते हैं। नियमित अंतराल पर सही फफूंदनाशक का प्रयोग करें और रोग के लक्षण दिखने पर तुरंत उपचार करें।

काला बिंदु: ब्लैक डॉट रोग कोलेटोट्राइकम कोकोड्स (सी. कोकोड्स) नामक पौधे के रोगजनक के कारण होता है। यह आलू के सभी भूमिगत हिस्सों को प्रभावित वित करता। करता है, सी. कोकोड्स आलू के पौधे के तने और पत्ते को भी संक्रमित कर सकता है। इसे एक संक्रमित कंद लगाकर एक क्षेत्र में लाया जा सकता है, और फिर अन्य पौधों में फैलाया जा सकता है, ब्लैक डॉट रोग का एक संकेत काले माइक्रोस्क्लेरोशिया हैं जो रोगजनक द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जड़ों, कंद, तनों और पत्तियों पर पाए जा सकते हैं, इसका उपयोग ब्लैक डॉट के निदान के लिए किया जा सकता है। ब्लैक डॉट रोग के लक्षणों में कंद की सतह पर चांदी के घाव, पत्तियों पर भूरे या काले घाव, पत्ती का मुरझाना और क्लोरोसिस शामिल हैं।

लक्षण: काला धब्बा आलू के तनों और पत्तियों पर लगने वाली सबसे आम बीमारियों में से एक है। ये धब्बे 20 मिमी तक चौड़े हो सकते हैं, कोणीय आकार के और चमड़े जैसे दिखते हैं। अक्सर गोलाकार धँसे हुए गड्ढे बन जाते हैं जो बड़े धँसे हुए धब्बों में बदल सकते हैं। टमाटर की पत्तियों पर धब्बे अंडाकार होते हैं और इनका एक पीला घेरा 6-12 मिमी चौड़ा होता है। तने पर घाव रेखाओं सहित लंबे होते हैं, और फलों पर धब्बे धँसे हुए, छल्लेदार घावों के रूप में दिखाई देते हैं जो गहरे भूरे से काले रंग के होते हैं और अक्सर फलों को सड़ने का कारण बनते हैं। गंभीर संक्रमण से पत्तियाँ मर सकती हैं और ज़मीन के पास संक्रमित होने पर छोटे पौधे नष्ट हो सकते हैं। काला धब्बा पिछले वर्ष के संक्रमित फसल अवशेषों और बीजों पर जीवित रहता है और इसके बीजाणु हवा, बारिश या नए पौधों को संक्रमित करने वाले कीड़ों द्वारा आसानी से फैल जाते हैं।

नियंत्रण: काले धब्बों के प्रबंधन के लिए रोग के भार को कम करना महत्वपूर्ण है, इसलिए प्रत्येक फसल के बाद संक्रमित पौधों और बीजों को हटाकर नष्ट कर देना चाहिए। रोपण के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त बीज का उपयोग किया जाना चाहिए और रोग को दूर करने तथा वायु प्रवाह को बेहतर बनाने के लिए संक्रमित पत्तियों की छंटाई की जानी चाहिए। आदर्श रूप से, फसलों को 2-3 वर्षों के अंतराल पर चक्रित किया जाना चाहिए और जहाँ संभव हो, सहनशील किस्मों को बोया जाना चाहिए।संक्रमण से पहले निवारक उपाय के रूप में कवकनाशी का छिड़काव किया जाना चाहिए। एंट्राकोलो कवकनाशी स्प्रे टमाटर और आलू में काले धब्बों के नियंत्रण के लिए पंजीकृत है। ब्लूशील्डो टमाटर और आलू में काले धब्बों के नियंत्रण के लिए पंजीकृत है।

काला स्कर्फ और स्टेम कैंकर: राइजोक्टोनिया सोलानी एक कवक है जो तने में कैंकर, डैम्पिंग ऑफ, काली पपड़ी, त्वचा में जाल और कंद वृद्धि में विकृति उत्पन्न करता है। काला स्कर्फ मिट्टी और बीज से उत्पन्न हो सकता है और मिट्टी में, या फसल के अवशेषों पर लंबे समय तक जीवित रहता है। भंडारण के दौरान इसका कोई खास प्रसार नहीं होता है। हालाँकि, अत्यधिक प्रभावित बीज कंदों को नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि उभरते हुए अंकुरों के सिरे और बाद में तने पर कवक का आक्रमण हो सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ **प्रखर राय** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

'भूख, कर्ज और बेगारी: किसानों की आत्महत्या का कड़वा सच और पुनर्निर्माण का रास्ता'

प्रस्तावना: अन्नदाता की अनदेखी पीड़ा- भारत में खेतों की मिट्टी ही जीवन की रोटी बनाती है, और उसी मिट्टी से जुड़ा है वह किसान जिसके हाथों की मेहनत से देश का पेट भरता है। लेकिन यह विडंबना ही है कि जिस किसान को अन्नदाता कहा जाता है, वही आज भूख, कर्ज और बेगारी की मार से टूटकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है। हर साल हजारों किसान खेतों में खून-पसीना बहाते हैं, लेकिन जब फसल उम्मीदों पर खरी नहीं उतरती तो वह आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संकटों के भंवर में फंस जाते हैं। यह समस्या अब केवल आंकड़ों तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि किसान परिवारों की टूटती दुनिया का कड़वा सच बन गई है।

किसानों की आत्महत्या: बढ़ती संख्या, घटती उम्मीदें

भारत में किसान की आत्महत्या सिर्फ एक समाचार शीर्षक नहीं - यह हर दिन घटने वाला वो दर्दनाक सच है जो देश की खाद्य सुरक्षा की कीमत पर लिखा जा रहा है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़े बताते हैं कि हर साल लगभग 10,000 से 12,000 किसान अपनी जान दे देते हैं। ये संख्या सिर्फ एक आंकड़ा नहीं, ये वो परिवार हैं जो हमेशा के लिए टूट जाते हैं, वो सपने हैं जो अधूरे रह जाते हैं, और वो उम्मीदें हैं जो समय से पहले ही दम तोड़ देती हैं। इन आत्महत्याओं के पीछे के कारण बहुत जटिल हैं : असंभव कर्ज़, फसल का खराब हो जाना, बाज़ार में सही दाम न मिलना, स्वास्थ्य खर्च, और सामाजिक दबाव। एक किसान जब अपनी फसल के साथ अपने सपनों को बोता है, तो वह सिर्फ अनाज नहीं उगाता, बल्कि घर की रोटी, बच्चों की पढ़ाई, बेटी की शादी और अपने बुजुर्गों की दवाई का भरोसा लगाता है। लेकिन जब ये उम्मीदें टूटती हैं, तो उसका मन भी टूट जाता है। सबसे पीड़ादायक बात यह है कि यह संकट अब सिर्फ एक क्षेत्र या फसल तक सीमित नहीं रहा। चाहे महाराष्ट्र का विदर्भ हो, पंजाब का मलवा, या राजस्थान और बुंदेलखंड जैसे सूखा-प्रभावित क्षेत्र–किसान आत्महत्या की ये त्रासदी पूरे देश में फैल चुकी है। और हर जगह कहानी वही है–प्रशासनिक वादे और योजनाओं के बीच किसान अकेला खड़ा है, ठगा हुआ, हारा हुआ।अगर यह स्थिति नहीं बदली, तो यह सिर्फ एक किसान का अंत नहीं होगा, यह राष्ट्र की आत्मा का अवसान होगा। इसलिए जरूरी है कि हम अब सिर्फ आंकड़ों की बात न करें, बल्कि किसानों की स्थिति और मानसिकता को समझें , क्योंकि हर आत्महत्या के पीछे एक सवाल खड़ा होता है: "क्या इनकी जान इतनी सस्ती है?"

भूख और गरीबी: जब किसान खुद भूखे रह जाते हैं

भारत का किसान अपनी मेहनत से देश की थाली भरता है, लेकिन उसका अपना घर अक्सर खाली बर्तनों से गूंजता है। यह एक दर्दनाक सच्चाई है कि देश का अन्नदाता अपनी ही उगाई फसल को खरीदने की क्षमता नहीं रखता। महंगे इनपुट, मौसम की मार और बाज़ार में कम दाम , इन सबका दबाव किसान की थाली पर पड़ता है। जब तक फसलों को लाभकारी मूल्य नहीं मिलता, तब तक किसान अपनी आजीविका ही बचाने में लगा रहता है , पोषण की बात तो दूर की है। कृषि आधारित राज्यों में लाखों परिवार ऐसे हैं जहाँ रोटी, दाल और सब्जी का संतुलन बना पाना भी मुश्किल है। किसान जब अपनी उपज का अधिकतर हिस्सा कर्ज चुकाने, दवाई, मजदूरी और अन्य खर्चों के लिए बेच देता है, तब उसके पास खाने के लिए सिर्फ बचा-खुचा ही रहता है। कई किसान परिवार एक समय के भोजन को दो में बाँटकर और पेट भर पानी पीकर गुजारा करते हैं। ये लोग किसी सरकारी योजना की फाइल में नंबर बनकर रह जाते हैं, लेकिन धरातल पर उनका भूखा होना उनकी छुपी पीड़ा है।यह स्थिति सिर्फ पेट भरने की समस्या नहीं है, बल्कि सम्मान की भी लड़ाई है। किसान जब दूसरों को भोजन देता है, लेकिन खुद भूख और कुपोषण से जूझता है , तो यह हमारे समाज की सोच और नीति, दोनों पर सवाल उठाता है। किसान की भूख की बात तब तक नहीं सुनी जाती, जब तक वह आवाज़ उठाकर प्रशासन को जगाए , या उसकी चुप्पी एक दिन अखबार की सुर्खियों में 'एक और किसान आत्महत्या' के रूप में न बदल जाए।

कर्ज का जाल: खेती से कर्जदार तक का सफर

किसान की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि मेहनत उसके हाथों में है, लेकिन फसल और बाजार उसके हाथ में नहीं। यही वजह है कि खेती के खर्च पूरे करने के लिए उसे अक्सर कर्ज लेना पड़ता है - कभी बैंक से, कभी साहूकार से। लेकिन जब फसल चौपट होती है या दाम उम्मीद से कम मिलते हैं, तब वह कर्ज धीरे-धीरे उसकी जिंदगी का बोझ बन जाता है। चंद महीनों का उधार वर्षों तक की बेड़ियों में बदल जाता है।

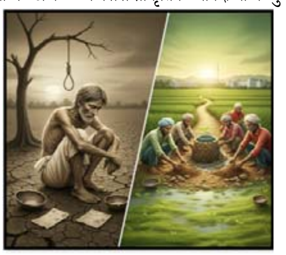

यह कर्ज सिर्फ एक आंकड़ा नहीं - यह किसान के माथे पर चिंता की गहरी लकीर बन जाता है। डर, शर्म और लाचारी के बीच कई किसान इस कर्ज से उभर नहीं पाते और अंततः आत्महत्या जैसे कदम तक पहुँच जाते हैं। कर्ज का यह चक्र बताता है कि समस्या सिर्फ धन की नहीं, बल्कि व्यवस्था के असंतुलन की भी है।

बेगारी और बेरोजगारी: खेती की मजबूरी, जीवन की त्रासदी-आज की खेती किसान के लिए रोज़गार से ज्यादा बोझ बन चुकी है। जो कभी गर्व का काम था, वह अब ऐसी मजबूरी बन गया है जिसमें कड़ी मेहनत के बाद भी आर्थिक सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है। भारतीय किसान साल भर खेतों में मेहनत करता है, लेकिन फसल कटने के बाद उसे इतनी आमदनी नहीं मिलती कि परिवार का गुज़ारा सहजता से हो सके। परिणामस्वरूप, किसान को दूसरे के खेतों में मजदूरी करनी पड़ती है, वह भी कई बार कम दामों पर , जिसे गांव की भाषा में बेगार भी कहा जाता है।यह स्थिति तब और विचलित कर देती है जब किसान अपनी ही जमीन पर मालिक होते हुए भी पूरे साल में कुछ महीनों तक ही रोजगार पाता है। बाकी समय उसे निर्माण कार्य, ईंट भट्ठों, या शहरों में अस्थायी मजदूरी के भरोसे जीना पड़ता है। यह केवल रोज़गार का सवाल नहीं ,यह बचे हुए आत्मसम्मान की लड़ाई भी है, क्योंकि कल तक जिस जमीन से वह जीता था, आज वही जमीन उसके प्रति बेरहम हो चुकी है। खेती में बढ़ती लागत, बदलते मौसम और बाज़ार की अस्थिरता ने उसके रोजगार की धारणा को पूरी तरह हिला दिया है। उसकी खेती अनिश्चित है, और मेहनत का कोई निश्चित मूल्य नहीं। ऐसी स्थिति में किसान को मजदूरी से मिली थोड़ी-सी रकम से अपना गुजारा चलाना पड़ता है , जबकि उसकी पहचान हमेशा से 'अन्नदाता' होने की रही है। यह बेगारी, यह बेरोजगारी केवल आर्थिक त्रासदी नहीं, बल्कि उसके सम्मान का भी धीरे-धीरे क्षरण है।

मानसिक स्वास्थ्य: किसान का एकाकी संघर्ष-किसान के जीवन में मानसिक तनाव सबसे छिपा हुआ लेकिन सबसे गहरा संकट है। हर सीजन के जोखिम, कर्ज़ चुकाने की चिंता, परिवार की जिम्मेदारियाँ और मौसम की अनिश्चितता - ये सब मिलकर उसके मन पर लगातार दबाव डालते हैं। बाहर से वह मजबूत दिखता है, लेकिन भीतर उसका मन डर, चिंता और असुरक्षा से भरा रहता है। गांवों में मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता कम है, इसलिए किसान अपने दर्द को किसी से साझा नहीं कर पाता। यही अकेलापन धीरे-धीरे उसे तोड़ता है। कई बार यह तनाव इतना बढ़ जाता है कि किसान को लगता है कि उसके पास कोई रास्ता ही नहीं बचा , और वह चरम कदम उठा लेता है।किसान को आर्थिक सहायता जितनी जरूरी है, उतनी ही जरूरी भावनात्मक और सामाजिक सहारा भी है। उसकी मानसिक स्थिति को समझना और उसे संवाद, सलाह और सहयोग देना ही इस अदृश्य संघर्ष को कम कर सकता है।

सरकार और समाज: समाधान की ओर बढ़ते कदम-किसानों की आत्महत्या का संकट केवल एक आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि नीतियों, व्यवस्था और सामाजिक समर्थन की कमी का संयुक्त परिणाम है। सरकार ने पिछले वर्षों में कई महत्वपूर्ण योजनाएँ शुरू की हैं-जैसे फसल बीमा योजना जिससे प्राकृतिक आपदाओं के नुकसान को कुछ हद तक कवर किया जा सके, किसान क्रेडिट कार्ड ताकि किसान साहूकारों पर निर्भर न रहें, और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) जिससे फसलों के न्यूनतम दाम तय हों। इसके अलावा, कई राज्यों में कर्ज माफी और न्यूनतम आय सहायता जैसी योजनाएँ भी शुरू की गई। लेकिन कई बार इनका लाभ ज़मीनी स्तर तक पूरी तरह नहीं पहुँच पाता। या तो जागरूकता की कमी होती है, या प्रक्रिया इतनी जटिल कि किसान उसे पूरा कर ही नहीं पाता। सिर्फ सरकार ही नहीं, समाज की भूमिका भी बेहद महत्वपूर्ण है। गांव के स्तर पर सामुदायिक सहयोग, किसान समूह, कृषि-आधारित स्वयंसेवी संगठन और युवा क्लब-इन सबकी मदद से किसान संकट के समय अकेला नहीं पड़ता। कई गैर सरकारी संगठन (NGOs) किसानों को बाज़ार से जोड़ने, तकनीक सिखाने, जैविक खेती, जल संरक्षण और मानसिक स्वास्थ्य पर सलाह देने का काम कर रहे हैं। इस तरह के सहयोग से किसान का आत्मविश्वास बढ़ता है, और उसकी निर्भरता कम होती है। सबसे जरूरी बात यह है कि किसान को सिर्फ आर्थिक सहायता नहीं चाहिए। उसे सुनने वाला, समझने वाला और साथ खड़ा होने वाला समाज भी चाहिए। जब गांव में किसान संकट को साझा करेगा, तो वह अकेला टूटेगा नहीं। जब नीतियाँ सरल, पारदर्शी और किसानों की ज़रूरत के हिसाब से बनेंगी, तो आत्महत्या के आंकड़े घटेंगे। समाधान तभी स्थायी होगा जब सरकार की योजनाएँ, समाज का समर्थन और किसान की मेहनत - ये तीनों एक ही दिशा में आगे बढ़ें।

पुनर्निर्माण का रास्ता: उम्मीद की नई शुरुआत-किसानों की आत्महत्या जैसे दर्दनाक और जटिल मुद्दे के बीच पुनर्निर्माण वह रोशनी है जो अंधकार में भी रास्ता दिखाती है। जब किसान कर्ज, भूख और लगातार होते नुकसान के दबाव में टूटने लगते हैं, तब समाधान सिर्फ सहानुभूति नहीं बल्कि ठोस बदलावों की आवश्यकता से आता है। पुनर्निर्माण का अर्थ है - ऐसे कदम उठाना जो किसान के जीवन में स्थिरता, सम्मान और सुरक्षा लौटाएं। यह शुरुआत होती है समय पर और ब्याज-नियंत्रित ऋण उपलब्ध कराने से, ताकि किसान कर्ज के जाल में फँसे बिना खेती कर सके। इसके साथ आधुनिक तकनीक, प्रशिक्षण और फसल बीमा जैसी सुविधाएँ किसानों को जोखिम से बचाती हैं और उनके आत्मविश्वास को मजबूत करती हैं। बाज़ार में उचित दाम, न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रभावी क्रियान्वयन और बिचौलिया-प्रणाली को कम करना भी किसान की आय को स्थायी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसके अलावा, ग्रामीण रोजगार, सहकारी खेती, जल-संरक्षण, और मनोवैज्ञानिक सहायता जैसे कदम किसानों को न सिर्फ आर्थिक रूप से, बल्कि सामाजिक और भावनात्मक रूप से भी संभालते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍नीरज पाली पीएचडी स्कॉलर, उद्यानिकी विभाग (सब्जी विज्ञान)

✍डॉ. समीर एब्सन टोपनो सहायक प्रोफेसर, उद्यानिकी विभाग (सब्जी विज्ञान) शुआट्स, नैनी, प्रयागराज-211007 (उ.प्र.)

प्याज की उन्नत खेती: उत्पादन वृद्धि की ओर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्याज़ (Allium cepa L.) भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख मसाला एवं सब्ज़ी फसलों में अग्रणी स्थान रखती है। इसकी मांग पूरे वर्ष बनी रहने के कारण यह किसानों के लिए नकदी फसल का विश्वसनीय विकल्प है। प्याज़ न केवल घरेलू उपभोग बल्कि प्रसंस्करण तथा निर्यात उद्योग का भी महत्वपूर्ण आधार है। भारत विश्व के प्रमुख प्याज़ उत्पादक देशों में शामिल है; अतः वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग कर इसके उत्पादन में सतत बढ़ोतरी की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं।

प्याज़ की सफल खेती के लिए जलवायु का महत्वपूर्ण योगदान है। सामान्यतः ठंडी और शुष्क जलवायु इसके अंकुरण, वृद्धि तथा बल्ब निर्माण के लिए अनुकूल मानी जाती है। 13-24°C तापमान अंकुरण के लिए तथा 25-30°C बल्ब निर्माण के लिए सर्वोत्तम माना जाता है। प्याज़ एक दिन-लंबाई संवेदनशील फसल है, अतः बल्ब निर्माण के लिए उचित प्रकाश अवधि आवश्यक होती है। मृदा की बात करें तो दोमट या हल्की दोमट, अच्छी जलनिकास वाली तथा 6.0-7.0 pH वाली भूमि प्याज़ के लिए आदर्श होती है। भारी चिकनी मिट्टी में जलभराव से सड़न का खतरा बढ़ जाता है, जिससे उत्पादन प्रभावित होता है।

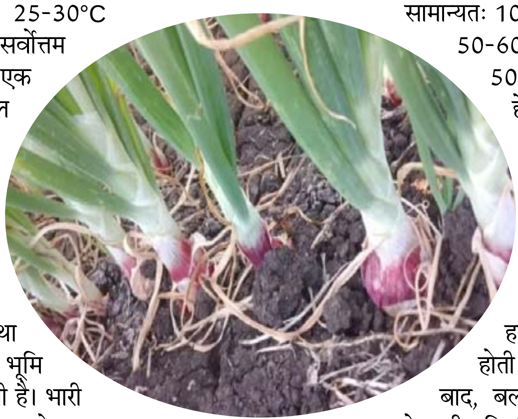

खेती की शुरुआत भूमि की गहरी जुताई से की जाती है जिसके बाद खेत को भुरभुरा कर समतल बनाया जाता है। प्याज़ की पौध तैयार करने के लिए नर्सरी बेड का निर्माण किया जाता है, जहाँ उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग होना चाहिए। बीज उपचार से रोगों और कीटों की प्रारंभिक रोकथाम सुनिश्चित होती है। सामान्यतः 8-10 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त माना जाता है। पौध को 40-45 दिन बाद मुख्य खेत में रोपण किया जाता है। रोपाई के बाद कतार से कतार की दूरी 15-20 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रबंधन से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। सामान्यतः 100-150 किग्रा नाइट्रोजन, 50-60 किग्रा फॉस्फोरस तथा 50-60 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की अनुशंसा की जाती है। सिंचाई का समय और मात्रा प्याज़ उत्पादन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। प्याज़ की जड़ें उथली होने के कारण नियमित हल्की सिंचाई आवश्यक होती है। विशेषकर रोपाई के बाद, बल्ब निर्माण अवस्था तथा सूखे की स्थिति में सिंचाई अत्यंत आवश्यक है। उन्नत सिंचाई तकनीकों जैसे ड्रिप सिस्टम का उपयोग जल संरक्षण के साथ संतुलित वृद्धि को भी बढ़ावा देता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रारंभिक 40-45 दिनों तक निराई-गुड़ाई महत्वपूर्ण होती है। आवश्यकता अनुसार शाकनाशी का भी सीमित उपयोग किया जा सकता है।

प्याज फसल में प्रमुख कीटों में थ्रिप्स, प्याज़ मक्खी तथा बीमारियों में परिपत्र धब्बा, जड़ सड़न और झुलसा प्रमुख हैं। इनका प्रबंधन समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM) सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए, जिसमें संतुलित उर्वरक प्रबंधन, रोगमुक्त बीज, फेरोमोन ट्रैप, समय पर रासायनिक नियंत्रण तथा रोग-प्रतिरोधी किस्मों का चयन शामिल है। ये उपाय उत्पादन लागत कम करने के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण उपज सुनिश्चित करते हैं।

फसल पकने पर पत्तियाँ 50-70% तक झुक जाती हैं, तब खुदाई का उचित समय माना जाता है। कटाई के बाद प्याज़ को अच्छी तरह सुखाना आवश्यक है ताकि भंडारण के दौरान सड़न व अंकुरण की समस्या कम हो। भंडारण के लिए हवादार, छायादार तथा सूखी जगह का चयन किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक भंडारण तकनीकों के प्रयोग से किसान अपनी उपज को लंबे समय तक सुरक्षित रख सकते हैं और बाजार में उचित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

आज के परिवर्तित कृषि परिदृश्य में प्याज़ की खेती एक लाभकारी उद्यम के रूप में उभर रही है। उच्च उपज देने वाली किस्में, ड्रिप सिंचाई, उन्नत पौध उत्पादन एवं समेकित रोग-कीट प्रबंधन जैसी तकनीकें किसानों के लिए आय वृद्धि का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। यदि किसान वैज्ञानिक सिफारिशों के अनुसार खेती करें, तो प्याज़ का उत्पादन, गुणवत्ता और किसानों की आमदनी तीनों में उल्लेखनीय सुधार संभव है। निस्संदेह, प्याज़ की उन्नत खेती भविष्य के कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

गेहूँ की खेती में सफलता के सुनहरे सूत्र: पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन

हरिओम मिश्र, पी.के. मिश्र, अंजलि वर्मा
विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र बस्ती (उ.प्र.)

पूर्वी उत्तर प्रदेश का किसान परंपरागत रूप से गेहूँ की खेती करता रहा है। यह फसल हमारे अनाज भंडार का आधार है और हमारी खाद्य सुरक्षा की रीढ़ भी। किंतु बदलते जलवायु, मिट्टी की गिरती गुणवत्ता और बढ़ती लागत के इस युग में, परंपरागत ढर्रे का पालन करना पर्याप्त नहीं है। आधुनिक विज्ञान पर आधारित उन्नत कृषि तकनीकें अपनाकर ही हम अधिकतम उत्पादन हासिल कर सकते हैं। यह आलेख गेहूँ उत्पादन की संपूर्ण जानकारी प्रदान करता है, जो विशेषकर हमारे क्षेत्र के किसानों के लिए उपयोगी है।

1. सही समय पर बुवाई: सफलता की पहली सीढ़ी: गेहूँ की सफल खेती का पहला रहस्य है समय पर बुवाई। पूर्वी उत्तर प्रदेश, जो कि पूर्वी मैदानी क्षेत्र में आता है, में गेहूँ की बुवाई नवंबर के मध्य में करनी चाहिए।

बुवाई संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी: सिंचित खेतों में समय पर बुवाई के लिए 100 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज की दर उपयुक्त है। बीज को 20-23 सेमी की दूरी पर बोया जाना चाहिए। यदि किसी कारण बुवाई देर हो जाए, तो बीज की दर को बढ़ाकर 125 किग्रा प्रति हेक्टेयर करें और पंक्तियों के बीच की दूरी को घटाकर 15-18 सेमी कर दें। बीज को जमीन में 5-6 सेमी की गहराई पर लगाएं, ताकि अंकुरण अच्छा हो। यह गहराई तभी संभव है जब खेत में पर्याप्त नमी हो।

2. भूमि की तैयारी और मिट्टी की शर्तें: गेहूँ किसी भी तरह की मिट्टी में उगाया जा सकता है, बशर्ते वह अधिक क्षारीय न हो और जलभराव की स्थिति न हो। दोमट या बलुई दोमट मिट्टी गेहूँ के लिए आदर्श है

खेत की तैयारी: एक गहरी गहरी खुदाई (मिट्टी पलट वाले हल से) के बाद दो बार पाटा चलाएं और फिर समतलन करें। यह एक समान बीज को अंकुरित करने वाली क्यारी बनाता है।

3. पोषण प्रबंधन: पैदावार को दोगुना करने का मुख्य कारक

गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिए संतुलित पोषण आवश्यक है।

जैविक खाद: बुवाई से 4-6 सप्ताह पहले 10-15 टन गोबर की खाद या कंपोस्ट को खेत में अच्छी तरह मिला दें। यह मिट्टी की संरचना में सुधार लाता है और जल धारण क्षमता बढ़ाता है।

रासायनिक खाद की अनुशंसा (पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए):

सिंचित खेतों में समय पर बुवाई के लिए:

* **नाइट्रोजन:** 150 किग्रा/हेक्टेयर
* **फॉस्फोरस:** 60 किग्रा/हेक्टेयर
* **पोटाश:** 40 किग्रा/हेक्टेयर

खाद लगाने का सही तरीका: * 1/3 नाइट्रोजन और संपूर्ण फॉस्फोरस व पोटाश बुवाई के समय प्रयोग करें * बाकी 2/3 नाइट्रोजन पहली सिंचाई के समय (बुवाई के 35-40 दिन बाद) डालें। इस समय पौधे में तने की पहली गांठ बन रही होती है।

यदि बुवाई देरी से हुई: * नाइट्रोजन को 120 किग्रा/हेक्टेयर तक कम करें * बाकी खाद की मात्रा वही रहे

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का समाधान:

हल्की मिट्टियों में, विशेषकर जहाँ धान-गेहूँ का चक्र चलता है, वहाँ जिंक, मैंगनीज और सल्फर की कमी आम है:

पोषक तत्व	समाधान	मात्रा	विधि
जिंक की कमी	जिंक सल्फेट	25 किग्रा/हेक्टेयर	बुवाई के समय या पर्ण छिड़काव (0.5% घोल)
मैंगनीज की कमी	मैंगनीज सल्फेट	0.5% घोल	2-3 बार सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव
सल्फर की कमी	जिप्सम	250 किग्रा/हेक्टेयर	भूमि तैयारी के समय

4. सिंचाई प्रबंधन: पानी का समझदारी से प्रयोग: गेहूँ को कुल 450-650 मिलीमीटर पानी की आवश्यकता होती है। यह बुवाई के बाद पहले 100 दिनों में समान रूप से मिलना चाहिए।

छह सिंचाइयों का सही समय

क्रम	सिंचाई का नाम	फसल की अवस्था	बुवाई के बाद दिन
1.	पहली सिंचाई	मुकुट जड़ों का निर्माण	20-25 दिन
2.	दूसरी सिंचाई	कल्ले निकलना	40-45 दिन
3.	तीसरी सिंचाई	गांठ बनना/जोड़ों का विकास	60-65 दिन
4.	चौथी सिंचाई	फूल आना/बाली निकलना	80-85 दिन
5.	पाँचवी सिंचाई	दूध की अवस्था	100-105 दिन
6.	छठी सिंचाई	दाना भरना/आटे जैसी अवस्था	115-120 दिन

प्रत्येक सिंचाई में 6-8 सेमी गहराई तक पानी दें। नोट रखें कि यदि पानी की कमी हो, तो पहली, तीसरी और पाँचवी सिंचाई अवश्य करें, क्योंकि ये फसल की महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं।

भारी चिकनी मिट्टी में: 3-4 सिंचाइयाँ पर्याप्त हैं

बलुई दोमट मिट्टी में: 6-8 सिंचाइयाँ आवश्यक हो सकती हैं

5. खरपतवार प्रबंधन: फसल को स्वस्थ रखने की कला: गेहूँ की फसल में कई खरपतवार उगते हैं। पूर्वी क्षेत्र में मंडूसी या गुल्ली डंडाएक गंभीर समस्या है। इसके अलावा मटर, कचरी, बथुआ, सत्यानाशी, भृंगराज आदि भी पाए जाते हैं।

खरपतवार नियंत्रण के तरीके:

सांस्कृतिक विधि (सबसे सस्ता):

* रोग-मुक्त, शुद्ध बीज का प्रयोग करें * खेत की मेड़ों और सिंचाई नालियों को साफ रखें * गेहूँ को समय पर बोएं * पंक्तियों के बीच 18 सेमी की दूरी रखें, जिससे गेहूँ घनी फसल बने और खरपतवार दब जाएं * खाद को बीज से 2-3 सेमी नीचे डालें

यांत्रिक विधि: * बुवाई के 30-35 दिन बाद खरपतवार निकलना शुरू करें * गेहूँ को पंक्तियों में बोने से निराई आसान हो जाती है

रासायनिक विधि (सबसे प्रभावी):

बुवाई के 30-35 दिन बाद अगर खरपतवार दिख रहे हों:

* **घास जैसे खरपतवारों के लिए: क्लोडिनाफॉप (टॉपिक)** - 60 ग्राम सक्रिय घटक प्रति हेक्टेयर
* **चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए: 2,4-डी (वीड वॉर)** - 500 ग्राम सक्रिय घटक प्रति हेक्टेयर
* **दोनों तरह के खरपतवारों के लिए:** सल्फोसल्फुरॉन + मेट्सल्फुरॉन (टोटल) - 30 ग्राम + 2 ग्राम सक्रिय घटक प्रति हेक्टेयर

6. कटाई, गहाई और भंडारण: अंतिम सफलता

कटाई का सही समय: * खेत पूरी तरह सूख जाना चाहिए * दाना तोड़ने लायक सूख जाना चाहिए * दाने की नमी 14-20% होनी चाहिए * आमतौर पर मार्च के अंत से अप्रैल में कटाई होती है

गहाई और भंडारण: * कटी हुई फसल को धूप में सुखाएं * दानों की नमी 10-12% तक ला दें * जस्तेदार डिब्बों या कंटेनरों में रखें * एल्यूमिनियम फॉस्फाइड (प्रत्येक 3 ग्राम की 1 गोली) या ईडीबी (100 किग्रा अनाज के लिए 3 मिलीलीटर) से धूमन करें

7. नई तकनीकें: उत्पादन को बढ़ाने के तरीके

लेजर भूमि समतलन: * लेजर से भूमि को समतल करने से पानी समान रूप से वितरित होता है * जल उपयोग क्षमता 35-45% तक बढ़ जाती है * पोषक तत्वों का उपयोग 15-25% अधिक होता है * पैदावार 15% से अधिक बढ़ जाती है

शून्य जुताई (जीरो टिलेज): * धान-गेहूँ के चक्र में बहुत उपयोगी * समय और ईंधन दोनों की बचत होती है * मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होता है

मखाने की वैज्ञानिक खेती एवं इसका महत्व

मनीष कुमार सिंह एस.एम.एस.(उद्यान), के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

नरेन्द्र रघुवंशी वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

अमित कुमार सिंह एस.एम.एस.(कृषि प्रसार), के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

मखाना का इतिहास

मखाने की खेती का इतिहास बिहार के मधुवनी जिले से जुडा है जिसकी शुरूआत अठारहवीं शताब्दी में राजा दरभंगा के शासनकाल में हुई थी।

उत्पति एवं प्राचीन उपयोग एवं विश्व में प्रसार

भारत में लगभग 2000 ईसा पूर्व नवपाषाण युग से जुड़ा है, जहॉं इसे पवित्र माना जाता था और धार्मिक अनुष्ठानों व मंदिरों में देवताओं को चढ़ाया जाता था मखाना बिहार के मिथिलांचल क्षेत्र विशेष रूप से मधुबनी जिले से मानी जाती है यहीं पर गरीब किसान समुदाय पारम्परिक तरीके से इसकी खेती करता था। भारत के अलावा, मखाना अब पाकिस्तान, कनाडा, चीन, मलेशिया और बांग्लादेश जैसे देशों में भी फैल चुका है।

सांस्कृतिक महत्व

मिथिलांचल में मखाना का संस्कृति महत्व इतना गहरा है कि विवाह समारोहों में भी इस्तेमाल किया जाता है और देवी देवताओं को मखाने की माला चढ़ाते हैं।

उत्पादन के प्रमुख ऑकडें

भारत दुनिया में मखाना का सबसे बड़ा उत्पादक है और कुल उत्पादन का लगभग 85-90 प्रतिशत हिस्सा बिहार राज्य से आता है, मखाना की खेती बिहार के दरभंगा, मधुबनी, पुर्णियॉं, कटिहार और सहरसा जैसे जिले मखाना के प्रमुख उत्पादक है। हाल के वर्षो में मखाने की खेती लगभग 13000 हैक्टेयर से बढ़कर 35000 हेक्टेयर तक हो गई है बिहार के अलावा, पश्चिम बंगाल, मणिपुर, त्रिपुरा, असम, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों भी मखाना की खेती होती है।

उद्योग एवं मखाना की मांग

भारत में मखाने की घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में अच्छी मॉग है स्वयं के प्रति जागरूकता बढ़ने तथा सुपर फूड के रूप में इसकी पहचान बनाने और प्राकृतिक खाद्य पदार्थो की बढ़ती प्राथमिकता के कारण तेजी से बढ़ रहा है। 2023 में वैश्विक मखाना बाजार का मूल्य 43.56 मिलियन डालर था और यह 2033 तक 100 मिलियन डालर तक पहुॅंचने का अनुमान है।

स्वास्थ्य लाभ

मखाने को कम कैलोरी, उच्च फाइबर, कम

ग्लाइसेमिक इंडेक्स और विटामिन व खनिजो से भरपूर एक सूपर फूड माना जाता है जो वजन घटाने और ब्लड शुगर नियंत्रण में मदद करता है।

जलवायु एवं तापमान

मखाना उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु का पौधा है, इसकी खेती उथले तालाबों या पानी जमा होने वाले खेतों में कार्बनिक पदार्थ युक्त चिकनी मिट्टी आवश्यक है इसके लिए 20 डिग्री. सेल्शियस से 35 डिग्री. सेल्शियस तापमान और 100 सेमी से 250 सेमी वार्षिक वर्षा उपयुक्त होती है।

मिट्टी

इसके लिए कार्बनिक पदार्थ युक्त चिकनी मिट्टी सबसे अच्छी होती है यह शांत या धीमी गति से बहने वाले पानी के परिस्थितिकी तंत्र में अच्छे से पनपता है।

पौधे से पौधे के बीच की दूरी

मखाने में पौधे से पौधे के बीच की दूरी एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1.25 मीटर 1.25 मीटर रखी जाती है।

नर्सरी में बीज की बुवाई एवं उसका रोपण

मखाने की नर्सरी में बीज बोने का उपयुक्त समय दिसम्बर से जनवरी के बीच होता है जिसे नर्सरी तैयार करने का समय कहा जाता है तथा नर्सरी में तैयार पौधों को फरवरी से मार्च के बीच खेत या तालाब में रोपाई के लिए लगा दिया जाता है।

प्रमुख प्रजातियॉं-

1.स्वर्ण वैदेही – यह भारतीय कृषि अनुसंधान परिपद द्वारा जारी की गई एक उन्नत किस्म है जो अधिक उपज के साथ-साथ रोगों एवं कीटों के प्रति प्रतिरोधी है।

2.काजू मखाना- यह किस्म भार में सबसे अधिक लोकप्रिय है। खासकर उत्तर प्रदेश और बिहार में इसकी खेती होती है।

3.साबौर – साबौर कृषि विश्वविद्यालय, बिहार द्वारा विकसित यह एक लोकप्रिय किस्म है।

खरपवार नियंत्रण

बुवाई से पहले खेतों की अच्छी प्रकार तीन से चार बाद जुताई करने से खरपतवार का अच्छे से नियंत्रण हो जाता है।

खाद और उर्वरक

मखाने में एकीकृत पोषण तत्व प्रबंधन, जैविक और रासायनिक उर्वरकों के संयुक्त उपयोग को सर्वर्धित करता है, जिसमें आमतौर पर प्रति एकड़ लगभग 6 टन गोबर खाद और 41 किलोग्राम नाइट्रोजन 25 किलो ग्राम फास्फोरस और 17 किलो ग्राम पोटाश देना होता है।

सिंचाई

वैसे तो इसकी खेती जलमग्न खेत या तालाब का चयन करके करते हैं जिसमें मिट्टी कार्बनिक पदार्थो से भरपूर हो इसके खेत में लगभग उसे 4 फीट पानी बनाए रखें।

खेत की तैयारी

खेत में 2 बार जुताई करके खरपतवारों को हटा दे उसके बाद प्रति हैक्टेयर 75 किग्रा नाइट्रोजन 45 किग्रा0 पोटाश और 30 किग्रा0 फास्फोरस की मात्रा डालें जुताई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा पोटाश तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा डालें।

कटाई का समय और विधि

मखाने की कटाई एक श्रमसाध्य प्रकिया है जो बुवाई के 6 से 7 महीने बाद या सितम्बर से दिसम्बर तक शुरू होती है जब बीज पक कर तालाब की सतह पर आ जाते है तथा तालाबों से मखाने के बीजों को हाथ से निकाला जाता है और कुछ दिनों तक छाया में सुखाया जाता है इसके बाद बीजों को भूनकर और कूटकर लावा प्राप्त किये जाने है जिसके बाद मखानों को एयरटाइट कंटेनरों में स्टोर किया जाता है कटाई के समय पत्तियॉं पीली पड़ जाती है और पानी की सतह पर छोटे-छोटे बीज दिखाई पड़ने लगती है बीज को धूप में नहीं सुखाया जाता है धूप में सुखाने पर बीज फट जाता है बीज को कुछ दिन के लिए छायादार जगह पर सुखाया जाता है। बीज को साफ करके मखाने के बीजों को 200-250 डिग्री सेल्सियस पर रेत वाले लोहे के बर्तन में भूना जाता है भूनने पर बीज फटफट की आवाज करते हैं औ फूलकर लावा (पाप किये गये मखाने) में बदल जाते हैं भूने हुए मखाने को ठंडी छायादार जगह पर टोकरियों में भरकर रखा जाता है, जिससे उसका कडा छिलका और मुलायम लावा ढीला पड़ जाए। मखाने की कटाई एक लम्बा और थकाऊ काम है जिसमें कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

उपज

एक हैक्टेयर में मखाने का उत्पादन पारम्परिक खेती से 1.7 से 2.2 टन (1700 से 2200 किलोग्राम) तक होता है लेकिन आधुनिक किस्मों और तकनीकों के इस्तेमाल से यह 3 से 3.5 टन (3000 से 3500 किलोग्राम) या इससे भी अधिक लगभग 5 टन (5000 किलोग्राम) तक हो सकता है।

मनीष कुमार सिंह एस.एम.एस.(उद्यान), के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

अमित कुमार सिंह एस.एम.एस.(कृषि प्रसार), के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

नरेन्द्र रघुवंशी वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के., चन्दौली (उ.प्र.)

सिंधाड़े की व्यवसायिक खेती एवं उसका महत्व

सिंधाड़े की खेती का विस्तृत कोई ऐतिहासिक रिकार्ड उपलब्ध नही है। सिंधाड़ा प्राकृतिक रूप से एशिया के झीलो, तालाबों, नदियों और दलदली जगहो पर पाया जाता है जहाँ इसकी खेती काफी समय से की जाती है। यह एक ऐसी फसल है जिसे कम लागत और जल जमाव वाली भूमि का उपयोग करके उगाया जा सकता है ।

किसानो के लिये अवसर: यह जल भराव वाली भूमि या तालाबों वाले किसाने के लिये आय अर्जित करने का एक शानदार तरीका साबित हुआ है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ धान और गेहूँ की पारंपमिरक खेती से कम लाभ होता है।

स्थान, मिट्टी एवं जलवायु का चुनाव: सबसे पहले नर्सरी में पौधे तैयार करने के लिये मानसून के मौसम में स्थिर जल वाले तालाबों में 1 से 2 फीट पानी में की जाती है । इसके लिये दोमट या बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है जिसका पीएच मान 6.0 से 7.5 हो। सिंधाडै की खेती के लिये उष्णकटिबंधीय जलवायु सबसे उपयुक्त होती है ।

उन्नत प्रजातियां

स्थानीय किस्में 1- कानपुरी, जौनपुरी: ये जल्दी पकने वाली किस्में है ।

2- करिया हरीरा: इस किस्म की तुड़ाई, रोपाई के लगभग 150 दिन बाद होती है ।

3- कटीला: यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है।

4- हरीरा गठुआ, लाल गठुआ: ये भी जल्दी पकने वाली किस्मों में शामिल है ।

5- लाल चिकनी गुलरी: यह भी एक प्रसिद्ध स्थानीय किस्म है ।

नवीन विकसित किस्में:

स्वर्ण आरोही और स्वर्ण हरित: राष्ट्रीय मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित ये नयी किस्में बिना काटेदार फल वाली है । इसके अलावा शारदा, भगवती, गोदावरी उन्नत किस्में है, जो उच्च पैदावार के लिये जानी जाती है । अधिकतर हरि छिलके वाली किस्में खेती के लिये उपयुक्त होती है । क्योकि लाल किस्म तुड़ाई के बाद काली पड़ने लगती है। जिससे उसका बाजार मूल्य घट जाता है ।

नर्सरी की तैयारी: सिंधाड़े की नर्सरी की तैयारी करने के लिये पहले बीज या पुराने फलो को फरवरी में पानी में डुबोकर अंकुरित करें फिर इन बीजो को एक छोटे तालाब या निर्धारित क्षेत्र में बोयें जहाँ वे जुलाई तक लगभग एक मीटर लंबे हो जायें, जून-जुलाई में जब मुख्य तालाबों में पर्याप्त पानी हो, तब ये नर्सरी से तैयार एक मीटर पौधे या बेल मुख्य बड़े तालाब में 1-1.5 मीटर की दूरी पर लगा दें । सिंधाड़ा की फसल से प्राप्त बीज या पुराने फलों को चुनें। सिंधाड़े की नर्सरी का उपयुक्त समय फरवरी से जून तक है । जिससे मुख्य फसल की रोपाई जुलाई - अगस्त में की जाती है ।

सिंधाडे की फसल में उर्वरक प्रबन्धन: सिंधाड़े की फसल के लिये रोपाई से पहले प्रति हेक्टेयर 8-10 टन गोबर की सड़ी हुई खाद उसके बाद 40 किलो प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन 60 किलो प्रति हेक्टेयर फास्फोरस एवं 40 किलो प्रति हेक्टेयर पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के समय तथा नाइट्रोजन की मात्रा दो बार में दे । रोपाई के 30 दिन बाद फिर 20 दिन बाद दें । फसल में पोषक तत्वों के छिड़काव के लिये नीम आधारित कीटनाशको का प्रयोग करें और फूल आने पर प्रोफेनोफास या मोनोक्रोटोफास का उपयोग न करें ।

सिंचाई प्रबन्धन: सिंधाड़े की फसल के सफल प्रबन्धन के लिये जल प्रबन्धन बहुत महत्वपूर्ण है। खेत में रोपाई से पहले 30 से 50 सेमी पानी भरें, फिर रोपाई के बाद धीरे-धीरे पानी की गहराई 60-100 सेमी तक बढ़ाये, जिसे पूरे सीजन तक एक समान बनाये रखना चाहिये । सिंधाड़ा धीमी गति से बहने वाले या स्थिर जल, जैसें तालाबों और झीलो में पनपता है । यह उन क्षेत्रों के लिये आकर्षक विकल्प है जहाँ खेत में जलभराव होता है।

रोपाई: जब पौधों की लम्बाई 300 मिमी हो जाये तो तैयार तालाबों में 2-3 पौधे को एक साथ रोपाई करें । पौधों के बीच 1 से 2 फीट की दूरी रखें । रोपाई के 6 सप्ताह के भीतर ही फलों का उत्पादन मिलने लगता है। ।

तुड़ाई एवं उपज: पूरी तरह विकसित और पकें हुये फलों की ही तुड़ाई करें । मध्यम आकार वाले 30-50 ग्राम वजन वाले फलों की बाजार में अधिक मॉग होती है। सिंधाड़ा फसल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन सामान्यत: 80 से 100 क्विंटल (8 से 10 टन) होता है । कुछ स्रोतो के अनुसार भारत में सिंधाड़ा का औसत उत्पादन लगभग 5.0 टन प्रति हेक्टेयर या कम से कम 3.5, 4.0 टन प्रति हेक्टेयर हो सकता है । वही सूखी गीटी (डबल अखरोट) का उत्पादन 17 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकता है ।

रोग एवं कीट का नियंत्रण

1- लोहिया रोग: पत्तियो पर छोटे भूरे या कत्थई रंग के धब्बे पड़ जाते है। जिससे फसल कमजोर पड़ जाती है।

2- दहिया (सफेद भंजरी) रोग- पत्तियों पर सफेद फफूंद जम जाती है, जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को रोकती है और फल बनने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है ।

रोकथाम- सल्फर का धोल (3 मिली प्रति लीटर) पानी मे बनाकर छिड़काव करें ।

प्रमुख कीट

1- लाल खजूरा कीट- यह कीट पौधे के अंदरूनी हिस्सो को खा जाता है, जिससे बढ़वार रूक जाती है और पौधे गलने लगते है ।

रोकथाम- इमिडाक्लोप्रिड 1 मिली प्रति 3 लीटर पानी या स्पिइनोंसैड 1 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें । ये पत्ति खाने वाले कीटों के प्रति प्रभावी होता है ।

जैविक नियंत्रण- नीम तेल- 5 प्रतिशत नीम तेल के धोल का छिड़काव करने से पत्ती खाने वाले कीटों और चेपां पर नियंत्रण किया जा सकता है।

सांस्कृतिक प्रथाये-

1- रोगग्रस्त पत्तियां को तोडकर नष्ट कर दे ।

2- स्वच्छता बनाये रखें, दूषित जल से बचे ।

3- पोषक तत्वो से भरपूर मिट्टी का उपयोग करें । क्योकि इससे पौधे बिमारियों के प्रति कम संवेदनशील होते है ।

सिंधाड़े का महत्व: सिंधाड़ा दिखने में जितना साधारण होता है, उससे ज्यादा पोषक तत्व से भरपूर फल है, जो पाचन में सुधार करता है, हृदय स्वास्थ्य का समर्थन करता है, वजन घटाने में मदद करता है, और शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाता है । यह विटामिन, खनिज और एंटीआक्सिडेंट से भरपूर होता है । पाचन स्वास्थ्य में भी मदद करता है, फाइबर से भरपूर होने के कारण ऑतो की सफाई मे मदद करता है । यह कम कैलोरी और फाइबर की वजह से वजन घटाने में मदद करता है । यह हृदय स्वास्थ्य को भी सही रखने का काम करता है क्योंकि इसमें पौटैशियम होने के नाते रक्तचाप को नियंत्रित करके और हृदय को स्वस्थ्य रखने में मदद करता ह । इसमें मौजूद फाइबर कोलेस्ट्राल के स्तर को नियंत्रित करता है । जिससे हृदय रोगो का खतरा कम होता है। इसमे मौजूद कार्बोहाइड्रेट शरीर को एनर्जी प्रदान करता है। सिंधाड़े में विटामिन बी 6, जिंक और एंटी ऑक्सिडेंट होता है जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और संक्रमणो से लड़ने मे मदद करता है । इसमे एंटी एजिंग गुण भी पाया जाता है। इसमें मौजूद विटामिन ई, एंटीऑक्सिडेंट त्वचा को जवान और चमकरदार बनाये रखता है और झुर्रियों को कम करने में मदद करता है । सिंधाड़े में मौजूद आयोडीन और मैगनीज थायराइड ग्रंथि के कार्यो को बेहतर बनाने में मदद करता है । जिससे थायराइड की रोकथाम में सहायता मिलती है ।

पशुपालन में जैव सुरक्षा के महत्व एवं प्रबंधन तकनीक

पूजा सिंह, एन.के. सिंह कृषि विज्ञान केंद्र कल्लीपुर, वाराणसी
अमित कुमार सिंह, आर.के. सिंह कृषि विज्ञान केंद्र, अमिहित, जौनपुर (उ.प्र.)

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

परिचय: पशुधन फार्म में खराब जैव सुरक्षा के कारण अपरिहार्य स्वास्थ्य, उत्पादन और आर्थिक नुकसान होता है। संगठित और स्थापित डेयरी फार्म इसका अच्छी तरह से ध्यान रखते हैं। डेयरी फार्मो की सफलता काफी हद तक उसके जैव सुरक्षा प्रबंधन पर निर्भर करती है। पशु स्वास्थ्य, उत्पादन और मानव स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए अच्छा जैव सुरक्षा प्रबंधन एक महत्वपूर्ण उपकरण है। बेहतर खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए भी यह एक बेहतरीन तरीका है। अनुचित जैव सुरक्षा प्रबंधन के कारण पशुधन में कई बीमारियाँ होती हैं जैसे कि एफएमडी, ब्रूसेलोसिस, बोवाइन ट्यूबरकुलोसिस, मास्टिटिस, अल्पकालिक बुखार, पैर सड़न, लिस्टेरियोसिस, रिंडरपेस्ट, नीली जीभ, पॉक्स, टेटनस, बछड़ा दस्त, दाद जो भारी वित्तीय नुकसान का कारण बनते हैं। यह लेख सरल लेकिन प्रभावी कदमों के साथ अच्छे जैव सुरक्षा प्रबंधन के महत्व को बताता है। जैव सुरक्षा का अर्थ है पशु फार्मों में जानवरों या मनुष्यों या किसी अन्य माध्यम से संक्रामक रोगों के फैलने की संभावना को कम करना। जैवसुरक्षा फार्म में संक्रामक रोगों के खतरे को कम करती है। प्रबंधन के हस्तक्षेप से हम ऐसा कर सकते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में संक्रामक एजेंट की उपस्थिति जानवरों मे बीमारी पैदा कर सकती है। इसीलिए, पशुधन उत्पादकों के लिए हर स्तर पर जैव सुरक्षा बनाए रखने के लिए ध्यान रखना बहुत आवश्यक हो जाता है।

फार्म में जैवसुरक्षा के उचित रखरखाव से संभावित लाभ

पशुओं मे बेहतर उत्पादकता: उचित जैव सुरक्षा के रखरखाव से जानवरों का स्वास्थ्य बेहतर होगा जो बदले में बेहतर आमदनी देगा। यह फार्म के अंदर एक स्वस्थ वातावरण बनाए रखने में भी मदद करता है।

फार्म में जोखिम कम होना: कम बीमारी, कम कीट और खेत परिसर के अंदर अवांछित परिस्थितियों का बहुत सीमित प्रवेश फार्म में जोखिम को कम करता है।

फार्म पर बीमारियों का शीघ्र पता लगाना और प्रबंधन करना: यदि कोई बीमारी है तो उसका पता लगाएं और समय पर उपयुक्त उपचार ढूंढें।

बीमारियों, कीटों और अवांछित परिस्थितियों की स्थिति में लागत में कमी: शीघ्र पता लगाने और प्रबंधन से निश्चित रूप से उन्मूलन की लागत में कटौती होगी, और उपचार की अवधि कम हो जाएगी।

आसान और प्रभावी जैव सुरक्षा प्रबंधन विधियाँ

फार्म-आदानों के विश्वसनीय स्रोत

फार्म के लिए नए जानवरों की खरीद- नए खरीदे गए जानवर जिन्हें झुंड में लाया जाना है, उनके स्रोत की विश्वसनीयता, उनकी स्वास्थ्य स्थिति की जांच की जानी चाहिए। स्वास्थ्य में कोई भी बदलाव देखने के लिए इसे 30 दिनों के लिए अलग रखें और झुंड में लाने से पहले इसका प्रतिदिन निरीक्षण किया जाना चाहिए। बीमार पशुओं को स्वस्थ झुंड से अलग किया जाना चाहिए और उनका चरागाह क्षेत्र भी अलग होना चाहिए।

कृत्रिम गर्भाधान सत्यापित एवं स्वस्थ पुरुष के वीर्य द्वारा किया जाना है

कभी-कभी अधिकांश अवांछित रोग का प्रकोप दूषित वीर्य, उपकरणों के कारण होता है। इस संबंध में उचित सावधानी बरतनी चाहिए।

चारा, साफ पानी, बिस्तर सामग्री और योजक: हमेशा ताजा, स्वच्छता से तैयार चारा, चारा और योजक सामग्री प्रतिष्ठित और विश्वसनीय स्रोत से खरीदें या संतुलित राशनिंग के कुछ चरणों का पालन करके इसे अपने खेत में तैयार करना सबसे अच्छा अभ्यास है। ताजा, साफ पानी की आपूर्ति होनी चाहिए जो अच्छी गुणवत्ता वाले पानी के मानकों और विभिन्न मापदंडों को पूरा करती हो और रोगजनकों से मुक्त हो। खराब और दूषित बिस्तर सामग्री रोगजनकों की वृद्धि को बढ़ा सकती है जिससे बीमारियाँ हो सकती हैं, इसलिए, बिस्तर सामग्री को अच्छी तरह से सूखाया जाना चाहिए और चूना पत्थर पाउडर जैसे कीटाणुनाशक के साथ मिलाया जाना चाहिए।

टीके, औषधियाँ: फार्म में कई हानिकारक बीमारियों के प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए टीकाकरण सबसे अच्छे तरीकों में से एक है। टीकाकरण के दौरान उचित कोल्ड चेन बनाए रखी जानी चाहिए। टीके और दवाएं प्रतिष्ठित और विश्वसनीय स्रोतों से खरीदी जानी चाहिए। प्रत्येक संभावित बीमारी के खिलाफ टीकाकरण किया जाना चाहिए जिसके टीके उपलब्ध हैं। पशुओं की उचित खुराक और आयु समूह का पालन किया जाना चाहिए। उपयोग के बाद वैक्सीन कंटेनरों का उचित निपटान किया जाना चाहिए।

अन्य रसायन: कीटाणुनाशक, एंटीसेप्टिक्स जैसे अन्य रासायनिक पदार्थों का उपयोग एक सक्षम और विशेषज्ञ पशुचिकित्सक द्वारा निर्धारित आवश्यक खुराक के अनुसार विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। इन रासायनिक पदार्थों का नियमित आदान-प्रदान किया जाना चाहिए।

मनुष्यों और अन्य जानवरों पर प्रतिबंध: फार्म के अंदर आगंतुकों पर बहुत प्रतिबंध होना चाहिए, चाहे वे इंसान हों या पालतू जानवर। अन्य जानवरों जैसे कुत्ते, बिल्ली, सांप, जंगली जानवर, पक्षियों को पशु घर के अंदर प्रवेश करने से मना किया जाना चाहिए। अनुमति प्राप्त आगंतुकों को प्रवेश द्वार पर अच्छी तरह से साफ और कीटाणुरहित कपड़े उपलब्ध कराए जाने चाहिए और उन्हें खलिहान या जानवरों के घर के अंदर प्रवेश करने से पहले स्नान करना चाहिए। फुट बाथ को उचित रूप से डुबाने के लिए उसके निचले हिस्से में कुशनिंग सामग्री लगाकर रखा जाना चाहिए। पैर स्नान में नियमित रूप से परिवर्तित कीटाणुनाशकों की उचित खुराक का उपयोग करना चाहिए। विभिन्न फार्म जोन बनाए जाने चाहिए जिसमें एक फार्म जोन से विशेष श्रमिक या जानवर दूसरे जोन में प्रवेश न कर सकें।

स्वच्छ उत्पाद: फार्म में जैव सुरक्षा बनाए रखने की जिम्मेदारी केवल उत्पादन में शामिल प्रक्रियाओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि स्वच्छ आउटपुट उत्पादों के साथ भी है, ताकि फार्म परिसर के आस-पास के क्षेत्र स्वच्छ और अवांछित परिस्थितियों से मुक्त रहें। बेहतर प्रसंस्कृत या कच्चे उत्पाद न केवल खेत के मूल्य में वृद्धि करेंगे बल्कि जैव सुरक्षा के बेहतर रखरखाव में भी मदद करेंगे क्योंकि इससे अपशिष्ट और अन्य अवांछित उप-उत्पादों में कमी आएगी। यह खेत के अंदर जैव सुरक्षा रखरखाव को बढ़ाएगा।

उचित कृषि अपशिष्ट निपटान: फार्म के अपशिष्ट जैसे अनुपयोगी, बासी, कुचला हुआ चारा और पशु अपशिष्ट, जैसे गोबर, पानी के साथ मिश्रित मूत्र, शव इस श्रेणी में आते हैं। फार्म परिसर के बाहर उचित दूरी पर ठोस एवं तरल अपशिष्ट निपटान की अलग-अलग व्यवस्था होनी चाहिए। फार्म में बचे गोबर और अन्य जैविक सामग्री का उपयोग उपयोगिता के अनुसार बायोगैस उत्पादन, खाद बनाने और वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए किया जा सकता है। तरल जैविक कचरे को खेती योग्य कृषि क्षेत्रों में कम से कम प्राथमिक उपचार के बाद सिंचाई के साथ सीधे उपयोग किया जा सकता है। शव का निपटान विशिष्ट क्षेत्रों में प्रचलित मानदंडों के अनुसार उपयुक्त तरीकों से किया जा सकता है। शव निपटान की सामान्य विधियाँ हैं- दफनाने की विधि, भस्मीकरण, खाद बनाना आदि। फार्म संचालन के दौरान उपयोग किए जाने वाले वाहनों, उपकरणों को उपयोग से पहले ठीक से कीटाणुरहित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष: 'रोकथाम इलाज से बेहतर है' इसी तरह जैव सुरक्षा भी एक प्रकार का निवारक प्रबंधन है जिसका खेत में ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि संक्रामक रोगों और अन्य बीमारियों के खतरे से बचा जा सके, इससे पहले कि वे नुकसान पहुंचाएं। विफलताओं और अंतरालों के बिना कड़ाई से पालन किया गया जैव सुरक्षा रखरखाव निश्चित रूप से स्वास्थ्य, उत्पादन और वित्तीय घाटे को कम करता है। इन छोटे-छोटे कदमों से होने वाली बचत निश्चित रूप से तेजी लाती है और लाभदायक डेयरी व्यवसाय को बढ़ावा देती है।

अधिक जानकारी हेतु संपर्क करें-
अमित कुमार सिंह
कृषि विज्ञान केंद्र, अमिहित, जौनपुर
मोबाइल- 8178921505

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

गजेन्द्र सिह, अमित कुमार सिंह, आर.के. सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, अमिहित, जौनपुर (उ.प्र.)

टमाटर की फसल में रोग का प्रबन्धन

आद्र गलन रोग (डम्पिंग ऑफ)

लक्षण

पौधो के जमाव से पहले की अवस्था मे आद्र गलन रोग से प्रभावित बीज नरम, भूरे हो कर विघटित हो जाते हैं। जमाव के बाद की अवस्था मेआद्र गलन रोग में,जड़ें, हाइपोकोटिल्स और अंकुरों के शिर्ष हल्के भूरे, मुलायम तथा पतले हो जाते हैं। यह रोग ज्यादातर नर्सरीमें आता है।अंकुर का कॉलर भाग सड़ जाता है तथा अंकुर समूह में मिट्टी की सतह पर नीचे की ओर गिर जाते हैं।

प्रभावित भाग

बीज तथा जमीन की सतह के पास का तना

प्रबंधन

नर्सरी अवस्था

* अच्छे जल निकासी के लिए जमीन से 10 सेंमी ऊंची क्यारी तैयार करें।
* नर्सरी की बुवाई से पहले मिट्टी को 0.45 मिमी मोटी पालीथीन शीट से 2-3 सप्ताह तक ढ़ककर मिट्टी का सूर्य तापीकरण करें, इस दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे।
* 50 ग्राम ट्राइकोडर्मा की सक्षम स्ट्रेन को 3 किलो ग्राम गोबर की खाद में मिलाएं और 7-14 दिनों के लिए संवर्धन के लिए छोड़ दें व उसके पश्चात 3 वर्ग मीटर क्यारी में ट्राईकोडर्मा संवर्धित खाद को मिट्टी में मिला दें।
* नर्सरी के दौरान मृदा जनित बीज के रोगों के नियंत्रण हेतू बीज को ट्राइकोडर्मा के प्रभावी स्ट्रेन से 4 ग्राम प्रति किग्रा बीज से उपचार करें।
* डैम्पिंग आफ के नियंत्रण के लिए कैप्टान 75 डब्ल्यूपी 0.25 प्रतिशत अथवा कैप्टान 75 डब्ल्यूएस 0.3 प्रतिशत की दर से आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग करें।

अगेती झुलसा (अर्ली ब्लाइट)

लक्षण

आमतौर पर यह बीमारी नये पौधों की तुलना में पुराने पौधों में अधिक प्रभावी होती हैं और निचली पत्तियां पर ऊपर की तुलना में अधिक अतिसंवेदनशील होती हैं । पत्तियों पर छोटे, काले, गोलाकार घाव ध्धब्बे विकसित होते हैं। पत्तियों पर धब्बे तेजी से बढ़ते हैं, और पत्तिया पूरी तरह से धब्बो में बदल जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां मर जाती हैं। तने और किनारे की शाखाओं पर छोटे, काले, थोड़े धँसे हुए घाव बनते हैं जो गहरे भूरे रंग के उभरे हुए धब्बों मे बदल जाते हैं।

प्रभावित भाग

फल का डंठल के पास का हिस्सा, शाखाएँ तथा पत्तियाँ

* केप्टान 50 डब्ल्यूपी 2.5 किग्रा अथवा केप्टान 75 डब्ल्यूपी 1.6 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी के साथ अथवा मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूजी 1 किग्रा की दर से प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
* आवश्यकता होने पर एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 एससी का 500 मिली प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी के साथ या एजोक्सीस्ट्रोबिन 18. 2 डाइफेनोकोनाजोल 11.4 एससी का 500 मिली प्रति हे? या मेटालेक्सील 3.3 क्लोरोथेलोनील 33.1 एससी 1000 मिली प्रति हे? की दर से 500 लीटर पानी के साथ मौसम और फसल आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। टेबूकोनाजोल 50 प्रतिशत ट्राइफलोक्साईट्रोबिन 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी 350 ग्राम प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

पछेती झुलसा

लक्षण

जब लंबे समय के लिए अनुकूल मौसम के साथ नमी वाली परिस्थितियां बनी रहती हैं तब पछेती झुलसा रोग का प्रकोप होता है। तेजी से फैलते रोग के कारण गंभीर आर्थिक नुकसान होता है। इसमें पौधे के किसी भी भाग पर भूरे-बैंगनी अथवा काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियों पर दिखाई देने वाले धब्बे अनियमित, थोड़े बड़े, हरे-काले रंग के तथा जल का अवशोषण करने वाले होते हैं। ये धब्बे तेजी से बढ़कर भूरे हो जाते हैं और पत्तियों की निचली सतह के संक्रमित क्षेत्र के किनारों के समीप अथवा तने पर एक सफेद फफूंदी का विकास कर लेते हैं। यहां तक कि फल भी संक्रमित होकर काले तथा क्रिकेट गेंद की तरह कठोर हो जाते हैं जिस कारण पूरे पौधे और फल नष्ट हो जाते हैं।

प्रभावित भाग

फल, शाखाएँ तथा पत्तियाँ

प्रबंधन

मुख्य फसल

* पछेती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु केप्टान 50 डब्ल्यूपी 2.5 किग्रा प्रति हेकी दर से 1000 लीटर पानी के साथ या मेन्कोजेब 75 डब्ल्युपी 1.5-2 किग्रा प्रति हे की दर से 750-1000 लीटर पानी के साथ सुरक्षात्मक छिड़काव करें।
* आवश्यकता होने पर एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत एससी का 500 मिली प्रति हे. या एजोक्सीस्ट्रोबिन 18.2+डाइफेनोकोनाजोल 11.4 एससी का 500 मिली प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी के साथ या मेटालेक्सील 3.3 क्लोरोथेलोनील 33.1 एससी का 1000 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ मौसम और फसल अवस्थानुसार छिड़काव करें। सायमोक्सानिल 8+ मेन्कोजेब 64 डब्ल्यूपी 1.5 किग्रा या टेबुकोनाजोल 50+ ट्राइफलोक्ट्रोड्कबिन 25 डब्ल्यूजी का 350 ग्राम प्रति हेक्टेयर कि दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

पशुओं में टीकाकरण का महत्व

पूजा सिंह, एन.के. सिंह कृषि विज्ञान केंद्र कल्लीपुर, वाराणसी
अमित कुमार सिंह, आर.के. सिंह कृषि विज्ञान केंद्र, अमिहित, जौनपुर (उ.प्र.)
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

सारांश : रोगों के उपचार से ज्यादा श्रेयष्कर उनका बचाव व रोकथाम के उपाय करना होता है। वास्तव में बहुत से विषाणु जनित रोग लाइलाज है तथा ससमय इनका रोकथाम ही एक विकल्प है, जो कि टीकाकरण द्वारा ही संभव है। पशुओं में विभिन्न रोगों के बचाव के लिए विविध टीकाकरण ससमय उचित खुराक एवं मार्ग के प्रयोग द्वारा ही संभव है। पशुपालक अगर ससमय अपने पशुओं का टीकाकारण करवाएँ तो पशुओं को खतरनाक बीमारियों से बचाकर पशुपालन व्यवसाय को अतिरिक्त आय हेतु लाभप्रद बना सकते है।

परिचय: संक्रामक रोग महामारी के रूप में फैलकर पशुधन का वृहत् पैमाने पर क्षति करते है। मनुष्यों की भाँति पशुओं में भी प्रतिरक्षा हेतु टीकाकरण अत्यंत आवश्यक है। यह न सिर्फ उन्हें सुक्ष्म जीवों के संक्रमण से बचाता है, बल्कि विभिन्न बीमारियों के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। अतः नियमित टीकाकरण द्वारा पशुपालक न सिर्फ स्वास्थ सेवाओं पर होने वाले खर्च को कम कर सकते है बल्कि बेहतर पशुधन उत्पादन भी प्राप्त कर सकते है।टीका एक प्रकार का चिकित्सीय उत्पादहै जो कि पशुओं के रोग सुरक्षात्मक प्रतिरोधकक्षमता को बढाता है। साथ ही उन्हें विविध रोगकारक जैसे- जीवाणु, विषाणु, परजीवी एवं रक्त प्रोटोजोआ इत्यादि के संक्रमण से लड़ने के लिए शरीर को तैयार करता है।

वर्तमान समय में किसानों की आमदनीदोगुनी तथा आर्थिक लाभ में बढ़ोत्तरी एक प्रमुख उद्देश्य है। इसमें पशुओं के स्वास्थ प्रबंधन की अहम भुमिका है। प्रतिवर्ष हजारों दुधारू पशु खतरनाक रोगों जैसेः- गलाघोंटूं, लंगडा बुखार, खुरहा-मुँहपका, एंथ्रेक्स व ब्रुसेलोसीस इत्यादि के संक्रमण के कारण मारे जाते है, जिससे पशुपालकों को आर्थिक क्षति का नुकसान उठाना पडता है।टीकाकरण वह विधि है जिसमें कमजोर या अर्धमूर्छित या मृत रोगाणुओं को शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है, जिसका उद्देश्य उस विशेष रोगाणु के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करना या बढ़ाना होता है।रोग का प्रकोप को फैलने से रोकने के लिए जिस गाँव/प्रक्षेत्र अथवा परिवेश में रोग हो उसके चारों तरफ के स्वस्थ पशुओं को टीके लगाकर रोग-विशेष प्रतिरक्षित क्षेत्र उत्पन्न कर देना चाहिए।

टीकाकरण व रोग से बचाव की शर्तेः टीकाकरण कार्यक्रम का उद्धेश्य पशुओं को विभिन्न रोगो से बचाव सुनिश्चित करना होता है। हालांकि टीके का निर्माण व कार्यान्वयन रोग से सुरक्षा के लिए किया जाता है, फिर भी इसके सही तौर तरीके न अपनाने से कुछ दुष्परिणाम हल्के होते है जैसे मामुली बुखार, पीडा, सूजन या एंजेक्शन के स्थान पर लालिमा। **अतः टीकाकरण के पुर्व व दौरान निम्न- लिखित शर्तो का ध्यान रखा जाना चाहिएः-**

1. टीके केवल स्वस्थ पशुओं को ही लगाये, अस्वस्थ या बीमार पशुओं को टीके न लगाये।
2. गर्भवती पशुओं को पशु चिकित्सक केपरामर्श के उपरांत ही टीकाकरण करना चाहिए। टीकाकरण के तुरंत बाद पशुओं को अंतः परजीवी नाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह पर देनी चाहिए।
3. टीकाकरण के तुरंत बाद पशुओं को अत्यधिक व्यायाम न करायें तथा खराब मौसम से परहेज रखे।
4. चारे में खनिज लवण मिश्रण का प्रयोग कम से कम 30 दिनों तक अवश्य करे।
5. टीकाकृत पशुओं को बीमार पशुओं अथवा बिना टीका दिये गये पशुओं से अलग रखना चाहिए।
6. टीकों का रख रखाव शीत श्रृंखला (कोल्ड चेन) प्रणाली के तहत किया जाना चाहिए ताकि टीकों का संरक्षणउचित तापमान पर बनाए रखा जा सके।
7. टीकों को निर्धारित समय सीमा में निश्चित रूप से प्रयोग कर लेना चाहिए अन्यथा टीके की क्षमता कम अथवा टीका निष्क्रीय हो जाती है(तालिका 1)।

आमतौर पर संकर नस्ल के पशुओं में संक्रामक रोगों की संभावना प्रबल होती है। इन रोगों की भयावहता तथा दुष्प्रभाव को देखते हुए उनके उपचार की जगह बचाव का तरीका सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है जो टीकाकरण के द्वारा ही संभंव है। समय. समय पर कई प्रकार के टीकाकरण की व्यवस्था सरकारी स्तर पर भी किया जाता है, जिसकी जानकारी पशुपालक भाई अपने जिला पशुपालन पदाधिकारी से प्राप्त कर सकते है।

तालिका 1: पाशुओं में टीकाकरण के लिए समय सारिणी

बीमारी	टीका का नाम	प्रथम टीका लगाने का उम्र	खुराक एवं विधि	अंतराल	पशु
खुरहा-मुँह पका	एफ. एम. डी.	4 माह	2 मि0ली0 चमडी म	अर्धवार्षिक	गाय, भैंस, भेंड़, बकरी
रिन्डरपेस्ट (कोपनी)	जी0टी0भी0, टी0सी0भी0	6 माह से उपर के पशुओं का	1 मि0ली0 गर्दन की चमडी म	पूरे जीवनकाल में एक बार	गाय, भैंस, भेंड़, बकरी
गलाघोंटूँ ;भ्ैण्द्ध	ऑयल एडजूवेन्ट टीका	हर उम्र मे	1 मि0ली0 गर्दन की चमडी म	वार्षिक	गाय, भैंस, भेंड़, बकरी
लंगडी बुखार ;ठण्फण्द्ध	पॉलीवेलेन्ट बीक्यू टीका	हर उम्र म	3 मि0ली0 चमडी म	वार्षिक	गाय, भैंस, भेंड़, बकरी
एंथेक्स	एंब्रेक्स स्पोर टीका	हर उम्र म	2 मि0ली0 चमडी म	वार्षिक	गाय, भैंस, भेंड़, बकरी
ब्रूसोलोसिस	कॉटन स्ट्रेन-19 टीका	6 माह	1 मि0ली0 चमडी में	4-5 वर्ष	गाय, भैंस
टिटेनस	टिटेनस टॉक्साइड़	हर उम्र मे	5 मि0ली0 चमडी में	वार्षिक	गाय, भैंस
पी. पी. आर	अटैनूयटेड टिसू कल्चर टीक	4 माह	1 मि0ली0 चमड़ी में	3 वर्ष मानसून के पहल	भेंड, बकरी
इन्टेरोट्रॉक्सेमिया	इन्टेरोटॉंक्सेमिय	3- 4 माह	2.5 मि0ली0 चमडी में	अर्धवार्षिक	भेंड, बकरी
आई . बी. आर.	आई . बी. आर.	5 माह	2मि0ली0 चमड़ी मे	वार्षिक	गाय, भैंस
चेचक	पॉक्स टीका	3-4 माह	0.5 मि0ली0 चमडी मे	वार्षिक	भेंड, बकरी

खुरहा मुँह पका रोगः यह पशुओं में पाया जाने वाला प्रमुख रोग है जो कि विषाणु द्वारा फैलता है। यह किसी भी उम्र के खुरदार पशुओं में होने वाले प्रमुख विषाणु जनित संक्रामक रोग है। इस रोग से प्रभावित होने पर पशु पैर पटकने लगता है, खुर के आसपास सूजन हो जाते है, मुँह से लार गिरना, जीभ, मसूडे व होंठ में छाले होना, कार्य क्षमता व उत्पादन क्षमता में कमी होनाबुखार का होना आदि इसके लक्षण है। इस रोग से संक्रमित पशुओं को ऑयल एडजूवेंट टीका दिया जाता है। गौवंशीय तथा भैंसवंशीय पशुओं में प्रथम टीका एक माह तथा दूसरा टीका 6 माह की उम्र पर दिया जाता है तत्पश्चात प्रतिवर्ष टीकाकरण कराना चाहिए। टीके की खुराक 2 मि0ली0 प्रति पशु; चमडी के नीचे मार्च-अप्रैल या सितम्बर-अक्टूबर के महीने में लगवाना चाहिए। भेड़ तथा बकरियों में एक मि0ली0 खुराक प्रति पशु;चमड़ी के नीचे देना चाहिए।

गलाघोटूः वर्षा ऋतु में पाया जाने वाला यह प्रमुख जीवाणु जनित रोग है इससे बचाव हेतु वर्षा ऋतु से पहले एवं शीत ऋतु की शुरूआत में टीकाकरण किया जाना चाहिए। इस रोग में एडजूवेंट टीका दिया जाता है। गौवंशीय तथा भैंसवंशीय पशुओं में प्रथम टीका 6 माह की उम्र और इसके बाद प्रति वर्ष दिया जाता है टीके की खुराक 2 मि0ली0 प्रति पशु (चमड़ी के नीचे) मानसून के आगमन के पूर्व देना चाहिए भेंड़ तथा बकरियों में एक मि0ली0 प्रति पशु (चमड़ी के नीचे) देना चाहिए।

लंगड़ी बुखारः इस रोग में पॉलीवेन्ट टीका दिया जाता है गौवंशीय तथा भैंसवंशीय पशुओं में प्रथम टीका 6 माह की उम्र और इसके बाद प्रति वर्ष दिया जाता है टीके की खुराक 5 मि0ली0 प्रति पशु चमड़ी के नीचेद्ध मानसून के आगमन के पूर्व देना चाहिए।

ब्रूसीलोसिसः पशुओं में गर्भाधान के तीसरे चरण में गर्भपात होने का यह प्रमुख कारण है। मादा बछड़ों में इस रोग का केवल प्रथम टीका 4-6 महीने की उम्र में 2 मि0ली0 देना चाहिए, गाभिन पशु में यह टीका न दे। एन्थ्रेक्स- इस रोग में स्पोर टीका दिया जाता है पशुओं में प्रति चारागाह जाने के एक महीने पूर्व इस टीके की 1 मि0ली0 खुराक देना चाहिए।

पी पी आरः यह भेड़ तथा बकरियों का बहुत ही खतरनाक रोग है। बुखार, सर्दी, खांसी, गोबर पतला होना व भूख कम लगना पी पी आर रोग का लक्षण है, पांच दिन तक इलाज नहीं करने पर पी पी आर से मृत्यु तक हो सकती है, पी पी आर की रोकथाम के लिए लक्षण के अनुसार दवा व टीका सभी पशु चिकित्सालय में उपलब्ध है। प्रथम टीका 4 महीने की उम्र में तथा पुनः टीकाकरण 3 वर्षकी उम्र करना चाहिए। इसकी खुराक 1 मि0ली0 चमड़ी के नीचे दी जाती है। यह टीकामानसून के पूर्व लगाना चाहिए। भेड़ तथा बकरियों का टीकाकरण वर्ष में एक बार जरूर कराये।

थाईलेरियोसिसः गौवंशीय तथा भैंसवंशीय पशुओं में इसका प्रथम टीका तीन महीने या इसक ऊपर की उम्र में करते हैं तत्पश्चात् स्थानीय या एनडेमिक जगह पर पुनः टीकाकरण में 3 मिली खुराक चमड़ी के नीचे के मार्ग से देना चाहिए। इसकी प्रतिरोधक शक्ति 3 महीने तक रहती है।

निष्कर्षः वर्तमान समय में किसानों की आमदनी बढ़ाने पशुओं के लिए स्वास्थ प्रबंधन की अहम भूमिका है। पशु टीकाकरण स्वास्थ प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण घटक है। पशुपालकों को पशुओं के बीमार होने पर ही उपचार कराने की मंशा छोडनी होगी, तभी वो पशुपालन के दिशा में समृद्ध हो पायेंगे। ससमय इलाज के अभाव में पशुओं की अक्सर मृत्यु हो जाती है। अतः पशुओं में नियमित टीकाकरण सुनिश्चित करना चाहिए। इसके साथ साथ पशुओं के खान-पान व रहन-सहन में भी ध्यान देना होगा, ताकि उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे।

सर्दियों में दुधारू पशुओं की उचित प्रबंधन तकनीकी

अमित कुमार सिंह, आर.के. सिंह कृषि विज्ञान केंद्र, अमिहित, जौनपुर (उ.प्र.)

पूजा सिंह कृषि विज्ञान केंद्र कल्लीपुर, वाराणसी

परिचय

भारत में नवंबर के आगमन के साथ ही सर्दी का मौसम शुरू हो जाता है। दुधारू पशुओं को स्वस्थ रहने के लिए आसपास के तापमान के साथ खुद को ढालना पड़ता है। ठंडे तापमान का सामना करने के लिए अक्सर किसान पशुओं को जूट या कपड़े की परत से ढकते हैं जिससे पशु अपने शरीर की गर्मी का उत्पादन बढ़ाते हैं। उन्हें अपने शरीर और उत्पादन को बनाए रखने के लिए अधिक चारे की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए गायों को ठंड के मौसम में 20 प्रतिशत तक अधिक चारे की आवश्यकता हो सकती है। बहुत अधिक ठंड होने पर पशु का उत्पादन प्रदर्शन भी प्रभावित होता है क्योंकि शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए ऊर्जा के बढ़े हुए अनुपात का उपयोग किया जाएगा और उत्पादकता पशु के शरीर के तापमान को बनाए रखने की क्षमता पर निर्भर करती है। लेकिन पशुओं में पोषक तत्वों के उपयोग और पशु प्रदर्शन पर ठंडे तनाव के प्रभाव पर कम शोध ध्यान दिया जाना चाहिए। डेयरी पशुओं को अच्छे आवास में रखा जाना चाहिए जो जानवरों पर पर्यावरणीय तापमान में उतार-चढ़ाव के प्रभाव को कम करते हैं। लेकिन कमजोर आवास प्रणाली के तहत रखे गए जानवरों को ठंडे तनाव से बचाने के लिए ध्यान देने की खास आवश्यकता होती है। पशुओं को आरामदायक सूक्ष्म वातावरण प्रदान करके संरक्षित किया जा सकता है। आमतौर पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तापमान 0 से 40 डिग्री सेल्सियस तक होता है और आरामदायक पशुओं के शरीर का तापमान 18 से 27 डिग्री सेल्सियस तक होता है, इसलिए न्यून तापमान या अत्यधिक तापमान की स्थितियों से सुरक्षा आवश्यक है।

इस मौसम में कई पशु अक्सर खाना खाने से मना कर देते हैं, बुखार और निमोनिया से पीड़ित हो जाते हैं। इससे पशु के दूध उत्पादन, स्वास्थ्य और प्रजनन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सामान्य गाय और भैंस के शरीर का तापमान 101-102 डिग्री फारेनहाइट के बीच होता है और इन पशुओं के लीये उपयुक्त तापमान 65-75 डिग्री फारेनहाइट होता है। अत्यधिक ठंडे वातावरण के कारण ऊर्जा की हानि बढ़ जाती है जिसकी आपूर्ति के लिए अतिरिक्त ऊष्मा युक्त आहार और विशेष देखभाल द्वारा की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थितियों मे संतुलित आहार महत्वपूर्ण हो जाता है जिसमे जो प्रोटीन उपयुक्त मात्र मे होना चाहिए। पशु आहार में लगभग 17 प्रतिशत फाइबर युक्त आहार की आवश्यकता होती है। मिश्रित दाने में अनाज (40 प्रतिशत), खली (32 प्रतिशत), चोकर (25 प्रतिशत), खनिज मिश्रण (2 प्रतिशत) और साधारण नमक (1 प्रतिशत) शामिल होना चाहिए। इसके अलावा, सामान्य दूध

उत्पादन और अन्य गतिविधियों को बनाए रखने के लिए ठंड के तनाव से निपटने हेतु शरीर के वजन का लगभग 1 प्रतिशत अतिरिक्त ऊर्जा-युक्त अनाज खिलाया जाना चाहिए।

अधिक ठंढ मे दुधारू पशुओं पर प्रभाव

* पशुओं की जुगाली बढ़ जाती है।
* पशुओं के वजन मे कमी देखने को मिलती है।
* उत्पादन घट जाता है।
* शारीरिक अवस्था मे गिरावट पाई जाती है।
* पशुओं मे निमोनिया का खतरा बढ़ जाता है।

सर्दियों के दौरान डेयरी पशुओं के लिए सामान्य प्रबंधन हेतु सुझाव

* पशुओं के शरीर के तापमान में अचानक गिरावट से बचाने के लिए उन्हें ढके हुए शेड क्षेत्र में रखें, खासकर रात के समय।

* कंबल का उपयोग पशुओं के शरीर की गर्मी बनाए रखने के लिए किया जा सकता है। जानवरों को नमी वाली जगह पर रखने से बचें, साथ ही उन्हें गर्मी देने के लिए जलाई जाने वाली आग के धुएँ से भी बचाएँ। नमी और धुएँ से उन्हें निमोनिया होने की संभावना बढ़ जाती है।

* पशुओं को ताजा चारा और गुनगुना पानी पीने के लिए दिया जाना चाहिए। दूध देने वाले पशुओं के शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए उन्हें तेल की खली और गुड़ का मिश्रण खिलाना चाहिए।

* यह सुनिश्चित करने के लिए कि पशुओं में आवश्यक खनिज बने रहें, उनके आहार के साथ पर्याप्त मात्रा में नमक मिश्रण उपलब्ध कराएं।

* पशुओं को कृमि मुक्त करने का यह सही समय है।यदि पशुओं को अभी तक एफएमडी, पीपीआर, रक्तस्रावी सेप्टिसीमिया, एंटरोटॉक्सिमिया, ब्लैक क्वार्टर आदि के खिलाफ टीका नहीं लगाया गया है, तो सुनिश्चित करें कि यह अभी लगवा लें।

* पशु के बाड़े में बिछावन मे भूसा, सूखी घास रखा जाना चाहिए तथा उसे प्रतिदिन बदला जाना चाहिए और उसे पलटकर हवा दिया जाना चाहिए।

ठंड मे आहार प्रबंधन

आहार में सभी परिवर्तन, चाहे वे बढ़ जाएं या घट जाएं, धीरे-धीरे किए जाने चाहिए। हालाँकि यह मनुष्यों के लिए ज्यादा आरामदायक हो सकता है, लेकिन आमतौर पर पशुओं के बाड़े के अंदर चारा देना उचित नहीं होता है। खराब या न्यूनतम हवादार इमारतों में अमोनिया की मात्रा बहुत ज्यादा हो सकती है जिससे निमोनिया और साँस लेने जैसी अन्य समस्याएँ हो सकती हैं। ज्यादा नमी गाय के बालों की ऊष्मारोधी क्षमता को कम कर देती है। पशुओं के लिए बाहर चारा देना बिल्कुल आरामदायक रहता है और यह अक्सर ज्यादा साफ-सुथरा भी रहता है। ठंड मे पशुओं को भोजन की आवश्यकता बढ़ जाती है जिससे खाने की मात्रा कम हो जाती है इसलिए ठंड मे अधिक खाद्य सामग्री की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ठंड के मौसम में पशुओं की पोषण संबंधी जरूरतें काफी बढ़ सकती हैं। पशुओं के लिए न्यूनतम पर्यावरणीय तापमान शोधकर्ताओं के अनुसार अलग प्रजातियों के लिए अलग-अलग होता है, लेकिन पशु बिना किसी अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता के 20° या 32° सेंटीग्रेड तापमान सहन कर सकते हैं। पर्यावरणीय तापमान से नीचे प्रत्येक डिग्री तापमान पर पशु की ऊर्जा जरूरतें एक प्रतिशत बढ़ जाती हैं।

निष्कर्ष

पशु आरामदायक पर्यावरणीय तापमान में अपने उत्पादन और प्रजनन गुणों में सर्वोत्तम प्रदर्शन प्रदर्शित करते हैं। उच्च तापमान से ऊपर और निम्न तापमान से नीचे की स्थिति पशुओं के प्रदर्शन को प्रभावित करती है। ठंड के तनाव से निपटने के लिए पशुओं के उचित पोषण, आश्रय, पानी और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। ठंड के दौरान बेहतर प्रबंधन नीतियों से पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादन को भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

ग्रीष्मकालीन मूंग सवाई माधोपुर, राजस्थान में कृषि सतत तीव्रीकरण हेतु एक सफल प्रणाली

✍ **नूपुर शर्मा** विषय विशेषज्ञ (सश्य विज्ञान)
✍ **डॉ. संतोष झाझड़िया** वरिष्ठ वैज्ञानिक व अध्यक्ष
✍ **डॉ. बी. एल. ढाका** प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा)
✍ **डॉ. बी.एल. मीणा** प्राध्यापक (कीट विज्ञान)

कृषि विज्ञान केन्द्र, सवाईमाधोपुर, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

परिचय

सवाई माधोपुर जिले में प्रमुख फसल चक्र बाजरा-सरसों एवं बाजरा-गेहूँ रहे हैं। इन प्रणालीगत खेती पद्धतियों को लगातार अपनाने के कारण वर्षों में मृदा उर्वरता में गिरावट आई है, साथ ही उत्पादकता एवं कृषक आय में भी कमी दर्ज की गई है। प्रणाली की उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ाने के उद्देश्य से कोविड-19 काल में, पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं वाले क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन मूंग की प्रायोगिक प्रदर्शनी की गई, जो अत्यंत सफल सिद्ध हुई।

सवाई माधोपुर जिले में परंपरागत रूप से खरीफ मूंग प्रमुख फसल रही है, किन्तु असमय एवं अत्यधिक वर्षा के कारण खरीफ मूंग का उत्पादन प्रभावित हुआ। वर्ष 2019 में जिले में खरीफ मूंग का क्षेत्र मात्र 195 हेक्टेयर रह गया, जो नगण्य है। राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले सहित अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में बाजरा-सरसों फसल प्रणाली लंबे समय से कृषकों की प्रमुख आजीविका का आधार रही है। यह प्रणाली सूखे एवं सीमित संसाधनों की परिस्थितियों में अपेक्षाकृत स्थिर तो सिद्ध हुई है, परंतु इसके लगातार अपनाने से मृदा की जैविक कार्बन, सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा नाइट्रोजन संतुलन में गिरावट दर्ज की गई है। फलस्वरूप, फसल उत्पादकता में स्थिरता या गिरावट तथा कृषक आय में कमी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इन चुनौतियों के समाधान हेतु फसल प्रणाली में विविधता लाना और अल्पावधि दलहनी फसलों का समावेश करना आवश्यक है। इस परिप्रेक्ष्य में ग्रीष्मकालीन मूंग (Vigna radiata) का समावेश अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। ग्रीष्मकालीन मूंग लगभग 60-65 दिनों में तैयार हो जाने वाली अल्पावधि दलहनी फसल है, जो सिंचित परिस्थितियों में आसानी से उगाई जा सकती है। यह न केवल वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा की उर्वरता को सुधारती है, बल्कि भूमि की उत्पादकता क्षमता को भी दीर्घकालीन रूप से बढ़ाती है। साथ ही, ग्रीष्मकालीन मूंग का उत्पादन कृषकों को अतिरिक्त आय प्रदान करता है और इसकी उच्च प्रोटीन सामग्री के कारण पोषणीय सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। इस प्रकार, बाजरा-सरसों आधारित फसल प्रणाली में इसका समावेश मृदा स्वास्थ्य संरक्षण, फसल प्रणाली की उत्पादकता एवं तीव्रीकरण, कृषक आय में वृद्धि, तथा पोषणीय सुरक्षा के लिए एक सतत एवं व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।

अतः, ग्रीष्मकालीन मूंग को बाजरा-सरसों फसल प्रणाली में शामिल करना न केवल सतत कृषि तीव्रीकरण की दिशा में एक आवश्यक कदम है, बल्कि जलवायु परिवर्तन, पोषणीय असंतुलन एवं घटती आय जैसी समस्याओं से निपटने की भी एक प्रभावी रणनीति है।

केंद्र के प्रयास

सवाई माधोपुर जिले में कृषि विज्ञान केंद्र ने वर्ष 2020 में क्लस्टर फ्रंटलाइन डेमोंस्ट्रेशन कार्यक्रम के अंतर्गत 20 हेक्टेयर क्षेत्र में ग्रीष्मकालीन मूंग की शुरुआत की। इस पहल के परिणामस्वरूप कुल 100.53 क्विंटल बीज का उत्पादन हुआ, जिसे आगामी सीजन में कृषकों द्वारा पुनः उपयोग किया गया। इससे न केवल बीज की उपलब्धता सुनिश्चित हुई, बल्कि कार्यक्रम की सततता भी बनी रही। प्रारंभिक सफलता से प्रेरित होकर कृषि विज्ञान केंद्र ने प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मकालीन मूंग पर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन आयोजित करना जारी रखा, और वर्ष 2024 तक यह क्षेत्रफल बढ़कर 100 हेक्टेयर से अधिक हो गया। इन संगठित प्रयासों का प्रत्यक्ष प्रभाव यह रहा कि जिले में ग्रीष्मकालीन मूंग का क्षेत्रफल क्षैतिज रूप से विस्तार पाकर 650 हेक्टेयर से अधिक तक पहुँच गया।

तकनीकी प्रभाव

क्लस्टर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों के अंतर्गत एकीकृत फसल प्रबंधन पद्धति से अपनाई गई प्रमुख तकनीकी इस प्रकार रहे।

उन्नत किस्में - आई.पी.एम.-205-7, आई.पी.एम.-2-14, एम.एच.-1142

बीज दर-20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

बीज उपचार- थायरम/3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज अथवा कार्बेन्डाजिम/2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज

खरपतवार प्रबंधन- बुवाई के तुरंत बाद, अंकुरण से पूर्व पेंडीमेथालिन (30 ई.सी.) / 1 लीटर सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर

कीट प्रबंधन- फली छेदक तथा चूसक कीटों के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एस.एल.) / 220 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर

उर्वरक प्रबंधन- नाइट्रोजन 15 किलोग्राम एवं फॉस्फोरस 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर (किसानों द्वारा उपयोग हेतु)

एकीकृत फसल प्रबंधन पद्धतियों का ग्रीष्मकालीन मूंग की उपज पर प्रभाव

सारणी-1 में वर्ष 2020 से 2024 के दौरान क्लस्टर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों (सी.एफ.एल.डी.) में ग्रीष्मकालीन मूंग की उपज पर एकीकृत फसल प्रबंधन (आई.सी.एम.) पद्धतियों के प्रभाव को दर्शाया गया है। इस अवधि में कुल 105 प्रदर्शन 60 हेक्टेयर क्षेत्र में आयोजित किए गए, जिनमें संभावित उपज 11 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर आंकी गई। किसानों की परंपरागत पद्धति से औसत उपज 4.27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर रही, जबकि आई.सी.एम. प्रदर्शनी भूखंडों पर औसत उपज 5.64 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई। इस प्रकार, औसत उपज में लगभग 33.60 प्रतिशत की वृद्धि हुई। साथ ही, औसतन 1.37 क्विंटल प्रति हेक्टेयर का विस्तार अंतर पाया गया, जो यह दर्शाता है कि किसान उन्नत पद्धतियाँ अपनाकर अतिरिक्त उपज प्राप्त कर सकते हैं। वहीं, 5.21 क्विंटल प्रति हेक्टेयर का प्रौद्योगिकी अंतर सामने आया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तकनीकों में और सुधार तथा उनके बेहतर अनुपालन से वास्तविक और संभावित उपज के बीच की दूरी को और कम किया जा सकता है। ये परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि एकीकृत फसल प्रबंधन पद्धतियाँ ग्रीष्मकालीन मूंग की उत्पादकता बढ़ाने और उपज अंतर को घटाने में अत्यंत प्रभावी हैं।

जिले में ग्रीष्मकालीन मूंग की उन्नत किस्मों का क्षैतिज विस्तार

सारणी-2 में वर्ष 2020 से 2024 तक सवाई माधोपुर जिले में ग्रीष्मकालीन मूंग की उन्नत किस्मों के क्षैतिज विस्तार को दर्शाया गया है। वर्ष 2020 में किस्म आई.पी.एम.-2-14 को 20 हेक्टेयर क्षेत्र में प्रदर्शित किया गया, जिससे 100.53 क्विंटल बीज उत्पादन प्राप्त हुआ और क्षेत्रफल में 20 हेक्टेयर का विस्तार हुआ।वर्ष 2021 में किस्म आई.पी.एम.-205-7 को 10 हेक्टेयर में प्रदर्शित किया गया, जिससे 48.70 क्विंटल बीज उत्पादन हुआ तथा 55.13 हेक्टेयर क्षेत्र में अतिरिक्त विस्तार दर्ज किया गया। वर्ष 2022 में दोनों किस्मों (आई.पी.एम.-205-7 एवं आई.पी.एम.-2-14) को 10 हेक्टेयर क्षेत्र में प्रदर्शित किया गया, जिससे 52.10 क्विंटल बीज उत्पादन प्राप्त हुआ और क्षेत्रफल में 96.47 हेक्टेयर का विस्तार हुआ। इसके उपरान्त वर्ष 2023 और 2024 में किस्म एम.एच.-1142 को अपनाया गया, जिससे क्रमशः 57.77 क्विंटल तथा 59.87 क्विंटल बीज उत्पादन प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रफल में क्रमशः 154.74 हेक्टेयर (2023) और 193.78 हेक्टेयर (2024) तक उल्लेखनीय विस्तार हुआ। ये परिणाम स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रदर्शन स्थलों से गुणवत्तापूर्ण बीज की उपलब्धता ने जिले में ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती के क्षैतिज विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

किसानों की प्रतिक्रिया

ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती ने किसानों को ग्रीष्म ऋतु में अतिरिक्त आय का साधन प्रदान किया है, जब प्रायः खेत परती पड़े रहते हैं। प्रदर्शित की गई किस्मों की विशेषता समकालिक फली परिपक्वता रही, जिससे कटाई अपेक्षाकृत सरल और सुविधाजनक हो गई। किसानों ने बताया कि ग्रीष्मकालीन खेती में खरपतवार एवं रोगों का प्रकोप न्यूनतम रहता है, जिसके कारण उत्पादन लागत कम होती है और लाभांश अधिक प्राप्त होता है। उत्पादित मूंग का उपयोग केवल घरेलू दाल उपभोग के रूप में ही नहीं, बल्कि गुणवत्तापूर्ण बीज के रूप में भी व्यापक स्तर पर किसानों के बीच वितरित किया गया, जिससे बीज की उपलब्धता बढ़ी और कार्यक्रम की सततता सुनिश्चित हुई।

तालिका 1. ग्रीष्म मूंग की उपज पर समेकित फसल प्रबंधन प्रथाओं का प्रभाव

वर्ष	आईसीएम प्रदर्शन क्षेत्र (हे.)	आईसीएम प्रदर्शन की संख्या	संभावित उपज (क्विं. प्रति हे.)	औसत उपज (कि. ग्रा.प्रतिहे.)	औसत उपज (कि. ग्रा.प्रति हे.)	प्रभाव (प्रतिशत परिवर्तन)	विस्तार अंतर (क्विं.हे.)	प्रौद्योगिकीय अंतर (क्विं.प्रति हे.)
2020	20	25	11	3.9	5.02	29.02	1.07	5.97
2021	10	20	11	3.68	4.87	39.35	1.18	6.13
2022	10	20	11	4.3	5.96	37.62	1.59	5.03
2023	10	20	12	4.48	5.77	29.22	1.44	4.66
2024	10	20	12	5.0	6.6	32.80	1.59	4.3
कुल	60	105						
औसत				4.27	5.64	33.60	1.37	5.21

तालिका 2. जिले में ग्रीष्म मूंग की उन्नत किस्म का क्षैतिज प्रसार

वर्ष	क्षेत्रफल (हे.)	किस्म	बीज उत्पादन (क्विं.)	ग्रीष्म मूंग के क्षेत्रफल में वृद्धि (हे.)
2020	20	आई.पी. एम् 2–14,	100.53	20.00
2021	10	आई. पी. एम् 205–7	48.70	55.13
2022	10	आई. पी. एम् 205–7, आई.पी. एम् 2–14,	52.10	96.47
2023	10	एम् एच 1142,	57.77	154.74
2024	10	एम् एच 1142,	59.87	193.78

कृषि विज्ञान केंद्र के प्रयासों से ग्रीष्म मूंग का क्षेत्रफल 20 हे. से बढ़कर 198.7 हे. हो गया। इसके अतिरिक्त, किसान-से-किसान बीज आदान-प्रदान के माध्यम से 2024 तक ग्रीष्म मूंग का क्षैतिज प्रसार लगभग 650 हे. तक पहुँच गया।

ग्रीष्म मूंग पर सीएफएलडी के अंतर्गत क्षेत्रीय दृश्य एवं गतिविधियाँ

क्लस्टर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन ग्रीष्मकालीन मूंग वर्ष 2021

क्लस्टर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन ग्रीष्मकालीन मूंग वर्ष 2023

क्लस्टर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन ग्रीष्मकालीन मूंग वर्ष 2024

क्लस्टर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन ग्रीष्मकालीन मूंग वर्ष 2020

01/2025-26

जलवायु परिवर्तन और राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में खेती की चुनौतियाँ

सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

लक्ष्मी मीणा पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

डॉ. सोनम अग्रवाल विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय: भारत की खेती मानसून पर टिकी हुई है, मगर राजस्थान की भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ कृषि अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक कठिन साबित होती है। राज्य का अधिकांश भाग शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में स्थित है, जहाँ वर्षा कम होने के साथ-साथ असमान और अनियमित भी रहती है। पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में बरसात सालभर में सिर्फ 100:200 मिमी तक ही होती है, जिसके चलते यहाँ की खेती हमेशा अनिश्चितता और जोखिम से घिरी रहती है।परंपरागत रूप से राजस्थान के किसान बाजरा, ग्वार, चना, मूंग और मूंगफली जैसी सूखा-प्रतिरोधी फसलें उगाते रहे हैं और पशुपालन को अपनी आजीविका का मुख्य आधार बनाया है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से जलवायु परिवर्तन ने इस प्राकृतिक व्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया है।

आज राजस्थान के किसान अनियमित वर्षा, लगातार सूखा, बढ़ती गर्मी और ओलावृष्टि जैसी मुख्य मौसमीय परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं। मौसम का पूर्वानुमान लगाना अब लगभग असंभव सा हो गया है जिससे किसान बुवाई, सिंचाई और कटाई के समय का सही निर्णय नहीं ले पा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा असर उन छोटे और सीमांत किसानों पर पड़ता है, जिनकी आय पहले से ही सीमित होती है। इसके चलते फसल उत्पादन कम हो रहा है, पशुपालन संकट का सामना कर रहा है और किसान परिवारों का पलायन लगातार बढ़ रहा है। इन परिस्थितियों में आवश्यक है कि पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियों को आधुनिक तकनीकों के साथ जोड़ा जाए और किसान जलवायु-स्मार्ट खेती की ओर अग्रसर हों, ताकि राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में खेती भविष्य में टिकाऊ और लाभकारी बन सके।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्रभाव

असमान और अनिश्चित वर्षा : कभी अत्यधिक बारिश, तो कभी लगातार सूखा पड़ता है, जिससे खरीफ फसलों की बुवाई समय पर नहीं हो पाती और उत्पादन प्रभावित होता है।

तापमान में वृद्धि : गर्मी के मौसम में औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है, जिससे हीटवेव (लू) की अवधि लंबी हो जाती है और फसलों में नमी जल्दी समाप्त हो जाती है।

सूखा और बाढ़ के बढ़ते मामले : पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर जिलों में सूखे की घटनाएँ अधिक होती हैं, जबकि पूर्वी राजस्थान भारी मात्रा में वर्षा होने से बाढ़ की स्थिति बन जाती है।

ओलावृष्टि और अनियमित वर्षा : रबी के मौसम में अचानक ओलावृष्टि होने से गेहूँ, सरसों और चने की फसलें खराब हो जाती हैं।

कृषि पर सीधा प्रभाव

फसल उत्पादन में गिरावट: अब बाजरा, मूंग और चना जैसी परंपरागत फसलें भी अब पहले जैसा स्थिर उत्पादन नहीं दे पा रही हैं।

मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में गिरावट : लगातार सूखे और बढ़ते तापमान के कारण मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ घट रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी नमी बनाए रखने की क्षमता कम हो गई है।

पशुपालन पर प्रभाव : राजस्थान की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाने वाले पशुपालन को चरागाहों की कमी और चारे की घटती उपलब्धता के कारण गहरे संकट में डाल दिया है।

किसानों की आमदनी में उतार-चढ़ाव : किसानों की आय अब बारिश पर निर्भर हो गई है, जिससे उनकी आर्थिक हालत बिगड़ रही है और कर्ज का बोझ भी बढ़ रहा है।

किसान समुदाय की प्रमुख चुनौतियाँ

बढ़ती लागत और घटता लाभ : बीज, खाद और सिंचाई की लागत लगातार बढ़ रही है, लेकिन उत्पादन में स्थिरता की कमी ने किसानों की मुश्किलें और बढ़ा दी हैं।

पलायन की समस्या: ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की कमी के कारण किसान परिवारों का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन बढ़ रहा है।

किसानों के सामने बढ़ते जोखिम: मौसम का सही पूर्वानुमान न मिलने से किसान अपनी फसलों का प्रबंधन सही समय पर नहीं कर पाते है।

संसाधनों का अभाव : छोटे किसान अब भी सूक्ष्म सिंचाई, उन्नत बीज और आधुनिक कृषि उपकरणों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

संभावित समाधान

जल-संरक्षण तकनीकें: टांके, जोहड़ और नाड़ी जैसी पारंपरिक जल प्रणालियों को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़कर पानी की बचत और संरक्षण को बढ़ावा देना।

कम पानी में उगने वाली किस्में: कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा तैयार कम पानी में उगने वाली किस्मों का अधिक से अधिक किसानों तक प्रसार करना।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली: ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई अपनाकर जल संरक्षण के साथ-साथ फसल फसल उत्पादन बढ़ाना।

फसल विविधीकरण: केवल अनाज पर निर्भरता कम करके बागवानी, सब्जी और औषधीय फसलें उगाने के लिए प्रोत्साहित करना।

कृषि बीमा: प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसी सरकारी योजनाओं का लाभ अधिक से अधिक किसानों तक पहुँचाना।

सामूहिक प्रयास और सहभागिता : ग्राम स्तर पर जल संरक्षण और आपदा प्रबंधन में सामूहिक भागीदारी को सशक्त बनाना।

सरकार की नीति और भूमिका: राजस्थान सरकार ने हाल ही में अपना पहला कृषि बजट पेश किया है, जिसमें किसानों के कल्याण हेतु विभिन्न योजनाओं शामिल की गई हैं। जलवायु परिवर्तन से निपटने में "मुख्यमंत्री किसान साथी योजना", "मुख्यमंत्री फसल बीमा" और "मिशन लघु सिंचाई" जैसी राज्य स्तरीय योजनाएँ मददगार साबित हो रही हैं। साथ ही, राष्ट्रीय स्तर पर NICRA (National Innovations in Climate Resilient Agriculture) जैसी योजनाएँ किसानों को जलवायु अनुकूल कृषि प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

निष्कर्ष: जलवायु परिवर्तन राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन चुका है। किसान लगातार बदलती परिस्थितियों और अनिश्चितताओं का सामना कर रहे हैं। ऐसे में समाधान केवल किसी एक पक्ष से नहीं हो सकता; इसे किसान, वैज्ञानिक, सरकार और समाज के सामूहिक प्रयासों से ही संभव बनाया जा सकता है। यदि पारंपरिक जल संरक्षण प्रथाओं को आधुनिक तकनीक एवं नीतिगत समर्थन के साथ जोड़ा जाए, तो राजस्थान के किसान न केवल जलवायु परिवर्तन का सामना कर पाएंगे, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थायी और सुरक्षित खेती का रास्ता भी तैयार करेंगे।

12/2025-26

उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 भारत में उर्वरकों की बिक्री और गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए कानूनी ढांचा

आशीष कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर) APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान)

परिचय

भारत में कृषि क्षेत्र का पेट भरने और सामाजिक-आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। इस विशाल देश में, जहाँ कृषि उत्पादन का लगभग 60% क्षेत्रीय एवं घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करता है, वहीं उर्वरकों की भूमिका अत्यंत अहम है। इसलिए, भारत सरकार ने उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 को लागू किया ताकि उर्वरकों की बिक्री और गुणवत्ता को सुव्यवस्थित तथा नियंत्रित किया जा सके। यह आदेश निर्माण, विपणन, वितरण और निगरानी के प्रमुख प्रावधानों के माध्यम से प्रामाणिकता और गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। इस लेख में, हम इस आदेश के विविध पहलुओं, उससे जुड़ी कायदे-धाराओं और उसके क्रियान्वयन पर विस्तार से विचार करेंगे।

उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 का इतिहास और संशोधन

सबसे पहले, यह समझना आवश्यक है कि यह आदेश क्यों अस्तित्व में आया। 1985 में, भारत सरकार ने इस आदेश को पारित किया, ताकि उर्वरकों के संदर्भ में एक मजबूत और प्रभावी कानूनी ढांचा निर्मित किया जा सके। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पादन में वृद्धि, नई कृषि तकनीकों का आगमन और उर्वरक उद्योग में बढ़ते प्रतिस्पर्धा ने सरकार को सक्रिय कदम उठाने को प्रेरित किया। तब से, इस आदेश में अनेक संशोधन किए गए हैं, जिनमें मुख्यतः गुणवत्ता मानकों का सख्ताई से पालन, मूल्य नियंत्रण, एवं गुणवत्ता प्रमाणीकरण सुविधाओं का विस्तार शामिल है। इन संशोधनों का लक्ष्य था, किसानों को गुणवत्तापूर्ण उर्वरक प्राप्त होने में सहायता करना और अनियमितताओं को रोकना। अलग-अलग समय पर, सरकार ने उर्वरक उत्पादकों, विक्रेताओं और फसली सलाहकारों के लिए कई दिशानिर्देश और प्रावधान प्रस्तुत किए हैं।

उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 का प्रमुख उद्देश्य

यह आदेश मुख्य रूप से तीन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाया गया है। पहला, गुणवत्ता का संरक्षण यह सुनिश्चित करता है कि बाजार में उपलब्ध उर्वरक मानकों के अनुरूप हों। दूसरा, बिक्री एवं वितरण प्रणाली को सर्वथा पारदर्शी और नियंत्रित बनाना। तीसरा, किसानों के हितों की रक्षा करते हुए उर्वरकों का सही एवं उचित मूल्य पर वितरण सुनिश्चित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार ने कई कदम उठाए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है, लाइसेंसिंग प्रक्रिया, गुणवत्ता नियंत्रण, और सख्त निरीक्षण। साथ ही, इन प्रावधानों से यह सुनिश्चित होता है कि नकली या मिलावटी उर्वरक बाजार में न आए, और किसानों को बीमारियों और हानि से सुरक्षा मिले।

उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 के मुख्य प्रावधान

यह आदेश निरंतर विकसित हो रहा है और इसमें अनेक प्रावधान सम्मिलित हैं। सबसे पहले, लाइसेंस प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यहाँ, उर्वरक उत्पादकों एवं विक्रेताओं को, सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य है। लाइसेंस प्रक्रिया पारदर्शी बनाने के लिए, आवेदन पत्र, शैक्षणिक प्रमाणपत्र और वित्तीय विवरण की जांच की जाती है। इसके अलावा, गुणवत्ता नियंत्रण की व्यवस्था बेहद कठोर है। हर उर्वरक को मानकों के अनुसार परीक्षण कराना समाप्त किया जाता है, ताकि गुणवत्ता का स्तर सुनिश्चित किया जा सके। इसके साथ ही, परीक्षण रिपोर्ट और प्रमाणीकरण सुरक्षित किया जाता है। आदेश में मूल्य नियंत्रण भी प्रमुख भूमिका निभाता है। सरकार नियंत्रित मूल्य तय करती है, जिससे बाजार में मूल्यवृद्धि न हो। इसके पीछे मकसद है, डिजिटल और पारदर्शी मूल्य निर्धारण प्रक्रिया बनाए रखना। अतः, विक्रेताओं और एक्सपोर्टरों को निर्धारित मूल्य से अधिक कीमत पर उर्वरक बेचने की अनुमति नहीं है। परीक्षा-प्रक्रिया और निरीक्षण विफलता पर सख्त दंड प्रावधान भी है, ताकि अनुचित व्यापारिक प्रथाएं रोकी जा सकें। साथ ही, सरकार ने अपने आदेश में प्रावधान किया है कि सभी उर्वरक और उनके पैकेजिंग पर आवश्यक लेबलिंग हो। यह लेबलिंग क्वालिटी, उत्पादन दिनांक, मानक, एवं प्रयोग की सलाह जैसी जरूरी जानकारी का विवरण प्रदान करती है। इससे किसानों को सही और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होती है, जिससे वे बेहतर निर्णय ले सकते हैं। इन लेबलिंग प्रावधानों का उद्देश्य है, नकली या मिलावटी उत्पादों से बचाव और बाजार में विश्वास बनाए रखना।

प्रावधानों की निगरानी और कार्यान्वयन

यह आदेश केवल दस्तावेज़ ही नहीं है, बल्कि इसका प्रभावी क्रियान्वयन भी आवश्यक है। इसीलिए, भारत में केंद्रीय उर्वरक नियंत्रक और राज्य स्तर पर नियंत्रक कार्यालय स्थापित हैं। ये अधिकारी नियमित जांच, निरीक्षण और टेस्टिंग का कार्य करते हैं। इसके साथ ही, निरीक्षण अधिकारी जागरूकता अभियान चलाते हैं, ताकि विक्रेताओं और उत्पादकों के बीच सही भावना विकसित हो। आदेश का उल्लंघन करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई की जाती है। इनमें जुर्माना, लाइसेंस रद्द करना और मुकदमे भी शामिल हैं। इसके साथ ही, विनियमित क्षेत्रों की विशेष निगरानी की जाती है ताकि कोई भी अनुचित व्यापार न हो। सरकार ने ऑनलाइन रिपोर्टिंग सिस्टम भी स्थापित किया है, जिससे शिकायतें और निरीक्षण रिपोर्ट तुरंत संबंधित प्राधिकारी तक पहुंचाई जा सकती हैं।

आधुनिक तकनीक का उपयोग और निगरानी

वर्तमान समय में, उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 को और प्रभावी बनाने के लिए तकनीकी प्रगति का सहारा लिया गया है। डिजिटल ट्रैकिंग, रियल टाइम निगरानी और डेटा एनालिटिक्स का प्रयोग बढ़ाया गया है। इससे पता चलता है कि बाजार में नकली या मानकों के उल्लंघन वाले उत्पादों का प्रवेश रुक रहा है। साथ ही, मोबाइल ऐप और वेबसाइट की सहायता से किसानों को तुरंत जानकारी मिल जाती है। इसके अलावा, सरकारी निरीक्षक भी अब स्मार्ट उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं, जो घंटों में जांच और निरीक्षण का कार्य कर सकते हैं। इस तरह, आदेश का कार्यान्वयन तेज़, पारदर्शी और प्रभावी हो गया है। प्रौद्योगिकी की मदद से, संरक्षण बल अधिक मजबूत हुआ है, और किसानों के हितों की रक्षा भी बेहतर ढंग से की जा रही है। ये सब प्रयास, उर्वरक की गुणवत्ता के प्रति जागरूकता बढ़ाते हैं और बाजार में संतुलन बनाए रखते हैं।

भूमिका और महत्व

उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 का भारत में बहुत बड़ा महत्व है। यह आदेश केवल कागजी कार्रवाई नहीं है या फिर केवल नियमों का संग्रह नहीं है; बल्कि यह किसानों, उद्योगपतियों और पूरे देश की अर्थव्यवस्था का आधार है। यह आदेश सुनिश्चित करता है कि उर्वरक सही समय पर सही मात्रा में उपलब्ध हो। इससे न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि उर्वरक से जुड़ी आर्थिक हानियों को भी रोका जाता है। अतः, यह व्यवस्था किसान की मेहनत को फलदायी बनाती है। उन्हें भरोसा रहता है कि उन्हें गुणवत्ता युक्त और मूल्य नियंत्रित उत्पाद मिलेगा। इससे खेती की पैदावार में वृद्धि होने के साथ ही, देश की खाद्य सुरक्षा भी मजबूत होती है। इसीलिए, सरकार की निगरानी प्रणाली और कानूनी उपाय, दोनों मिलकर भारतीय कृषि को स्थिर और विकसित बना रहे हैं।

सरकार की प्रतिबद्धता और भविष्य की दिशा

आगे बढ़ते हुए, भारत सरकार ने यह सुनिश्चित किया है कि उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 को निरंतर अद्यतन किया जाए। इसके साथ ही, नई तकनीक, वैश्विक मानकों एवं किसानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संशोधन होते रहते हैं। सरकार का यह मानना है कि जब तक उत्पादन प्रणाली पारदर्शी, गुणवत्ता मानकों के अनुरूप और जब तक बाजार में उचित निगरानी होती रहेगी, तब तक भारत की कृषि का विकास सुनिश्चित रहेगा। समानांतर, किसानों को लगातार जागरूकता अभियानों का भी आयोजन किया जाता है। उन्हें समझाया जाता है कि कैसे गुणवत्ता के उर्वरक का प्रयोग करें, कैसे नकली उत्पादों से बचें, और बाजार में मूल्य निर्धारण के बारे में जागरूक रहें। इन प्रयासों का मूल उद्देश्य है कि भारत अपने कृषि-ब्लूम को बनाए रख सके और टिकाऊ विकास की दिशा में कदम बढ़ाए।

समापन

अंत में, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1985 भारत के कृषि ढांचे का अभिन्न हिस्सा है। यह आदेश न केवल उर्वरकों की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में भी सहायक है। यद्यपि, अभी भी चुनौतियाँ मौजूद हैं, जैसे नकली उत्पादों का प्रवेश और निरीक्षण में तेजी, परंतु, सरकार इसके निरंतर सुधार और तकनीकी विकास के साथ आगे बढ़ रही है। कुल मिलाकर, यह आदेश भारतीय कृषि क्षेत्र के सतत विकास के लिए एक मजबूत स्तंभ का कार्य करता है। इसलिए, हमें इस व्यवस्था का सम्मान करना चाहिए और इसका संरक्षण करना चाहिए ताकि भविष्य में भी भारत की आत्मनिर्भरता और खाद्य सुरक्षा मजबूत रह सके।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ डॉ. लाल चंद यादव एवं डॉ. सुवा लाल यादव
सहायक आचार्य, रेफल्स विश्वविद्यालय, नीमराणा, (राजस्थान)

समावेशी विकास हेतु कृषि एवं किसान कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता

समावेशी विकास के लिये दस संकल्प: राजस्थान सरकार द्वारा प्रस्तुत संशोधित बजट 2024-25 में "सबका साथ, सबका विकास-सभी के लिये समावेशी विकास" का स्पष्ट दृष्टिकोण सामने रखा गया है। इस सिद्धांत की परिकल्पना अमृत कालखण्ड- विकसित राजस्थान 2047 के अंतर्गत पाँच वर्षीय कार्ययोजना के रूप में की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य राज्य में आर्थिक, सामाजिक और कृषि संबंधी विकास को एक व्यापक रूप देना है, जिसमें प्रत्येक वर्ग, क्षेत्र और व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित हो। इस योजना में दस प्रमुख संकल्प शामिल किए गए हैं, जो न केवल कृषि और किसान कल्याण तक सीमित हैं बल्कि ग्रामीण आजीविका, सामाजिक सुरक्षा और सतत विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देंगे।

1. कृषि एवं किसान कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता

राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का 26.92% योगदान है। वर्ष 2011-12 में जहाँ इस क्षेत्र का जीएसवीए रु. 1.19 लाख करोड़ था, वहीं 2024-25 में इसके रु. 4.23 लाख करोड़ तक पहुँचने का अनुमान है। यह वृद्धि केवल उत्पादन में वृद्धि का संकेत नहीं देती बल्कि किसानों के जीवन स्तर में भी सुधार का द्योतक है। सरकार का संकल्प है कि कृषि क्षेत्र को और अधिक मजबूत करने के लिए नीतिगत सुधार, तकनीकी नवाचार और वित्तीय सहयोग उपलब्ध कराया जाए।

2. खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि: वर्ष 2024-25 में राज्य का खाद्यान्न उत्पादन 267.67 लाख मीट्रिक टन होने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 10.67 प्रतिशत अधिक है। यह उपलब्धि जलवायु चुनौतियों और पानी की कमी जैसी कठिनाइयों के बावजूद हासिल की जा रही है। गेहूँ, जौ, सरसों और दालें राज्य की मुख्य फसलें हैं, जिन्हें और बढ़ावा देने के लिए अनुसंधान, आधुनिक तकनीकों और किसानों को बेहतर बीज उपलब्ध कराने पर बल दिया गया है।

3. तिलहन एवं दलहन संवर्धन: राज्य तिलहन और दलहन का एक महत्वपूर्ण उत्पादक है। हालांकि वर्ष 2024-25 में तिलहन उत्पादन 96.17 लाख मीट्रिक टन अनुमानित है, जो पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 5 प्रतिशत कम है। इस कमी को संतुलित करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता, उत्पादन तकनीकों का विस्तार और न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद को बढ़ावा देना आवश्यक है। सरकार का संकल्प है कि इन फसलों के लिए विशेष प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की जाएँ।

4. नकदी फसलों का संतुलित विकास: राज्य की अर्थव्यवस्था में गन्ना और कपास जैसी नकदी फसलें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्ष 2024-25 में गन्ने का उत्पादन 21.21% बढ़ने का अनुमान है, जबकि कपास का उत्पादन 29.61% घटने की संभावना है। सरकार का लक्ष्य है कि उत्पादन संतुलन बनाए रखते हुए किसानों को प्रोत्साहित किया जाए और वैकल्पिक बाजारों तक उनकी पहुँच सुनिश्चित की जाए।

5. किसानों की सामाजिक सुरक्षा: लघु और सीमांत किसानों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए सरकार ने सम्मान पेंशन योजना लागू की है। इसके तहत 55 वर्ष से अधिक आयु की महिला किसानों और 58 वर्ष से अधिक आयु के पुरुष किसानों को रु.1,150 प्रति माह पेंशन दी जा रही है। वर्ष 2024-25 में 2,09,530 किसानों को इस योजना से लाभान्वित किया गया है। इसके अतिरिक्त मुख्यमंत्री किसान सम्मान निधि योजना के अंतर्गत किसानों को प्रतिवर्ष रु. 2,000 अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।

6. बीज स्वावलंबन और तकनीकी विस्तार: मुख्यमंत्री बीज स्वावलंबन योजना के अंतर्गत वर्ष 2024-25 में खरीफ फसलों के लिए 19,836 क्विंटल और रबी फसलों के लिए 42,000 क्विंटल बीज वितरित किए गए। इसका उद्देश्य किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना और उत्पादन बढ़ाना है। साथ ही, आधुनिक कृषि पद्धतियों का विस्तार भी इस संकल्प का हिस्सा है।

7. जोखिम प्रबंधन और बीमा सुविधा: प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) के तहत वर्ष 2024-25 में किसानों को रु. 2,777 करोड़ के क्लेम का भुगतान किया गया है। यह योजना प्राकृतिक आपदाओं और उत्पादन हानि से किसानों को बचाव का कवच प्रदान करती है। सरकार का संकल्प है कि किसानों को समय पर बीमा का लाभ उपलब्ध कराया जाए ताकि वे जोखिमों से सुरक्षित रह सकें।

8. सिंचाई संसाधनों का विस्तार: राजस्थान जैसे अर्ध-शुष्क राज्य में सिंचाई संसाधनों का विस्तार कृषि विकास का आधार है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) के तहत वर्ष 2024-25 में 34,469 हेक्टेयर क्षेत्र में ड्रिप एवं मिनी स्प्रिंकलर और 56,727 हेक्टेयर क्षेत्र को स्प्रिंकलर सिंचाई से आच्छादित किया गया। इस पर ?123.79 करोड़ व्यय किए गए हैं। इससे जल उपयोग दक्षता बढ़ेगी और किसानों की उत्पादकता में सुधार होगा।

9. किसानों को अतिरिक्त समर्थन मूल्य: 'राजस्थान कृषक समर्थन योजना' के अंतर्गत राज्य सरकार ने किसानों को बोनस भुगतान के रूप में रु. 150.66 करोड़ वितरित किए हैं। यह राशि प्रति क्विंटल रु. 125 की दर से न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) से ऊपर दी गई है। इस कदम का उद्देश्य किसानों को प्रोत्साहित करना और उनकी आय में वृद्धि सुनिश्चित करना है।

10. सतत एवं समावेशी विकास की दृष्टि: राजस्थान सरकार का अंतिम और व्यापक संकल्प है कि कृषि उत्पादन केवल बढ़े ही नहीं बल्कि वह टिकाऊ और जलवायु-अनुकूल भी बने। पोषक-अनाज, ग्वार और बाजरा जैसी फसलों को बढ़ावा देकर पोषण सुरक्षा और पर्यावरणीय संतुलन सुनिश्चित करना इसी दिशा में एक प्रयास है।

निष्कर्ष: इन दस संकल्पों के माध्यम से राजस्थान सरकार ने स्पष्ट कर दिया है कि उसका ध्यान केवल आर्थिक वृद्धि पर नहीं बल्कि समावेशी और टिकाऊ विकास पर भी है। कृषि क्षेत्र में लचीलापन और उत्पादन क्षमता बढ़ाने के साथ-साथ किसानों की सामाजिक सुरक्षा, जोखिम प्रबंधन, सिंचाई संसाधनों का विस्तार और आधुनिक तकनीकों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है। यह संकल्प राजस्थान को 2047 तक एक विकसित और आत्मनिर्भर राज्य बनाने की दिशा में एक सशक्त आधार प्रदान करेंगे।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
04/2025-26

अनिता सैनी (शोध छात्रा) उद्यान विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

दीपक कुमार सैनी (फार्म मैनेजर) कृषि महाविद्यालय, कोटपूतली

सरसों के प्रमुख कीट व रोग एवं उनका समन्वित प्रबंधन

सरसों फसल में कई जैविक, अजैविक तनावों की चुनौती रहती है, जो संभावित उपज और किसानों के खेत में प्राप्त होने के बीच व्यापक अंतर के लिए जिम्मेदार है। रोगों और कीटों के गंभीर प्रकोप से बीज की मात्रा, गुणवत्ता और तेल की मात्रा में भारी गिरावट आती है। ये फसलें 167 जैविक तनावों से प्रभावित होती हैं, जिनमें 44 रोगजनक, 87 कीट और 36 खरपतवार, साथ ही 19 अजैविक कारक शामिल हैं। क्रूसिफर्स को प्रभावित करने वाले 44 रोगजनकों में से, 16 को उनके व्यापक भौगोलिक वितरण, पोषक क्षेत्र, क्षति की गंभीरता और उनके प्रबंधन के लिए आवश्यक पर्याप्त संसाधनों के कारण प्रमुख माना जाता है। कुछ महत्वपूर्ण रोग और कीट पौधे के विकास के विभिन्न चरणों में फसल को औसतन 25 प्रतिशत नुकसान पहुंचाते हैं, जो अंकुर चरण (मृदुरोमिल आसिता, सफेद रोली और चितकबरा कीट), पत्ती विकास चरण (सफेद रोली, काला धब्बा), तना बढ़ाव (काला धब्बा) से शुरू होता है। पुष्पन अवस्था (तना गलन, माँहू), रेशमी विकास और पकने की अवस्था (चूर्णिल आसिता फफूंदी, चितकबरा कीट) और अन्य रोग और कीट होते हैं, जो कभी-कभी फसल को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। वर्ष 2009 से 2010 के दौरान, रेपसीड सरसों की खेती के लिए समर्पित क्षेत्र, इसके उत्पादन और उत्पादकता के साथ, क्रमशः 5.6 मिलियन हे., 6.6 मिलियन टन और 1183 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर उपज थी। वर्ष 2024-25 की अवधि तक, ये आँकड़े उल्लेखनीय रूप से बढ़कर 8.8 मिलियन हे., 12.606 मिलियन टन और 1461 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर उपज हो गए हैं।

प्रमुख कीट:

माँहू: कीट प्रौढ़ व शिशु दोनों पौधों के विभिन्न भागों जैसे पुष्पक्रम, पत्ती, तना व फलियों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। उग्र प्रकोप की दशा में पौधा बौना रह जाता है, सूख जाता है व फलियें नहीं बनती हैं। अधिक प्रकोप के कारण उपज में 50 से 80 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। दानों में तेल की मात्रा 10 से 15 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

पेन्टेड बग या चितकबरा कीट: यह 5-7 मिलीमिटर चौड़ी काले रंग की बग है। इसके व्यस्क व शिशु दोनों ही समूह में एकत्रित होकर पौधो से रस चूसते हैं जिससे पौधे छोटी अवस्था में कमजोर व पीले पडकर सूख जाते हैं। अंकुरण से एक सप्ताह के भीतर अगर इनका आक्रमण होता है तो पूरी फसल चौपट हो जाती है और दोबारा बुवाई करनी पडती है।

लीफ माइनर (मटर का पर्णखनक): यह कीट पत्तियों के ऊपरी और निचले भाग के बीच सुरंगें बनाकर फसल को नुकसान पहुंचाता है। कीट की पहचान मुख्य रूप से पत्ती पर बनी सफेद-चांदी जैसी घुमावदार सुरंगों से होती है, जिनमें काला मल दिखाई देता है। पत्तियों पर अनियमित, घुमावदार सफेद सुरंगें बन जाती हैं। शुरुआत में छोटी, बाद में फैल जाती हैं। एक पीढ़ी 2-3 सप्ताह में पूरी हो जाती है। गर्म मौसम में साल में 7-10 पीढ़ियां हो सकती हैं। वयस्क मक्खी अंडे पत्ती की निचली सतह पर देती है। लार्वा 3-5 दिनों में सुरंग बनाता है, फिर मिट्टी में जाकर प्यूपा बनता है। प्रभावित पत्तियां पीली पड़ जाती हैं, सूख जाती हैं और समय से पहले झड़ जाती है। प्रकाश संश्लेषण कम होने से पौधा कमजोर हो जाता है, वृद्धि रुक जाती है, और फसल की पैदावार 20-30% तक कम हो सकती है। गंभीर संक्रमण में पौधे झुलस जाते हैं, और फल या बीज छोटे रह जाते हैं। संक्रमण गर्मी और नमी वाले मौसम में ज्यादा होता है।

आरा मक्खी: इस कीट की सूंडी ही फसल को नुकसान पहुँचाती है। मादा पत्तियों के किनारे की कोशिकाओं में एक-एक करके अण्डे देती है। अण्डो से 5-7 दिन में मटमैली लटें निकलती है। लटें पत्तियों को तेजी से खाती है जिससे पत्तियों में अनेक छेद हो जाते है। तीव्र प्रकोप में पत्तियों के स्थान पर शिराओं का जाल ही शेष रह जाता है। यह कीट अक्टूबर में दिखाई देता है व नवंम्बर से दिसम्बर तक काफी नुकसान करता है।

बालों वाली सुंडी: बालों वाली सुंडी का शरीर काला पीला और लंबे बालों से ढका हुआ होता है। पत्ता गोभी की सुंडी काले धब्बों के साथ हरे रंग की होती है। दोनों कीड़ों के वयस्क पत्तियों पर सामूहिक रूप से अंडे देते हैं। बालों वाली सुंडी का आक्रमण सामान्यतः सितंबर-अक्टूबर के महीने में तोरिया पर होता है। जबकि देश के ठंडे और आर्द्र क्षेत्रों में आम तौर पर गोभी की सुंडी का हमला देखा जाता है। दोनों कीटों के सुंडियां पत्तियों के सामूहिक रूप से खाती हैं। चूंकि यह कीट सामूहिक रूप से अंडे देते हैं और सुंडिया पत्तियों पर समूहों में खाती हैं इसलिए, नियमित रूप से फसल का सर्वेक्षण करें और अंडे और लार्वा को इकट्ठा करने के बाद नष्ट कर दें।

तना गलन: तने के निचले भाग में मटमैले या भूरे रंग के फफोले दिखाई देते हैं। प्रायः यह फफोले रूई जैसे सफेद जाल से ढके होते हैं। पत्तों पर भी इसके लक्षण दिखाई देते हैं। ये फफोले तने व पत्तों को ढक देते हैं कि पौधा मुरझाकर लटक जाता है तथा अंत में सूख जाता है। जब रोग की शुरूआत पत्ती से होती है, तब पत्ती मुरझाकर नीचे की ओर लटक जाती है, फिर धीरे-धीरे रोग तने पर भी फैल जाता है। इससे पौधा बौना हो जाता है और समय से पहले ही पक जाता है। रोग के स्क्लेरोशिया तने के भीतरी भाग में पनपते हैं, बाहर से देखने पर उसका आभास भी नहीं हो पाता, कई बार ये स्क्लेरोशिया तने की ऊपरी सतह पर भी दिखाई देते हैं।

मृदुरोमिल आसिता रोगः आर्द्र मौसम में 10-15 दिन के बीजपत्रीय पत्तियों की निचली सतह पर सफेद मृदुरोमिल वृक्षीय वृद्धि दिखाई देते है। जो मिलकर अनियमित आकार ग्रहण कर लेते हैं।

चूर्णिल आसिताः इस रोग में पुरानी पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे धब्बे तथा पत्तियों की निचली सतह पर इन धब्बो की नीचे सफेद रोयेदार फफूंदी उग आती है। धीरे-धीरे पूरी पत्ती पीली होकर सूख जाती है। यह गहरे सफेद चूर्ण के गोल धब्बे पत्ति, तना और फलियों पर बनते हैं। यह बीमारी प्रायः देर से तापक्रम के बढ़ने पर आती है।

काला धब्बा: सरसों में बुआई के एक माह पश्चात पत्तियों पर हल्के भूरे से काले रंग के गोलाकार धब्बे आल्टनैरिया ब्रेसिकी नामक रोग जनक के प्रकोप से बनते हैं। इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं जो गोल छल्ले के रूप में पत्तियों पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। तीव्र प्रकोप की दशा में धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे पूरी पत्ती झुलस जाती है। यह रोग उत्पादन को 75 प्रतिशत तक प्रभावित करता है।

सफेद रतुआ: यह रोग 30 से 40 दिन की फसल पर पत्तियों की निचली सतह पर सफेद एकल फफोले बनते हैं जिससे पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं। फूल आने की अवस्था में पुष्पक्रम विकृत हो जाने से टहनी फूल कर अनियमित प्रकार की मांसल संरचना बनाती है जिस पर भी फफोले पाये जाते हैं जिससे कोई भी फली नहीं बनती है। यह रोग उत्पादन को 47% तक प्रभावित करता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन

राई-सरसों का उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिए इस प्रकार की तकनीकें काम में ले जिससे शस्य परिस्थितिकी तंत्र में सम्यक संतुलन बना रहे और उपज में हानि कम से कम हो। **इसके लिए निम्न उपाय अपना सकते हैं:**

* ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें। राई सरसों की बुआई उपयुक्त समय पर 10-25 अक्टूबर तक करें।

* प्रमाणीकृत, स्वस्थ बीजों का प्रयोग करना चाहिये। संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। खेत को खरपतवार रहित रखें व उचित फसल चक्र अपनायें एक ही फसल की बुवाई लगातार नहीं करनी चाहिए।

* सफेद रतुआ प्रतिरोधी किस्में बी.पी.एम. -11, बी.पी.एम.-1825 का उपयोग करें। फसल में पहली सिंचाई 35-40 दिन के बाद तथा आवश्यकता होने पर दूसरी सिंचाई फली में दाना बनते वक्त करें। पानी की सही मात्रा का इस्तेमाल करे।

रासायनिक नियंत्रण

* चितकबरा कीट से बचाव के लिए इमिडाक्लोप्रिड 75 प्रतिशत डब्लूपी का 6 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए तथा कीट का प्रकोप होने पर 20-25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से 1.5 प्रतिशत क्यूनालफॉस चूर्ण का छिड़काव बीज अंकुरण के समय करें। * चेंपा तथा मटर पर्णसुरंग कीट यदि कम मात्रा में उपस्थित है तो 2% नीम तेल (20 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करें परन्तु जब चेंपा की संख्या आर्थिक संख्या से अधिक हो तो डाईमेथियोएट (रोगोर) 30 पायस सांध्रण द्रव्य के एक लीटर को 600 से 800 लीटर पानी का थियामेथॉक्साम 25 डब्लू जी 0.1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। * आरा मक्खी, बिहार की रोएदार सुंड़ी, पत्तागोभी की सुंडी तथा चितकबरा कीट के उग्र प्रकोप से बचाव के लिए मेलॉथियान 50 ई.सी. पायस साधण की 500 मिली को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति है. छिड़काव करना चाहिए। * सफेद रोली का प्रकोप होने पर रिडोमिल एम जेड फॅफूदी नाशक का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। * सफेद रतुआ एवं मृदुरोमिल आसिता रोग के नियंत्रण हेतु मेटालैक्सिल 35 एस डी की 6.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए। * काला धब्बा, सफेद रतुआ एवं चूर्णिल आसिता रोग के नियंत्रण हेतु रोवराल 50 डब्लूपी की 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर लगभग 600-750 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए। * काला धब्बा और तना गलन रोग को कम करने के लिए बुवाई के 40 और 70 दिनों बाद टेबुकोनाजोल 50 प्रतिशत, ट्राइफ्लॉक्सिस्ट्रोबिन 2% का 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करके रासायनिक नियंत्रण करना चाहिए तथा बुवाई के 60-70 दिनों के बाद हेक्साकोनाजोल 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव तना गलन प्रबंधन के लिए बेहतर विकल्प पाया गया।

बायोपेस्टीसाइड (जैव कवक नाशी): * वर्टिसिलियम लेकेनी अथवा ब्यूवेरिया बेसियाना का 2 ग्राम प्रति लीटर दर से छिड़काव करना चाहिए इसके बाद 10 दिनों के उपरान्त दूसरा छिड़काव करना चाहिए। * अजेडिरचटिन 300 पीपीएम का 5 मिली प्रति लीटर की दर से तथा इसके बाद 10 दिनों के बाद दूसरा छिड़काव और जरूरत पर तीसरा छिड़काव करना चाहिए। * भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु एकीकृत रोग प्रबंधन के लिए ट्राइकोडर्मा हरजियानम से 10 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोपचार, ट्राइकोडर्मा (1 किग्रा प्रति 50 किग्रा गोबर की खाद) का आखिरी जुताई पर मृदा में में प्रयोग, बुवाई के समय जिंक सल्फेट का 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर सल्फर (स्थान विशेष की अनुसंशानुसार) बोरोन (10 किग्रा बोरेक्स प्रति हेक्टेयर) की दर से बुवाई के समय प्रयोग, 45-20 सेंमी की लाइन बुवाई, 25 दिसंबर से 15 जनवरी के दौरान सिंचाई न करना गलन रोग के प्रकोप को कम करता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. कैलाश चन्द्र अहीर सहायक आचार्य (कीट विज्ञान)
कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, अकलेरा (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

डॉ. सीताराम यादव सहायक आचार्य (कीट विज्ञान)
राजकीय कृषि महाविद्यालय, नावा (राज.)

राजेन्द्र गोचर सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान)
कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, अकलेरा (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

गेहूँ के प्रमुख नाशीकीट एवं उनका प्रबन्धन

गेहूँ भारत की एक मुख्य खाद्यान्न फसल है तथा रबी ऋतु में बडे पैमाने पर इसकी खेती की जाती है। इस प्रमुख खाद्यान्न फसल की गुणवता तथा उत्पादन पर असर डालने वाले कारकों में समय-समय पर नाशीकीटों द्वारा होने वाले नुकसान का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। अतः इन प्रमुख नाशीकीटों का सही प्रकार से तथा सही समय पर नियंत्रण करना बहुत ही जरूरी होता है। गेहूँ के नाशीकीटों के प्रबन्धन में यह लेख किसान भाइयों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

1. दीमक (उदई): दीमक (उदई) एक सामाजिक कीट है, इसे उदई के नाम से भी जाना जाता है, उदई सर्वभक्षी एवं सर्वव्यापी कीट है। इसकी कॉलोनी में बहुत से श्रमिक, सिपाही, राजा व रानी होते है।

पोषक पौधे: गेहूँ, जौ, कपास, मूँगफली, बैंगन, आम, मिर्च, अमरूद, नींबू, अनार इत्यादि हैं। वैसे यह सभी हरी व सूखी वनस्पति को जिसमें सेल्यूलोज होता है, खाती है। भण्डारगृहों में भी भण्डरित अनाजों को नुकसान पहुँचाते है।

जीवन चक्र: इस कीट के जीवन चक्र में वैसे तो तीन अवस्थायें क्रमशः अण्डा, शिशु व प्रौढ़ होती है परंतु प्रौढ़ कीट से विभिन्न रूपता में जो कि क्रमशः पंखधारी नर-मादा, श्रमिक, सैनिक, राजा और रानी होते हैं। बरसात (जून-जुलाई) के शुरू होते ही पंखधारी नर और मादा अपने घरों से निकलकर उडान भरते है, जिसे मैथुनी उडान कहते है। यह इनकी पहली और अन्तिम उडान होती है, ये मैथुन करते है इसी बीच इनके पंख टूटकर गिर जाते हैं। नर-मादा की जोड़ी साथ-साथ जमीन पर गिरती है। वे वहीं पर जमीन में कई फीट नीचे जाकर घर बनाती है। ये ही क्रमशः राजा और रानी में परिवर्तित हो जाते है। रानी बढ़कर 7-8 से.मी. लम्बी हो जाती है तथा पेट अण्डों की अधिकता के कारण फूल-जाता है। रानी पहले तो कम संख्या में अण्डे देती है परन्तु बाद में 300 से लेकर 20,000 अण्डे प्रतिदिन और अनुकूल परिस्थितियों में 40,000 व इससे भी अधिक अण्डे देती हुई पाई गई है। अण्डे हल्के पीले रंग के होते है। अण्डे वातावरण के अनुसार 20-25 दिनों में फूटते है। अंडों से सफेद, पीले रंग के शिशु निकलते है। जिनकी लम्बाई 1 मि.मी. होती है। प्रारंभ में ये राजा व रानी की विष्ठा खाकर जीवन व्यतीत करते है तथा बाद में भोजन की तलाश में बाहर निकलते है। ये शिशु 6 से 12 महिनों में 4 से 10 वार त्वचा निर्मचन करके प्रौढ़, श्रमिक, सैनिक तथा पंखधारी नर मादाओं में परिवर्तित हो जाते है। इनमें से श्रमिक अधिक बनते है।

नुकसान: यह एक सर्वभक्षी कीट है। यह कीट खेतों व घरों दोनों जगह नुकसान पहुँचाता है। नुकसान केवल शिशु तथा व्यस्क श्रमिक दीमक ही पहुँचाते है। चूँकि दीमक जमीन में घर बनाकर रहती है। अतः इनका आक्रमण पौधों के उगने के साथ ही शुरू हो जाता है। जिस समय पौधे छोटे व कोमल होते है तो ये उनको पृथ्वी की सतह के नीचे से काटकर सुखा देती है। प्रायः यह देखा गया है कि असिंचित क्षेत्रों में दीमक फसलों को अधिक नुकसान पहुँचाती है बजाय सिंचित क्षेत्रों के। उदई बलूई मिट्टी में अधिक नुकसान पहुँचाती है।

दीमक

प्रबन्धन: * कच्चा गोबर उदई का प्रिय भोजन है। अतः खेतों में हमेशा अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद डालनी चाहिए। * बुवाई से पूर्व खेतों में फसलों के अवशेषों को इकट्ठा करके जला देना चाहिए। * फसलों में सूखा आने पर सिंचाई लगाने से भी इनका प्रकोप कम होता है। * बुवाई से पूर्व खेतों में फिप्रोनिल 0.30 जी.आर. 20 किलोग्राम प्रति है. की दर से भूमि में मिलाएं। * बीजोपचार हेतुः क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. 3-4 मिली./ किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करे। * खड़ी फसल में उदई लगने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 2-3 लीटर/ हैक्टर सिंचाई के साथ देवें।

2. माहू:

क्षति के लक्षण: यह पौधे का रस चूसने वाले छोटे कीट होते है, इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़, दोनों ही पौधे की पत्तियों, बालियों से रस चूसते है तथा शर्करा युक्त चिपचिपे पदार्थ (हनीड्यु) का स्त्रावण भी करते है, जिसके कारण पतियों पर कवक उग जाती है। इसके कारण पौधे में प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित होती है और फसल उत्पादन बहुत कम हो जाता है।

माहू

माहू

प्रबंधन: * कीट की निगरानी हेतु खेत में पीले चिपचिपे पाष लगाने चाहिए। * नीम के तेल को पानी में एक सही मात्रा में घोलकर फसल पर छिड़काव कर सकते है। * इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. के 140 मिली. प्रति है. या थायोमिथेक्साम 25 डब्ल्यु.एस.जी. के 100 मिली. प्रति है. को 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करे एंव 15 दिन के अन्तराल पर दुसरा छिडकाव करे।

3. गुजिया विविल: क्षति के लक्षणः यह कीट जमीन में ढेलों या दरारों में छिपा रहता है। यह नवजात गेहूँ के पौधों को जमीन की सतह से काट देता है, जिससे पूरी फसल ही नष्ट हो जाती है।

गुजिया विविल

प्रबंधन: * क्लोरपाइरिफॉस 20 ईसी की 4 मिली. मात्रा प्रति किलो बीज से बीजोपचार कर बुवाई करें * खडी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपाइरिफॉस 20 ईसी की 2.5 मिली./लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

4. गुलाबी तना छेदक:

क्षति के लक्षण: इस कीट की सूण्डी तने को भीतर से खाकर खोखला कर देती है, जिससे तना कमजोर हो जाता है, जिसके कारण पादप पानी एवं आवश्यक पोषक तत्व उपयोग नहीं कर पाता है और पौधा सूख जाता है। यह कीट पत्तियों पर या भूमि पर अंडे देता है।

तना बेधक की सुण्ड़ी

प्रबंधन: * रोकथाम हेतु नेपियर या सुडान घास को रक्षक फसल के रूप में खेत के चारो तरफ लगानी चाहिए। * खेत की बुवाई पूर्व गहरी जुताई करनी चाहिए। * फिप्रोनिल 5% एससी का एक लीटर प्रति हैक्टर की दर से खेत में छिड़काव करें।

5. सैन्य कीट/आर्मीवर्म

क्षति के लक्षण: यह कीट सूर्य की रोशनी में पौधों को नुकसान नहीं पहुंचाता है। अर्थात रात्रि के समय नुकसान पहुंचाता है। इसकी कुछ प्रजातियां भूमि की सतह पर भोजन ग्रहण करती हैं, कुछ अन्य तनों के अंदर खाती हैं एवं अन्य पत्तियों के किनारों से खाती हुई मध्यशिरा तक पहुंच जाती है। इस प्रकार यह कीट भी फसल के लिए विनाशकारी हो सकता है।

प्रबंधन: * सैन्यवर्म के नियंत्रण के लिए शाम के समय घास के ढेर खेतों में छोड़ दिए जाते हैं तथा सुबह जल्दी उठाकर देखा जाए तो घास के नीचे इस कीट की लट पाई जाती है। इन लटों को पकड़कर नष्ट कर दें। * दो खेतों की सीमाओं के मध्य ट्रेंच बनाकर भी इसका नियंत्रण किया जा सकता है। * प्रकोप अधिक होने पर इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 0.4 मिली./लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करें।

आर्मीवर्म की सुण्डी का प्रकोप

6. चूहा:

क्षति के लक्षण: गेहूँ की खड़ी फसल को चूहे काटकर बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं, इसलिए फसल की अवधि में दो-तीन बार इनकी रोकथाम की आवश्यकता रहती है।

प्रबंधन: * जिंक फॉस्फाइड अथवा बेरियम कार्बोनेट युक्त जहरीले चारे का प्रयोग करें। * जहरीला चारा बनाने हेतु जिंक फास्फॉइड एक भाग, सरसों का तेल एक भाग तथा 48 भाग दाना अथवा बेरियम कार्बोनेट 100 ग्राम, गेहूँ का आटा 860 ग्राम, शक्कर 15 ग्राम तथा 25 ग्राम सरसों का तेल का प्रयोग करें। * चूहों की रोकथाम हेतु 2-3 बार सामूहिक रूप से कार्यक्रम चलाना चाहिए।

7. गेहूं की माइट: यह जौ, जई, बाजरा इत्यादि को भी नुकसान पहुंचाती है। यह माइट मध्यप्रदेश, उतरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली में फसलों को सर्वाधिक नुकसान पहुंचाती है। फसल की उत्पादकता 12% कम हो जाती है। असिचित क्षेत्रों में इसका प्रकोप अधिक होता है। यह पतियों से रस चूसता है, जिसके कारण पतियों पर सफेद धब्बे बन जाते है। बाद में पतियां पीली पड़ जाती हैं व ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं। अधिक आक्रमण होने पर, हजारों माइट प्रति पती देखी जा सकती है। यह माइट पत्तियों पर झाले नहीं बनाती है। अत्यधिक प्रभावित पौधे पीले या ब्रोन्जिंग जैसे दिखते हैं।

नियंत्रण * माईट का प्रबंन्धन जब कर्षण, जैविक व पादप उत्पादों से न हो तब अंत में रसायनों का प्रयोग कर बरूथी का प्रबंध कर सकते हैं। * खडी फसल में नियत्रंण हेतु डाइफेन्थ्यूरॉन 47.80 एस.सी. 500 मिली./हैक्टर या स्पाइरोमेसिफेन 22.90 एस.सी. 600 मिली./हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

युवराज कुमावत Young Plant Breeder, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, (राजस्थान)

मुकेश भटेश्वर Agronomist चौधरी एग्रो सेल्स, सुरसिंहपुरा, जोबनेर, जयपुर, (राजस्थान)

टमाटर की उन्नतशील किस्में

प्रमाणित किस्मों के लाभों में अधिक उपज (15-20% तक), उच्च आनुवंशिक और भौतिक शुद्धता, बेहतर अंकुरण क्षमता और पौधे की एकरूपता शामिल हैं, जिससे किसानों को अधिक मुनाफा होता है। ये बीज रोग और कीट प्रतिरोधी भी हो सकते हैं और प्रीमियम बाजारों तक पहुँचने में मदद कर सकते हैं।

किस्में

आनुवांशिकता के आधार पर प्रजातियों को शुद्ध वंशक्रमों तथा शंकर पौध बढ़वार के अनुसार सीमित, मध्यम और असीमित समूहों में बाँटा जा सकता है-

1 असीमित बढ़वार-इन किस्मों के पौधों की बढ़वार रुकती नहीं तथा पौधे बड़े होते हैं। दो गाँठों के बीच (फूलों के बीच) गुच्छे कम निकलते हैं, लेकिन फूल व फल अधिक समय तक आते रहते हैं। इन किस्मों के फल बड़े होते हैं तथा इनमें फल सड़न की बीमारी कम लगती है।

2 सीमित बढ़वार-सीमित बढवार वाली किस्मों में पौधे की वृद्धि फूल की कली के रूप में समाप्त होती है। सीमित किस्मों में कटाई-छटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः इसे स्व-कृन्तन किस्म भी कहते है। इन किस्मों के पौधे बौने होते हैं।

उन्नत शील किस्में

1.काशी विशेष-इस प्रजाति को वर्ष 2006 में उत्ताराखंड, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ़ बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल राज्य में व्यवसायिक खेती के लिए अनुमोदित किया गया है। इसमें टमाटर का पर्ण मरोड़ बीमारी नहीं लगती है। इसकी औसत उपज 42.5 टन प्रति हेक्टेयर है।

2.पूसा अर्ली ड्वार्फ -यह सीमित बढ़वार वाली अगेती किस्म है। इसकी औसत उपज 35.0 से 37.5 टन प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है। इसको दोनों मौसमों (शरद एवं वसंत) में उगाया जा सकता है।

3.पूसा सदाबहार-इस किस्म के पौधे सीमित बढ़वार वाले होते हैं। पौधों पर ज्यादा फल लगते हैं, जो अण्डाकार से गोलाकार होते हैं। फल छोटे, चिकने तथा आकर्षक होते हैं। इसकी औसत उपज क्षमता 25.0-35.0 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

4.हिसार अरुण- 7 इस किस्म को उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में अगेती तथा मुख्य फसल के रुप में बहुतायत से उगाया जाता है। इस किस्म से औसत उपज 35.0 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

5.हिसार ललित:- यह किस्म जड़ गाँठ सूत्रकृमी के प्रतिसहिष्णु होते हैं। इसके फल मध्यम आकार के गोल व लाल होते हैं। इसकी औसत उपज 30.0 प्रतिहेक्टेयर है।

6.पंजाब छुहारा: इसके फल मध्यम आकार वाले नासपाती जैसे होते हैं तथा प्रति पौधा फल अधिक लगते हैं। फलों का छिलका मोटा होता है, इसलिए इसे दूर बाजार में भेजा जा सकता है। यह पिछेती पकने वाली किस्म है। इसकी औसत उपज 25.0-28.0 प्रति हेक्टेयर होती है।

7.पंत टमाटर- 1 यह अधिक पैदावार देने वाली किस्म गर्मी तथा सर्दी मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त है। यह किस्म टमाटर मोजेक विषाणु के प्रति संवेदनशील है। इसकी औसत ऊपज 28.0-32.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

1. भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान वाराणसी द्वारा विकसित किस्में इस संस्था द्वारा काशी अनुपम काशी अमृत, काशी हेमन्त, काशी शरद को विकसित किया गया है।

2 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, द्वारा विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा पूसा रूबी, पूसा रेड प्लम, पूसा सेलेक्शन- 120, एस0एल0- 152, बेस्ट ऑफ ऑल पूसा गौरव, पूसा शीतल, पूसा उपहार, पूसा संकर-1, पूसा संकर-2, पूसा संकर-4, पूसा दिव्या को विकसित किया गया है।

3. चौधरीचरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार द्वारा विकसित किस्में इस संस्था द्वारा एच0 एस0-101, एच0 एस0 102 एच0 एस0 110, हिसारलालिमा, हिसार, अनमोल सेलेक्शन 32, हिसारकलिंगा को विकसित किया गया है।

4. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित किस्में इस संस्था द्वारा पंजाब केशरी, एस-12. पंजाब उपमा, टी0एच0 3212, टी0 एच 0802, टी0 एच 01 को विकसित किया गया है।

5. गोविंदबल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित किस्मे इस संस्था द्वारा पंतबहार पंत टमाटर-2, पंत टी-3 को विकसित किया गया है।

6. चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश) से विकसित किस्में- इस संस्था द्वारा कल्याणपुर अंगूर लता, के0 एस02 को विकसित किया गया है।

7. भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बेंगलुरु कर्नाटक द्वारा विकसित किस्में इस संस्था द्वारा अर्का विकास, अर्का सौरभ, अर्का आभा, अर्का आलोक, अर्का मेघाली, अर्का विशाल, अर्का वरदान, अर्का आहूती, अर्का अभिजित, अर्का श्रेष्ठ को विकसित किया गया है।

8. नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) से विकसित इस संस्था द्वारा किस्मे एन0 डी0 टी0-120, एन0 बी0 टी0-108 को विकसित किया गया है।

9. यशवन्त सिंह परमार उद्यान एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन हिमाचल प्रदेश द्वारा विकसित किस्में इस सस्था द्वारा बोलन गोलमोल कामतवत शवन्न (-2), सोलन शन पालम किपालाई विकसित किया गया है।

10. व्यक्तिगत बीज कंपनियों द्वारा विकसित किस्में-अविनाश इस संस्था द्वारा 2, रुपाली, नवीन, रश्मि, वैशाली को विकसित किया गया है।

11. अन्य शोध संस्थानों से विकसित किस्में- इस संस्था द्वारा जवाहर जवाहर-99, स्वर्ण नवीन, स्वर्ण लालीमा, ए0 आर0 टी0 एच0-3 को विकसित किया गया है।

स्वस्थ्य मृदा एवं उन्नत खेती के लिए हरी खाद एक वरदान

आलोक कुमार जिला कृषि पदाधिकारी
कालीकान्त चौधरी उप परियोजना निदेशक आत्मा
प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक
जिला कृषि कार्यालय सिवान, कृषि विभाग (बिहार)

वर्तमान समय में पूरे भारत में 7.9 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर हरी खाद की खेती की जाती है जो कि कुल शुद्ध जोत (142 मिलियन हेक्टेयर) का 5.5% है। हरी खाद प्रायः धान बाहुल्य राज्यों में अधिक प्रचलित है जैसे-आंध्रप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, पंजाब एवं ओड़ीशा आदि।

बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए मिट्टी पर दबाव बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार मिट्टी के दोहन से उसमें उपस्थित पोषक तत्व नष्ट हो रहे हैं। एक निश्चित भूमि पर मुख्य फसल उगाने से पूर्व हरी खाद फसल को उगाकर एक निश्चित अवधि के पश्चात पाटा चलाकर पलटने वाले हल के प्रयोग द्वारा मिट्टी में सड़न के लिए छोड़ दिया जाता है। मिट्टी में मौजूद सूक्ष्मजीव इसे कुछ समय में अपघटित कर देते है। इसका उपयोग सर्वप्रथम काटो नामक वैज्ञानिक ने किया था। इनके अनुसार हरी खाद का उपयोग उस भूमि में कर सकते हैं जहां पशुओं की खाद उपयोग में नहीं लाई जा सकती है। आजकल मृदा के लगातार अति दोहन से उसमें मौजूद पोषक तत्व नष्ट हो रहे हैं इसके फलस्वरूप पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व नहीं मिल पाते हैं। इसकी क्षतिपूर्ति तथा मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। हरी खाद का प्रयोग प्राचीन काल से होता रहा है। 'हरी खाद उस फसल को कहते हैं जिसका उद्देश्य भूमि में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाना एवं उसमें जैविक पदार्थ की पूर्ति सुनिश्चित करना है। इस फसल को हरी स्थिति में हल प्रयोग द्वारा मिट्टी में दबा दिया जाता है' इस प्रकार रासायनिक खादों द्वारा होने वाली तमाम समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है।

वर्तमान समय में हरी खाद 7-9 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर उगाई जा रही है (कृषि सांख्यिकी, 2005) मुख्यतः हरी खाद उगाने वाले राज्य निम्न प्रकार है-

* आंध्र प्रदेश (41 प्रतिशत)
* उत्तर प्रदेश (16 प्रतिशत)
* कर्नाटक (11 प्रतिशत)
* पंजाब (5 प्रतिशत)
* बिहार (4 प्रतिशत)

हरी खाद का वर्गीकरण

* स्थानीय विधि इस विधि में हरी खाद फसल को उसी खेत में उगाया जाता है जिसमें इसका प्रयोग करना होता है।

* निश्चित खेत में मुख्य फसल उगाने से पूर्व हरी

खाद फसल को उगाकर एक निश्चित समय के बाद पाटा चलाकर पलटने वाले हल के प्रयोग से मिट्टी में सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। आमतौर पर वर्तमान समय में इस कार्य हेतु रोटावेटर का उपयोग किया जा रहा है जिससे कि मिट्टी में मिलाए गए पौधों का विघटन सूक्ष्म जीवों द्वारा आसानी से हो जाए। यह विधि समुचित वर्षा या पर्याप्त सिंचाई वाले क्षेत्रों में अपनाई जाती है। फूल आने से पहले वनस्पतिक वृद्धि काल (45-60 दिनों) में मिट्टी में पलट दिया जाता है ।

*** अति शीघ्र विघटन हेतु 40 किलोग्राम यूरिया का प्रति हेक्टेयर उपयोग कर सकते है**

हरी पत्तियों से खाद

इस विधि में हरी खाद की फसल को दूसरे क्षेत्रों में उगाकर उनकी पत्तियो तथा कोमल शाखाओं को तोड़कर जरूरत वाले क्षेत्र में मिट्टी के नीचे दबा देते हैं। यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्र में उपयोगी होती है।

हरी खाद फसल उगाने की विधि

असिंचित क्षेत्र में मानसून के तत्काल बाद तथा सिंचित क्षेत्र में मानसून से 10-15 दिन पहले हरी खाद फसल के बीज बोना चाहिए। फसल को मृदा की क्षमता के अनुसार पोषक तत्व डालने होते हैं। फसल को 40-50 दिन या फूल आने पर मिट्टी में पाटा चलाकर दबा दिया जाता हैं। इस बात का ध्यान रखें कि खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी हो जिससे फसल को पलटने में सुगमता तथा उसके अपघटन में अधिक समय ना लगे। हरी फसल के बाद लगने वाली मुख्य फसल में आमतौर पर नत्रजन की आवश्यकता कम होती होती हैं।

हरी खाद फसल की गुणवत्ता बढ़ाने के उपाय

उपुयक्त फसल का चयन

स्थानीय मौसम तथा मिट्टी की स्थिति के अनुरूप फसल का चुनाव करना होता है। सामान्य मृदा में सनई (40-50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) तथा ढैंचा (35-40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) फसलें अच्छा परिणाम देती है परन्तु क्षारीय एवं लवणीय मृदा में ढैंचा की उपयोगिता अच्छी होती है। मूंग उड़द आदि उपर्युक्त फसलों के अपेक्षाकृत कम गुणवत्ता वाली होती है।

पलटाई का समय

समान्यतःहरी खाद फसल बुवाई के 7-8 सप्ताह के बाद मृदा में पलट दिया जाता है। अन्यथा आयु बढ़ने के साथ.साथ पौधों में रेशे की मात्रा भी बढ़ती है जिससे इनके सड़न में ज्यादा समय लगता है।

हरी खाद फसल के प्रयोग के बाद अगली फसल

धान उत्पादक क्षेत्रों की जलवायु नम तथा तापमान अधिक होने के कारण अपघटन की प्रक्रिया तेज होती है अतः धान की रोपाई हरी फसल के पलटाई के तत्काल पश्चात की जा सकती है। यदि हरी खाद फसल रसीला है तो पलटाई के तत्काल बाद धान की रोपाई की जा सकती है अन्यथा कुछ समय पश्चात होती है।

हरी खाद से होने वाले लाभ

* यह मिट्टी में पोषक तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करती हैं ।
* खरपतवारओं के नियंत्रण में सहायक तथा मृदा जनित रोगों में कमी।
* हरी खाद लवणी तथा क्षारीय मिट्टी के सुधार में भी सहायक हैं।
* मृदा में नाइट्रोजन तथा जीवाश्म की मात्रा में बढ़ोत्तरी, दलहनी फसलों द्वारा मृदा में नाइट्रोजन बढ़ती है।

हरी खाद के प्रयोग में कठिनाई

* उत्तम गुणवत्ता वाले बीजों की अनउपलब्धता ।
* हरी खाद फसल के अपघटन हेतु जल का सही समय पर ना मिल पाना ।
* हरी हरी खाद को लेकर किसानों में जागरूकता की कमी वे मानते हैं कि 6-7 सप्ताह बर्बाद करने का कोई फायदा नहीं है।
* हरी खाद फसल में पुष्प शीघ्र ही आ जाते हैं जिससे बायोमास का उत्पादन कम होता है।

दवा के खजाने सिलीमारिन: औषधीय पौधे की खेती, पोषक तत्व और स्वास्थ्य लाभ

नेहा सिन्हा, दिव्या तिवारी बागवानी विभाग (फल विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी), नालन्दा बागवानी महाविद्यालय, नूरसराय, नालन्दा (बिहार)

संतोष कुमार चौधरी कृषि स्सय विभाग, नालन्दा बागवानी महाविद्यालय, नूरसराय, नालन्दा

रणधीर कुमार बागवानी विभाग (वनस्पति विज्ञान), नालन्दा बागवानी महाविद्यालय, नूरसराय, नालन्दा

सारांश: सिलिमारिन 'Silymarin', जो मुख्यतः मिल्क थिसल पौधे से प्राप्त एक जैव सक्रिय यौगिक है, विगत कुछ वर्षों में औषधीय एवं पोषणीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण बनकर उभरा है। यह फ्लेवोनोलिग्नान समूह का प्रमुख घटक है, जिसमें सिलिबिनिन, सिलिक्रिस्टिन और सिलीडियानिन जैसे यौगिक शामिल हैं। सिलिमारिन को यकृत-संरक्षक, कैंसररोधी, एंटीऑक्सीडेंट एवं सूजन-नियंत्रक गुणों के लिए जाना जाता है, जिससे यह विभिन्न गंभीर रोगों के उपचार में प्रभावी पाया गया है। इसके बीजों से प्राप्त तेल और पाउडर का उपयोग औषधीय उत्पादों और स्वास्थ्य अनुपूरकों में तेजी से बढ़ रहा है।

भारत में इसकी खेती एक नवाचारी औषधीय फसल के रूप में उभर रही है, विशेषतः राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्रों में, जहाँ शुष्क जलवायु इसकी वृद्धि के लिए अनुकूल है। सरकार एवं विभिन्न संस्थान औषधीय फसलों को बढ़ावा देने हेतु योजनाएं चला रहे हैं, जिससे किसानों को उच्च मूल्य प्राप्त होने की संभावनाएँ हैं। सिलिमारिन की खेती हेतु उचित जल निकासी वाली, हल्की से मध्यम दोमट भूमि, 6.0 से 7.5 पीएच मान, एवं मध्यम जल आवश्यकताओं की सिफारिश की जाती है। बीजाई, सिंचाई, कीट नियंत्रण, कटाई और भंडारण की उपयुक्त विधियाँ अपनाकर प्रति एकड़ 4-6 क्विंटल बीज प्राप्त किया जा सकता है, जिसका बाजार मूल्य ?200-?300 प्रति किलोग्राम तक पहुँचता है। इस अध्याय में सिलिमारिन के औषधीय गुणों, रासायनिक संरचना, स्वास्थ्य लाभ, भारत में इसकी खेती की संभावनाओं, कृषि तकनीकों, आर्थिक मूल्य और बाजार की माँग पर विस्तार से चर्चा की गई है। यह अध्ययन औषधीय कृषि की दिशा में किसानों के लिए एक लाभकारी और स्वास्थ्य संवर्धक विकल्प प्रस्तुत करता है, जो सतत कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में योगदान दे सकता है।

परिचय

प्रकृति का वरदान – सिलीमारिन

सिलीमारिन एक शक्तिशाली औषधीय यौगिक है, जो मुख्यतः श्मिल्क थिसल नामक पौधे से प्राप्त होता है। यह पौधा मूलतः भूमध्यसागरीय क्षेत्रों का निवासी है, लेकिन अब भारत सहित कई देशों में इसकी खेती की जा रही है, खासकर औषधीय फसलों की बढ़ती मांग को देखते हुए। सिलीमारिन को विशेष रूप से जिगर (लीवर) की बीमारियों के इलाज में कारगर माना जाता है। इसके बीजों से निकाला गया अर्क हजारों वर्षों से आयुर्वेद, यूनानी और आधुनिक चिकित्सा में प्रयोग होता आया है।

सलीमारिन का पोषण व औषधीय गुण:

सिलीमारिन दरअसल फ्लावोनोलिग्नन समूह का यौगिक है, जिसमें मुख्यतः सिलिबिनिन, सिलिक्रीस्टिन और सिलिडियानिन पाए जाते हैं। **इसके बीजों में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व निम्नलिखित हैं:**

घटक	मात्रा (% अनुपात)
1.प्रोटीन	20-25%
2.तेल	20-30% (मुख्यतः linoleic acid)
3.फाइबर 35-40%	
4.फ्लावोनॉइड	उच्च मात्रा
5.खनिज तत्व कैल्शियम, आयरन, जिंक	

इन सभी घटकों की उपस्थिति इसे एक पौष्टिक औषधीय बीज बनाती है, जिसका उपयोग पोषण-आधारित स्वास्थ्य उत्पादों में किया जाता है।

स्वास्थ्य लाभ: सिलीमारिन का सेवन वैज्ञानिक रूप से कई रोगों में लाभकारी सिद्ध हुआ है।

1. **लीवर सुरक्षा (Liver Protection)**

सिलीमारिन सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है हेपाटाइटिस, फैटी लीवर, लिवर सिरोसिस जैसी बीमारियों में लाभ पहुंचाने के लिए। यह लीवर कोशिकाओं को विषैले पदार्थों से बचाने और उनके पुनर्निर्माण में मदद करता है।

2. **एंटीऑक्सीडेंट गुण:** यह एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है जो शरीर को फ्री रेडिकल्स से होने वाले नुकसान से बचाता है। इससे कैंसर, मधुमेह और दिल की बीमारियों का खतरा कम होता है।

3. **त्वचा और सौंदर्य:** सिलीमारिन का उपयोग त्वचा की सूजन, एक्ने, झुर्रियों और एलर्जी को कम करने में भी किया जाता है। कई कॉस्मेटिक उत्पादों में इसका प्रयोग होता है।

4. **ग्लूकोज नियंत्रण:** कुछ अध्ययन बताते हैं कि यह रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होता है, जिससे मधुमेह रोगियों को लाभ मिल सकता है।

Figure 1 सिलीबम मेरियानम के पत्तों के आकारिकीय लक्षण (ए) और काँटेदार सहपत्रों वाला लाल बैंगनी पुष्प शीर्ष (बी)। (फोटो: जी. डि मिसेली)।

भारत में सिलीमारिन की खेती: एक नई औषधीय दिशा का आरंभ: भारत, विविध जलवायु और समृद्ध कृषि परंपराओं वाला देश, अब पारंपरिक फसलों के साथ-साथ औषधीय पौधों की खेती की ओर भी तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में सिलीमारिन जो मुख्य रूप से मिल्क थिसल (सिलिबम मेरियानम) पौधे से प्राप्त होता है, औषधीय खेती की एक उभरती हुई संभावनाशील फसल बन चुकी है। वर्तमान में भारत में लीवर संबंधी बीमारियों, मधुमेह, और त्वचा रोगों की बढ़ती संख्या ने सिलीमारिन जैसे औषधीय यौगिकों की मांग को काफी बढ़ा दिया है। यह पौधा विशेष रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में उगाया जा सकता है, जहाँ शीतोष्ण जलवायु और हल्की दोमट या रेतीली मिट्टी उपलब्ध हो। भारत सरकार और आयुष मंत्रालय द्वारा औषधीय फसलों की खेती को बढ़ावा देने की योजनाएं, जैसे कि राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड के अंतर्गत मिलने वाली सब्सिडी और तकनीकी सहायता, किसानों को इस फसल की ओर आकर्षित कर रही हैं। साथ ही, आयुर्वेदिक और फूड सप्लीमेंट उद्योग की बढ़ती मांग ने बाजार में इसके बीज, पाउडर और अर्क को एक उच्च मूल्य प्रदान किया है। इस प्रकार, भारत में सिलीमारिन की खेती कृषक आय बढ़ाने, औषधीय उत्पादों की आत्मनिर्भरता बढ़ाने और जैविक खेती के विस्तार की दिशा में एक सशक्त कदम बन सकती है। उचित तकनीकी मार्गदर्शन, गुणवत्ता बीज उपलब्धता और प्रोसेसिंग सुविधाओं के साथ, यह फसल किसानों के लिए एक लाभकारी और स्वास्थ्य-संवर्धक विकल्प के रूप में उभर रही है।

जलवायु एवं मृदा: सिलीमारिन की खेती के लिए शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। यह पौधा हल्की दोमट या रेतीली मिट्टी में अच्छा विकास करता है, जिसकी पीएच मान 6.0 से 7.5 के बीच हो। अच्छी जलनिकासी वाली भूमि इसके लिए जरूरी है क्योंकि अधिक नमी से इसकी जड़ों को नुकसान पहुंच सकता है।

बुवाई का समय और विधि: भारत में इसकी बुवाई अक्तूबर से नवंबर के बीच की जाती है। बीजों को 2-3 सेमी गहराई पर कतारों में बोया जाता है, जिनकी आपसी दूरी 45-60 सेमी रखी जाती है। अंकुरण के लिए आदर्श तापमान 15-20 है।

सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन: सिलीमारिन एक कम जल मांग वाला पौधा है, परंतु फूल और बीज बनने के समय हल्की सिंचाई फायदेमंद होती है। जैविक खेती की दृष्टि से फार्मिक खाद, वर्मी कंपोस्ट और नीमखली जैसी सामग्रियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कटाई और उपज: फूल आने के लगभग 4-5 महीने बाद, जब बीज पूरी तरह पक जाएं और फूल सूखने लगे, तब कटाई की जाती है। एक एकड़ भूमि से औसतन 4-6 क्विंटल बीज उत्पादन संभव है, जो बाजार में औषधीय उद्देश्यों के लिए उच्च मूल्य पर बिकते हैं।

बाजार और मूल्य: वर्तमान में आयुर्वेदिक कंपनियाँ और फूड सप्लीमेंट कंपनियाँ सिलीमारिन के बीजों और पाउडर की भारी मांग कर रही हैं। 1 किलो बीज का औसत बाजार मूल्य 200-300 रुपये तक होता है। इससे किसानों को प्रति एकड़ 50,000 से 70,000 रुपये की आमदनी हो सकती है, जो परंपरागत फसलों की तुलना में लाभकारी है।

Figure 2 सिलीबम मेरियानम की खेती का चित्र दृश्य

निष्कर्ष: औषधीय खेती का भविष्य- सिलीमारिन जैसे औषधीय पौधे आने वाले समय में सतत कृषि और आय आधारित खेती का मजबूत आधार बन सकते हैं। इससे न केवल किसानों की आय में बढ़ोतरी होगी, बल्कि ग्रामीण क्षेत्र की स्वास्थ्य और पोषण स्थिति में भी सुधार आएगा। यह खेती छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए भी एक अच्छा विकल्प बन सकती है, विशेषकर अगर सरकार इसकी प्रोसेसिंग और विपणन के लिए सहयोग दें।

मटर डीपॉडर मशीन: किसानों हेतु आय का एक अच्छा श्रोत

✍ **डॉ. मो. इरफ़ान अहमद अंसारी** पी.आई., अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, कटाई उपरांत अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, अनुसंधान निदेशालय, सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, कांके, राँची-834006 (झारखण्ड)

✍ **डॉ. पर्व नायक** सहायक प्राध्यापक, सह कनीय वैज्ञानिक, को. पी. आई., ए. आई. सी. आर. पी. ऑन पी. एच. ई. टी, कृषि अभियंत्रण विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006

✍ **ई. वंदना चौबे** सहायक प्राध्यापक, सह कनीय वैज्ञानिक, को. पी. आई., ए. आई. सी. आर. पी. ऑन पी. एच. ई. टी, कृषि अभियंत्रण विभाग बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006

✍ **डॉ. छाया** सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, को. पी. आई., ए. आई. सी. आर. पी. ऑन पी. एच. ई. टी, कृषि अभियंत्रण विभाग बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006

प्रस्तावना : हरा मटर एक महत्वपूर्ण शीतकालीन दलहनी फसल है। यह प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, तथा रेशे का एक उत्कृष्ट श्रोत है। यह पोषण सुरक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है।मटर का उपयोग सब्जियों में होता है। भारत विश्व के प्रमुख मटर उत्पादक देशों में से एक है। यहाँ लगभग 5.90 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में मटर की खेती होती है और सालाना उत्पादन लगभग 61 लाख टन है। झारखंड राज्य में भी मटर का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 2023-24 में लगभग 18.25 हजार हेक्टेयर क्षेत्र से 3.56 लाख टन से अधिक उत्पादन हुआ है। इतनी बड़ी मात्रा में उत्पादन के बावजूद कटाई के बाद मटर छीलने (डीपॉडिंग) की प्रक्रिया अधिकतर हाथ से की जाती है। यह प्रक्रिया समय लेने वाली, श्रम-साध्य और महंगी है। साधारणतः एक व्यक्ति एक घंटे में केवल 3 से 3.5 किलो मटर छीमी को ही छील सकता है। इस कारण किसान कटाई के समय मजदूरों की कमी और अधिक लागत जैसी समस्याओं का सामना करते हैं, जिससे मटर का उचित मूल्य संवर्धन नहीं हो पाता है तथा कम कीमत पर बेचना पड़ता है। इसी समस्या का समाधान मटर डीपॉडर मशीन है। यह यंत्र जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश द्वारा अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, कटाई उपरांत अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी के अंतर्गत विकसित किया गया है जिससे किसान कम समय में ज्यादा से ज्यादा मटर का दाना प्राप्त कर सकते है। निकले हुए दाने को पैकेजिंग करके बाजार में बेचा जा सकता है या सुखा कर रख सकते हैं। यह यंत्र छोटे उद्योगों और सहकारी समूहों के लिए बहुत उपयोगी है। इस यंत्र में नियंत्रित फीडिंग की जाती है जिससे मटर का दाना आसानी से निकाल जाता है। इस यंत्र में कम शक्ति की मोटर के कारण ऊर्जा-उपयोग कम होता है। इस यंत्र का उपयोग गाँव/कस्बा स्तर की प्रसंस्करण इकाइयों में भी किया जा सकता है। साथ ही साथ महिला स्वय-सहायता समूह (SHGs), किसान-उत्पादक संगठन (FPOs) या किराये पर चलने वाले 'कस्टम-हायरिंग' मॉडल में भी इसे अपनाया जा सकता है।

यंत्र का विवरण : मटर डीपॉडर मशीन एक अर्ध-स्वचालित इकाई है, जिससे हरे मटर के दानों को छिमियों से तेजी और आसानी से अलग करने के लिए विकसित किया गया है। इस यंत्र का बनावट अत्यंत सरल है। इसका आकार लगभग 99 सेंमी लंबा, 44 सेमी चौड़ा और 133 सेमी ऊँचा है।

मशीन के तीन मुख्य भाग हैं- फीडिंग सेक्शन, जहाँ मटर की छिमियों डाली जाती हैं; डीपॉडिंग सेक्शन, जहाँ फलियों से दाने अलग किए जाते हैं; और कलेक्शन सेक्शन, जहाँ दाने तथा छिलका अलग-अलग एकत्र होते हैं। यह मशीन 0.5 हॉर्स पावर की इलेक्ट्रिक मोटर से चलती है। इसका क्षमता 46.30 किग्रा/घंटा है। इस यंत्र के विभिन्न भागों को चित्र में दर्शाया गया है।

कार्य प्रणाली : इस मशीन में सब से पहले मटर की छीमी

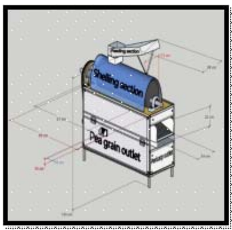

को फिडीन्ग ट्रे में डाला जाता है। वहाँ से छीमीयाँ अपने आप शेलिंग ड्रम के अंदर पहुँचती हैं जहाँ वे एक उच्च गति वाले दँतेदार रोलर के सम्पर्क में आते है जिसकी वजह से घर्षण और दबाव उत्पन्न होता है, जिससे मटर के दाने और उसका छिलका अलग हो जाता हैं। इसके बाद दाने तथा छिलके एक छलनी से होकर गुजरते हैं, जिसकी जाली मटर के आकार से थोड़ी बड़ी होती है। इससे केवल दाने निकल कर कलेक्शन यूनिट में इकट्ठा हो जाते हैं। वहीं दूसरी ओर ड्रम के लगातार घूमने और रोलर की गति से छिलके आगे की तरफ धकेले जाते हैं और मशीन के दूसरी ओर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार मशीन से एक ओर साफ दाने प्राप्त होते हैं और दूसरी ओर छिलका अलग से बाहर आ जाता है। इस मशीन के कार्य प्रणाली से मटर के दानों का कम नुकसान होता है।

उपयोग : यह मशीन मटर प्रसंस्करण उद्योग के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ कम समय में बड़ी मात्रा में मटर छीलने की आवश्यकता होती है। मशीनों द्वारा छिले हुए मटर को सीधे बाजार में बेचा जा सकता है, क्योंकि यह ताज़ा और स्वच्छ होता है। छोटे व्यापारी इस मशीन का उपयोग करके अपनी मेहनत तथा समय बचा सकते है और अपनी आय बढ़ा सकते है। यह मशीन बड़ी मात्रा में प्रसंस्करण के लिए किसानों के लिए बहुत उपयुक्त है।

मटर छीलने वाली मशीन के लाभ : मटर छीलने वाली मशीन के कई फायदे है जिसमें पारंपरिक तरीके से जहाँ हाथ से मटर छीलने में बहुत समय लगता है, वहीं इस मशीन से कम समय में अधिक मात्रा में मटर आसानी से छिली जा सकती है जिससे मजदूरों की आवश्यकता कम हो जाती है और श्रम लागत कम होता है। मशीन दाने और छिलके को साफ-सुथरे तरीके से अलग करती है, जिससे दानों की गुणवत्ता बेहतर बनी रहती है। मटर के दाने को बाज़ार में अच्छे मूल्य पर बेचा जा सकता है। यह यंत्र किसानों, ग्रामीण युवाओं और स्वयं सहायता समूहों (SHG) के लिए आय बढ़ाने और छोटे स्तर पर उद्योग शुरू करने के लिए बहुत उपयोगी है। इस प्रकार इस यंत्र से मेहनत की बचत, उच्च दक्षता और कम नुकसान होता है। इस मशीन को चलाना तथा साफ करना आसान है।

मटर छिलाई मशीन का मूल्यांकन : मटर छिलाई मशीन का मूल्यांकन एग्रो प्रोसेसिंग केन्द्र, कृषि अभियंत्रण विभाग में

किया गया है। इस मशीन की मूल्यांकन में छोटा मटर (अरकल प्रजाति) छीलने की क्षमता 51% नमी पर 97.78% पाया गया है जबकि लंबा मटर (कोमल प्रजाति) छीलने की क्षमता 55% नमी पर 93.25% पाया गया है। कम नमी होने पर छीलने की क्षमता बढ़ती है मशीन से छीलने की लागत केवल रु. 6.57 प्रति किलो है, जबकि हाथ से रु. 20.83 प्रति किलो पड़ता है। इस मशीन का निवेश 7 महीने में वापस आ सकता है।

संभावित समस्याएं, निराकरण तथा रख रखाव : मटर छीलने वाली मशीन की बनावट सरल तथा चलाने में कोई समस्या नहीं आती है। फिर भी घूमने वाले भागों को समय समय पर तेल/ग्रीस लगाते रहना चाहिए। बेल्ट ज्यादा ढीला होने पर बदल देना चाहिए। मशीन चलाने के बाद अच्छी तरह से मशीन को साफ कर दें। नट-बोल्ट को समय समय पर देखते रहना चाहिए। ढीले होने नटों को पर कस देना चाहिए। मशीन को चलाने से पहले निरीक्षण करें। क्षतिग्रस्त भाग को तुरंत बदल दें। जब मशीन उपयोग में न हो तो उसे एक साफ, सुथरी तथा सुरक्षित जगह पर रखें।

आत्मनिर्भर कृषि
आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश
विकसित भारत अभियान
मध्य भारत में राष्ट्रीय कृषि व
उद्यानिकी तकनीकी प्रदर्शनी
G20
Azadi Ka Amrit Mahotsav
10th INTERNATIONAL
AGRI & HORTI
TECHNOLOGY EXPO
26-27-28 DECEMBER 2025
CIAE Ground, Navi Bagh, Berasia Road, Bhopal, M. P.
India's Leading Exhibition on
Agriculture, Horticulture, Floriculture, Organic Farming, Dairy & Food Technology
'विकसित कृषि
संकल्प अभियान'
ORGANIZE BY
BME
Bharti Media & Events Pvt. Ltd.
CONFERENCE PARTNER
PLATINUM SPONSOR
BKT
GROWING TOGETHER
MEDIA PARTNERS
KRISHI JAGRAN
कृषि तहलका
कृषक दूत
KhetiGaadi
Kisaan Helpline
For more information: +91-92122 71729, 83686 10550
E-mail: iahtbhopal@gmail.com, www.iahtexpo.com

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

दिसम्बर -2025

KRUSHIPARV

INTERNATIONAL AGRICULTURE EXHIBITION AND CONFERENCE

26 - 29 December 2025

India's Premier International Agriculture
Exhibition And Conference

Nemane Estate, Kedgaon Rd, Ahilya Nagar, Maharashtra - 414005, India.

Soil to Soul : India's Green Power

BE there
BE seen

Organised By | Knowledge Partner | Media Partner | Associate Partner

EXPO INDIAN OCEAN PVT LTD
ONE STEP FOR BUSINESS

TAURAN ADVISORS

GrowinAgri

www.krushiparva.org

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)